Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

रघुवंशम्

।। प्रथमः सर्गः ।।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।। 1 ।।
क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।। 2 ।।
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।। 3 ।।
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ।। 4 ।।

पहला सर्ग

[वाणी और अर्थ जिस प्रकार अलग होते हुए भी एक ही हैं, वैसे ही पार्वतीजी और शिवजी भी कहने को दो रूप हैं, पर हैं वे वास्तव में एक ही। अतः] वाणी और अर्थ को अपने वश में करने के लिये, [उनको ठीक समझने और उनका ठीक व्यवहार करने के लिये] मैं संसार की माता पार्वतीजी और पिता शिवजी को प्रणाम करता हूँ, जो शब्द और अर्थ के समान परस्पर मिले हुए एकरूप हैं।।1।। [मैं रघुवंश का वर्णन तो करने जा रहा हूँ पर मैं देख रहा हूँ कि] कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न हुआ यह [तेजस्वी] वंश, [जिसमें रघु और राम—जैसे पराक्रमी उत्पन्न हुए हों और] कहाँ मोटी बुद्धिवाला मैं। [मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि मैं रघुवंश का वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी मेरी मूर्खता तो देखिए कि] तिनकों से बनी छोटी-सी नाव लेकर अपार समुद्र को पार करने की बात सोच रहा हूँ।।2।। देखिए, मैं हूँ तो मूर्ख, पर मेरी इच्छा यह है कि बड़े-बड़े कवियों में मेरी गिनती हो। यह सुनकर लोग मुझ पर अवश्य हँसेंगे, क्योंकि मेरी यह करनी वैसी ही है, जैसे कोई बौना अपने नन्हें-नन्हें हाथ ऊपर उठाकर उन फलों को तोड़ना चाहता हो जो केवल लम्बे हाथवाले ही पा सकते हों।।3।। पर [मुझे एक बड़ा भारी भरोसा यही है कि वाल्मीकि आदि मुझसे] पूर्व के कवियों ने इस सूर्यवंश पर [सुन्दर काव्य] लिखकर वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। इसीलिये उसमें पैठ जाना [और इस वंश का फिर से वर्णन करना] मेरे लिये वैसे ही [सरल] हो गया है, जैसे हीरे की कनीसे बिंधे हुए मणि में डोरा पिरोना।।4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।5।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।6।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै[1] गृहमेधिनाम् ।।7।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।8।।
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।।9।।
तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।।10।।
वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।11।।

मैं जानता हूँ कि मुझे कुछ आता-जाता नहीं है, फिर भी मैं उन [प्रतापी] रघुवंशियों का वर्णन करने बैठा हूँ, जिनके चरित्र जन्म से लेकर अन्त तक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जो समुद्र के ओर-छोर तक फैली हुई धरती के स्वामी थे, जिनके रथ पृथ्वी से स्वर्ग तक सीधे जाया-आया करते थे, जो [शास्त्रों के] नियम के अनुसार ही यज्ञ करते थे, जो माँगने वालों को मन-चाहा दान देते थे, जो [अपराधियों को] अपराध के अनुसार ही दण्ड देते थे, जो अवसर देखकर ही काम करते थे, जो दान करने के लिये ही धन इकट्ठा करते थे, जो सत्य की रक्षा के लिये बहुत कम बोलते थे [कि जितना कहें उतना कर भी दिखाये], जो [दूसरों का राज्य हड़पने या लूटमार के लिये नहीं वरन्] अपना यश बढ़ाने के लिये ही दूसरे देश पर विजय करते थे, जो [भोग-विलास के लिये नहीं वरन्] सन्तान उत्पन्न करने के लिये ही विवाह करते थे, जो बालकपन में पढ़ते थे, तरुणाई में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, बुढ़ापे में मुनियों के समान [जंगलों में रहकर] तपस्या करते थे और अन्त में योग के द्वारा [ब्रह्म या परमात्मा का ध्यान करते हुए] अपना शरीर छोड़ते थे। [सच पूछिए तो] रघुवंशियों के इन गुणों ने ही मुझे यह काव्य लिखने की ढिठाई करने को उकसाया है।।5-9।। इस काव्य को सुनने के अधिकारी भी वे ही सज्जन हैं जिन्हें भले-बुरे की अच्छी परख है क्योंकि सोने का खरापन या खोटापन आग में डालने पर ही जाना जाता है।।10।। जैसे वेद के छन्दों में सबसे पहले ॐकार है, वैसे ही राजाओं में सबसे पहले सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हुए जिनका आदर बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी किया करते थे।।11।।

---

1. पुत्रार्थं क्रियते भार्या पुत्रः पिण्डप्रयोजनः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।। 12।।
व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः[1]।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः। 13।।
सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।। 14।।
आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।। 15।।
भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।। 16।।
रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।। 17।।

उन्हीं वैवस्वत मनु के उज्ज्वल वंश में राजाओं में चन्द्रमा के समान सबको सुख देनेवाले तथा अत्यन्त शुद्ध चरित्रवाले राजा दिलीप ने वैसे ही जन्म लिया जैसे क्षीरसागर में चन्द्रमा ने जन्म लिया था।।12। [राजा दिलीप का रूप देखने ही योग्य था।] उनकी चौड़ी छाती, साँड़ के समान ऊँचे और भारी कंधे, शाल के वृक्ष-जैसी लंबी भुजाएँ और उनका समुन्नत तेज देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षत्रियों का धर्म [वीरत्व] उनके शरीर में यह समझकर आ डटा हो कि [सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के नाश करने का जो] मेरा काम [है वह] इस शरीर से अवश्य पूरा हो सकेगा।।13।। जैसे सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता से संसार के सभी दृढ़ पदार्थों को दवा दिया है, अपनी चमक से सभी चमकीली वस्तुओं की चमक घटा दी है, अपनी ऊँचाई से सभी ऊँची वस्तुओं को नीचा दिखा दिया है और अपने फैलाव से सम्पूर्ण पृथ्वी को ढक लिया है, वैसे ही राजा दिलीप ने भी अपने बल, तेज और डील-डौलवाले शरीर से सबको नीचा दिखाकर समस्त पृथ्वी को अपनी मुट्ठी में कर लिया।।14।। जैसा सुन्दर उनका रूप था, वैही ही तीखी उनकी बुद्धि थी, जैसी तीखी बुद्धि थी, वैसी ही शीघ्रता से उन्होंने सभी शास्त्र पढ़ डाले थे। इसीलिये वे शास्त्र के अनुसार ही किसी काम में हाथ डालते थे और [फल यह होता था कि उन्हें] वैसी ही [बड़ी] सफलता भी [अवश्य] हाथ लगती थी।।15।। [जैसे घड़ियालों और मगरमच्छों के डर से लोग समुद्र में जाने से डरते हैं, वैसे ही] राजा दिलीप से भी उनके सेवक डरते थे; क्योंकि वे न्याय में बड़े कठोर भी थे [और किसी का पक्षपात नहीं करते थे।] किन्तु समुद्र के सुन्दर और मनोहर रत्नों को पाने के लिये जैसे लोग समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं, वैसे ही राजा दिलीप इतने दयालु, उदार और गुणशाली भी थे कि उनके सेवक उनकी कृपा पाने के लिये सदा उनका मुँह देखते रहते थे।।16।। जैसे चतुर सारथी जब रथ चलाता है, तब रथ के पहिये बाल भर भी लीक से बाहर नहीं हो पाते, वैसे ही राजा दिलीप ने ऐसे अच्छे ढंग से प्रजा की देखभाल की कि प्रजा का कोई भी व्यक्ति मनु के बताए हुए

---

1. यः पद्मलोचनश्छत्रध्वजवज्रांकितांघ्रिकः।
चतुर्हस्तः स्वहस्तेन शालप्रांशुः स उच्यते।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।18।।
सेना परिच्छदस्तस्यद्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।
तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।
जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्।।21।।
ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।

नियम से बाहर चल नहीं सकता था। [सब लोग वर्ण और आश्रमों के नियमों के अनुसार ही अपने धर्म का पालन करते थे]।।17।। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जो जल सोखता है, उसका सहस्र गुना बरसा देता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा की भलाई में लगाने के लिये ही प्रजा से कर लेते थे।।18।। [जैसे और राजाओं के पास बड़ी भारी सेना होती थी वैसे ही] राजा दिलीप के पास भी बड़ी भारी सेना थी, पर वह सेना केवल शोभा के लिये ही थी [उससे कोई काम राजा दिलीप नहीं लेते थे।] क्योंकि शास्त्रों का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और धनुष चलाने में भी वे अत्यन्त निपुण ही थे। इसलिये वे अपना सब काम अपनी तीखी बुद्धि और धनुष पर चढ़ी हुई डोरी—इन दो से ही निकाल लेते थे। [उन्हें किसी काम में किसी और की सहायता नहीं लेनी पड़ती थी]।।19।। राजा दिलीप न तो अपने मन का भेद किसी को बताते थे और न अपनी भावभंगिमा से ही अपने मन की बात किसी को जानने देते थे। जैसे इस जन्म में किसी के [सुखी या दुखी] जीवन को देखकर लोग समझते हैं कि उसने पिछले जन्म में क्या [अच्छे या बुरे] काम किए थे, वैसे ही राजा दिलीप के मन की बात भी लोग तभी जान पाते थे, जब वह काम हो चुकता था, [उससे पहले नहीं]।।20।। वे निडर होकर अपनी रक्षा करते थे, बड़े धीरज के साथ अपने धर्म का पालन करते थे, लोभ छोड़कर धन इकट्ठा करते थे और मोह छोड़कर संसार के सुख भोगते थे।।21।। [जो लोग बहुत लिख-पढ़ जाते हैं, वे अपनी विद्या का ढिंढोरा पीटते हैं, जो बलवान होते हैं, वे दूसरों को सताने में अपनी बड़ाई समझते हैं, जो लोग दान देते हैं या किसी के लिये कुछ त्याग करते हैं, वे चाहते हैं कि चारों ओर हमारा नाम हो। पर राजा दिलीप में यह बात नहीं थी] वे सब कुछ जानकर भी चुप रहते थे, शत्रुओं से बदला लेने की शक्ति रहते हुए भी उन्हें क्षमा कर देते थे और दान देकर या त्याग करके भी अपनी प्रशंसा कराने की इच्छा नहीं करते थे। [उनके इस जग से न्यारे व्यवहार को देखकर यही जान पड़ता था कि] चुप रहने, क्षमा करने और प्रशंसा से दूर भागने के गुण भी उनमें ज्ञान, शक्ति और त्याग के साथ ही साथ उत्पन्न हुए थे।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद्वृद्धत्वं जरसा विना।।23।।
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।
स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।
दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।।26।।
न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता।।27।।

संसार के भोगों को वे अपने पास नहीं फटकने देते थे, सारी विद्याओं को उन्होंने मुट्ठी में कर लिया था और अपना जीवन वे दिन-रात धर्म के कामों में ही लगाते थे। छोटी ही अवस्था में वे इतने चतुर हो गए थे कि बिना बुढ़ापा आए ही उनकी गिनती बड़े-बूढ़ों में होने लगी।।23।। जैसे पिता अपने पुत्रों को बुरे काम करने से रोकता है, अच्छे काम करने की सीख देता है, सब प्रकार से उसकी रक्षा करता है और उनको पाल-पोसकर बड़ा करता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा को बुरे मार्ग पर जाने से रोकते थे, अच्छा काम करने को उत्साहित करते थे, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते थे और [उनके लिये अन्न, वस्त्र, धन तथा शिक्षा का प्रबन्ध करके] उनका पालन-पोषण करते थे। इस प्रकार वे ही अपनी प्रजा के सच्चे पिता थे, पिता कहलानेवाले अन्य लोग तो केवल जन्म देने भर के पिता थे।।24।। [अपराधी को दण्ड देना राजा का धर्म है। क्योंकि] अपराधी को दण्ड दिए बिना राज्य ठहर नहीं सकता, इसलिये वे अपराधियों को उचित दण्ड देते थे। [वंश चलाना भी मनुष्य का धर्म है। इसलिये] सन्तान उत्पन्न करके वंश चलाने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह किया था, कोई भोग-विलास के लिये नहीं। [इस प्रकार यद्यपि] दंड और विवाह वास्तव में अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के विषय हैं फिर भी उनके हाथों में पहुँचकर वे धर्म ही बन गए थे।।25।। राजा दिलीप प्रजा से जो कर लेते थे वह इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में लगा लेते थे [क्योंकि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न और पुष्ट होते हैं]। उधर इन्द्र भी इनसे प्रसन्न होकर आकाश को दुहकर जल बरसाता था जिससे खेत अन्न से लद जाते थे। इस प्रकार राजा दिलीप और इन्द्र एक दूसरे की सहायता करके दोनों लोकों का पालन करते थे।।26।। दिलीप को छोड़कर और कोई भी राजा अपनी प्रजा की रक्षा करने में नाम न कमा सका; क्योंकि [सभी के यहाँ कभी-कभी चोरी-डकैती हो ही जाती थी। पर राजा दिलीप का अपने राज्य में ऐसा दबादबा था कि] चोरी का शब्द केवल कहने-सुनने को ही रह गया था, [उस राज्य में कोई भी किसी का धन नहीं चुरा पाता था]।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टःप्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।। 28।।
तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथाहि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः।। 29।।
स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामुर्वी शशासैकपुरीमिव।। 30।।
तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।। 31।।
कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।। 32।।
तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः।। 33।।
संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे।। 34।।

जैसे रोगी यह समझकर औषध को पी लेता है कि इससे मैं अच्छा हो जाऊँगा वैसे ही राजा दिलीप भी उन शत्रुओं को अपना लेते थे, जो भले होते थे और जैसे साँप के काटने पर लोग अपनी उँगली भी काटकर फेंक देते हैं, वैसे ही राजा दिलीप अपने उन सगे एवं प्यारे लोगों को भी निकाल बाहर कर देते थे जो दुष्ट होते थे।।28।। ब्रह्मा ने निश्चय ही महाराज दिलीप को [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँच तत्वों से ही बनाया था; क्योंकि [जैसे ये तत्त्व निरन्तर गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन गुणों से सारी सृष्टि की सेवा करते हैं। वैसे ही] राजा दिलीप के सब गुणों से भी केवल दूसरों का उपकार ही होता था।।29।। [जैसे कोई राजा किसी ऐसी नगरी पर शासन करे; जिसके चारों ओर परकोटा और खाई को वैसे ही] दिलीप इस पूरी पृथ्वी पर अकेले राज्य करते थे, जिसका परकोटा समुद्र का तट था और जिसकी खाई का काम स्वयं समुद्र करता था।।30।। जैसे यज्ञ की पत्नी दक्षिणा प्रसिद्ध है वैसे ही मगधवंश में उत्पन्न सुदक्षिणा नाम की उनकी पत्नी भी संसार में अपनी चतुरता के लिये प्रसिद्ध थी।।31।। वैसे तो राजा दिलीप की बहुत-सी रानियाँ थीं, पर वे यदि अपने को स्त्रीवाला समझते थे, तो लक्ष्मी के समान मनस्विनी केवल अपनी पत्नी सुदक्षिणा के कारण ही।।32।। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मेरी प्यारी पत्नी से मेरे-जैसा पुत्र हो, पर दिन बीतते चले जा रहे थे और मन की अभिलाषा पूरी नहीं हो पा रही थी।।33।। तब उन्होंने निश्चय किया कि सन्तान उत्पन्न करने का कुछ न कुछ उपाय करना ही चाहिए। उन्होंने पहला काम तो यह किया कि पृथ्वी पालन का सम्पूर्ण भार अपने कंधों से उतारकर मंत्रियों को सौंप दिया।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वशिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव[1]।।36।।
मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव।।37।।
सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः।।38।।
मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखंडिभिः।।39।।
परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिपु।।40।।
श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।

राज्य की चिन्ता से छुट्टी पाकर पवित्र मन से राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणा ने पुत्र की इच्छा से पहले ब्रह्माजी की पूजा की और फिर वे दोनों पति-पत्नी वहाँ से अपने कुलगुरु वशिष्ठजी के आश्रम की ओर चले।।35।। जिस रथ पर वे दोनों बैठे हुए थे, वह मीठी-मीठी घरघराहट करता हुआ चला जा रहा था। उस पर बैठे हुए वे दोनों ऐसे जान पड़ते थे, मानो वर्षा के बादल पर ऐरावत और बिजली दोनों चढ़े चले जा रहे हों।।36।। उन्होंने अपने साथ सेवक नहीं लिए; क्योंकि उन्हें ध्यान था कि बहुत भीड़-भाड़ ले जाने से आश्रम के काम में बाधा होगी, पर उनका प्रताप और तेज ही इतना अधिक था कि उससे जान पड़ता था, मानो साथ में बड़ी भारी सेना चली आ रही हो।।37।। खुले मार्ग में शाल के गोंद की गन्ध में बसा हुआ, फूलों के पराग उड़ाता हुआ और वन के वृक्षों के पत्तों को धीरे-धीरे कँपाता हुआ पवन, उनके शरीर को सुख देता हुआ, उनकी सेवा करता चल रहा था।।38।। राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणा ने इधर-उधर दृष्टि घुमाई और देखा कि कहीं तो रथ की घरघराहट सुनकर बहुत-से मोर इस भ्रम से अपना मुँह उठा-उठाकर मनोहर षड्ज शब्द से कूक रहे थे कि कहीं ऊपर बादल तो नहीं गरज रहे हैं।।39।। कहीं वे देखते हैं कि हरिणों के जोड़े मार्ग से कुछ हटकर रथ की ओर एकटक देख रहे हैं। उनकी सरल चितवन को राजा दिलीप ने सुदक्षिणा के नेत्रों के समान समझा और सुदक्षिणा ने राजा दिलीप के नेत्रों के समान।।40।। जब कभी वे आँख उठाकर ऊपर देखते, तो आकाश में उड़ते हुए और मीठे बोलनेवाले बगुल भी उन्हें दिखाई पड़ जाते तो पाँत में उड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो खम्भे के बिना ही बन्दनवार टँगी हुई हो।।41।।

---

1. मेघस्योपरि मेघो यः स ऐरावत उच्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ।। 42 ।।
सरसीष्वरविन्दानां[1] वीचिविक्षोभशीतलम्।।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्।। 43 ।।
ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः।। 44 ।।
हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।। 45 ।।
काप्याभिख्या तयोरासीद्व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।। 46 ।।
तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लंघितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।। 47 ।।
स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः।।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः।। 48 ।।
वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः।। 49 ।।

पवन भी उनके अनुकूल चल रहा था और यह संकेत दे रहा था कि मन की इच्छाएँ अवश्य पूरी होंगी। वह ऐसी दिशा से चल रहा था कि घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल न तो देवी सुदक्षिणा के बालों को छू पाती थी और न राजा दिलीप की पगड़ी को।।42।। मार्ग में जो ताल पड़ते थे, उनकी लहरों की झकोरों से उड़ती हुई कमलों की ठंडी सुगन्ध जिस पवन से लेते हुए वे चले जा रहे थे, वह सुगन्ध भरा पवन उनकी श्वाँस के समान ही सुगन्धित था।।43।। जो गाँव उन्होंने ब्राह्मणों को दान कर दिए थे और जिनमें स्थान-स्थान पर यज्ञ के खम्भे खड़े हुए थे, वहाँ के ब्राह्मणों ने पहले तो अर्घ्य भेंट करके उनकी पूजा की और फिर उनको ऐसे आशीर्वाद दिए, जो कभी निष्फल हो ही नहीं सकते थे।।44।। गाँवों के जो बड़े-बूढ़े घोसी, गाय का तुरत निकाला हुआ मक्खन लेकर उनको भेंट करने को आते थे, उनसे राजा दिलीप और रानी मार्ग के वनों और वृक्षों का नाम पूछते चलते थे।।45।। जैसे चैत्र की पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र के साथ धवल चन्द्रमा आँखों को भला लगता है वैसे ही सुन्दरी सुदक्षिणा के साथ मार्ग में स्वच्छ वस्त्र पहने जाते हुए राजा दिलीप भी बड़े मनोहर लग रहे थे।।46।। पंडितों के समान बुद्धिमान तथा लुभावने दिखाई देनेवाले राजा दिलीप अपनी पत्नी को वे सब [सुहावने दृश्य] दिखाने में इतने रम गए थे कि उन्हें यह भी न भान हो सका कि मार्ग कब निकल गया।।47।। सायंकाल होते-होते यशस्वी राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ संयमी महर्षि वशिष्ठजी के आश्रम तक पहुँच ही गए। इतने थोड़े समय में इतनी दूर की यात्रा करने के कारण उनके घोड़े भी थक चुके थे।।48।।

---

1. अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।
नीलोत्पन्नं च पंचैते पंचबाणस्य शायकाः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव[1] नीवारभागधेयोचित्तैर्मृगैः।। 50।।
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।। 51।।
आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु।। 52।।
अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान्।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः।। 53।।
अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च।। 54।।
तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्तमेन्द्रियाः।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे।। 55।।
विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्।। 56।।
तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः।। 57।।

वहाँ पहुँचकर वे देखते क्या हैं कि संध्या के अग्निहोत्र के लिये बहुत-से तपस्वी समिधा, कुशा और फल लिए हुए जंगलों से लौट रहे हैं।।49।। बहुत-से मृग वहाँ आश्रम में इधर-उधर पर्णकुटियों के द्वार रोके खड़े हुए थे; क्योंकि उन्हें भी ऋषि-पत्नियों के बच्चों के समान तिन्नी के दाने खाने का अभ्यास पड़ गया था।।50।। ऋषि-कन्याएँ वृक्षों की जड़ों में पानी दे-देकर वहाँ से हट गई थीं, जिससे आश्रम के पक्षी उन वक्षों के थाँलों का जल निडर होकर पी सकें।।51।। धूप में सुखाने के लिये जो तिन्नी का अन्न फैलाया हुआ था, वह दिन छिपते ही समेटकर कुटिया के आँगन में ढेर बनाकर रख दिया गया था और वहीं आँगन में बहुत-से हरिण सुख से बैठे जुगाली कर रहे थे।।52।। हवन-सामग्री की गंध से भरा हुआ अग्निहोत्र का जो धुआँ पवन के कारण चारों ओर फैल रहा था उस धुएँ ने आश्रम की ओर आते हुए इन अतिथियों को भी पवित्र कर दिया।।53।। तब राजा दिलीप ने अपने सारथी को आज्ञा दी कि घोड़ों को विश्राम कराओ। तब सहारा देकर पहले तो उन्होंने अपनी पत्नी को रथ से उतारा फिर स्वयं भी रथ से उतर पड़े।।54।। जब यह समाचार आश्रमवालों को मिला, तब वहाँ के सभ्य संयमी मुनियों ने अपने रक्षक, आदरणीय तथा नीति के अनुसार चलनेवाले सपत्नीक राजा दिलीप का स्वागत किया।।55।। जब संध्या की सब क्रियाएँ हो चुकीं, तब उन्होंने उन तपस्वी महामुनि वशिष्ठ को देखा, जिनके पीछे देवी अरुन्धती जी भी उसी प्रकार बैठी थीं, जैसे अग्नि के पीछे स्वाहा।।56।। राजा दिलीप और मगध की राजकुमारी सुदक्षिणा ने चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया और गुरु वशिष्ठ तथा उनकी पत्नी ने बड़े दुलार से उनका स्वागत किया।।57।।

---

1. न पतन्ति पितरोऽनेन इति अपत्यम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।। 58।।
अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः।।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः।। 59।।
उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।। 60।।
तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः।। 61।।
हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।। 62।।
पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्‌ब्रह्मवर्चसम्।। 63।।
त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना।
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः।। 64।।

पहले तो वशिष्ठजी ने उनका इतना आतिथ्य-सत्कार किया कि रथ के हिलने से जो उन्हें थकावट हुई थी, वह सब दूर हो गई और तब मुनि वशिष्ठ ने राजर्षि दिलीप से पूछा—कहिए! आपके राज्य में सब कुशल तो है।।58।। राजा दिलीप ने जहाँ अपनी वीरता से शत्रुओं के नगर जीते थे और धनपति बने थे, वहीं वे बातचीत करने की कला में भी बड़े चतुर थे, इसलिये उन्होंने अथर्ववेद के रक्षक वशिष्ठजी के उत्तर में बड़ी अर्थ-भरी वाणी में कहा।।59।। 'आपकी कृपा से इस राज्य में [राजा, मंत्री, मित्र, राजकोष, राज्य, दुर्ग और सेना ये] सातों अंग भरपूर हैं। [अग्नि, जल, महामारी और अकालमृत्यु इन] दैवी विपत्तियों और [चोर, डाकू, शत्रु आदि] मानुषी आपत्तियों को दूर करनेवाले तो आप बैठे ही हैं।।60।। आप मंत्रों के रचयिता हैं। आपके मंत्र ही इतने शक्तिशाली हैं कि मुझे अपने बाण चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि अपने बाणों से तो मैं केवल उन्हें ही बेध सकता हूँ जो मेरे आगे आते हैं, पर आपके मंत्र तो यहीं बैठे-बैठे दूर से ही शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं।।61।। हे यज्ञ करनेवाले! आप जब शास्त्रीय विधि से अग्नि में हवि छोड़ते हैं, तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखे हुए धान के खेतों पर जलवृष्टि होकर बरसने लगती है।।62।। यह आपके ब्रह्मतेज का ही तो फल है कि मेरी प्रजा में कोई भी न तो सौ बरस से कम आयु पाता है और न किसी को ईति [बाढ़, सूखा, चूहा, तोता, राज-कलह, बैरी की चढ़ाई आदि] तथा विपत्ति का डर रहता है।।63।। जब आप स्वयं ब्रह्मा के पुत्र ही हमारे कुलगुरु होकर सदा हमारा कल्याण करने के लिए बैठे हैं, तब हमारी सम्पत्ति भला निर्विघ्न क्यों न रहे।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी।।65।।
नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः।।66।।
मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते।।67।।
सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः।।68।।
लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।।69।।
तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्।।70।।
असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे।
अरुंतुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः।।71।।

देव! आपकी इतनी कृपा होते हुए भी जब आपकी इस वधू [मेरी पत्नी] के गर्भ से मेरे समान तेजस्वी पुत्र नहीं हुआ, तब रत्नों को पैदा करने वाली, कई द्वीपों में फैली हुई, अपने राज्य की यह पृथ्वी भी मुझे कैसे अच्छी लग सकती है?।।65।। अब तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि मेरे पीछे कोई मुझे पिण्ड देनेवाला भी नहीं रह जायेगा। इसी दुःख से मेरे पितर मेरे दिए हुए, श्राद्ध के अन्न को भरपेट न खाकर उसका भाग आगे के लिये इकट्ठा करने लग गए हैं।।66।। जब मैं तर्पण के समय जलदान देने लगता हूँ, तब मेरे पितर यह सोचकर दुःख की साँसें लेने लगते हैं कि इसके पीछे हमें जल कौन देगा और यह सोचकर वे अपनी साँसों से गरम हुए जल को ही पी डालते हैं।।67।। जिस प्रकार लोकालोक नाम का पर्वत एक भाग से सूर्य का प्रकाश पड़ने से चमकता है और दूसरा भाग प्रकाश न पड़ने से अंधकारमय रहता है, उसी प्रकार सदा यज्ञ करने से मेरा चित्त प्रसन्न रहता है; किन्तु पुत्र न होने से सदा शोक से भरा रहता है।।68।। देव! तपस्या करने से और ब्राह्मणों तथा दीनों को दान देने से जो पुण्य मिलता है, वह केवल परलोक में सुख देता है; पर अच्छी सन्तान [सेवा-सुश्रुष करके] इस लोक में तो सुख देती ही है; साथ ही [तर्पण और पिण्डदान आदि करके] परलोक में भी सुख देती है।।69।। हे गुरुदेव! जैसे अपने हाथों से प्रेम से सींचे हुए आश्रम के वृक्ष में फल लगता न देखकर बड़ा दुःख होता है, वैसे ही जब आप मुझ कृपा-पात्र को सन्तानहीन देखते हैं, तो क्या आपको दुःख नही होता?।।70।। हे भगवन्! जिस प्रकार हाथी को उसका खूँटा अत्यन्त कष्ट देता है, वैसे ही पुत्र न होने के कारण जो पितरों का भार मेरे सिर पर चढ़ा है वह भी मुझे बहुत पीड़ा दे रहा है।।71।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः।। 72।।

इति विज्ञापितो राजा ध्यानरित्तिमितलोचनः।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः।। 73।।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणयम्।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत्।। 74।।

पुराशक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि।। 75।।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन्।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः।। 76।।

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति।।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा।। 77।।

स शापो न त्वयाराजन्नच सारथिना श्रुतः।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे।। 78।।

इसीलिये हे प्रभो! अब कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मेरे पुत्र-रत्न हो और मैं अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाऊँ; क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की सभी कठिनाइयाँ आपकी कृपा से दूर होती रही हैं।।72।। राजा की बात सुनकर वशिष्ठजी ने अपनी आँखें बन्द करके क्षण भर के लिये ध्यान लगाया। उस समय वे उस ताल के समान स्थिर और निश्चल हो गए, जिसकी सब मछलियाँ सो गई हों।।73।। वशिष्ठजी ने अपने योग के वल से जान लिया कि पवित्र आत्मावाले राजा को पुत्र क्यों नहीं हुआ और ध्यान पर चुकने पर वे राजा को समझाने लगे।।।74।। हे राजन्! बहुत दिन हुए एक बार जब तुम स्वर्ग से इन्द्र की सेवा करके पृथ्वी को लौट रहे थे, तब मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।।75।। उस समय तुम्हारी पत्नी ने रजस्वला होने पर स्नान किया था और तुम सोचते जा रहे थे कि [यदि इस समय उसके साथ संभोग नहीं करूँगा तो] गृहस्थ का धर्म बिगड़ जायेगा। इसी विचार में पड़े रहने के कारण तुमने कामधेनु की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यह काम तुमने ठीक नहीं किया, क्योंकि तुम्हें चाहिए था कि उसकी पूजा और प्रदक्षिणा करते हुए लौटते।।76।। इसी से रुष्ट होकर कामधेनु ने तुम्हें शाप दिया कि तुमने जो मेरा तिरस्कार किया है, इसका दंड यही है कि जब तक तुम मेरी सन्तान की सेवा नहीं करोगे, तब तक तुम्हें पुत्र नहीं होगा।।77।। उस समय बड़े-बड़े मतवाले दिग्गज आकाशगंगा में खेलते हुए बहुत चिग्घाड़ रहे थे, इसलिये उस शाप को न तो तुम ही सुन पाए, न तुम्हारी सारथी ही।।78।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईप्सितं[1] तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। 79।।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति।। 80।।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा।। 81।।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात्[2]।। 82।।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम्।। 83।।

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना।। 84।।

इसलिये तुम्हारे पुत्र न होने का कारण यही है कि तुमने कामधेनु का तिरस्कार किया है देखो, जो पुरुष अपने पूज्यों की पूजा नहीं करता है, उसके शुभ कार्यों में विघ्न पड़ता ही है।।79।। अब इस समय कामधेनु तो मिल नहीं सकती; क्योंकि वरुणदेव पाताल में बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञ में आहुति की सामग्री देने के लिये कामधेनु भी पाताल लोक चली गई हैं और उस लोक के द्वारों पर बड़े-बड़े विषधर सर्प रखवाले भी बैठे हैं।।80।। [चाहिए तो यही था कि पहले तुम कामधेनु को ही प्रसन्न करते पर इस समय तो उनका दर्शन दुर्लभ है।] इसलिये तुम उसकी पुत्री नन्दिनी को ही उसका प्रतिनिधि समझ लो और अपनी रानी के साथ शुद्धमन से उसकी सेवा करो, क्योंकि यदि वह प्रसन्न हो जायेगी, तो वह तुरन्त इच्छित फल अवश्य दे देगी।।81।। इधर वशिष्ठजी यह कह ही रहे थे कि उनकी आहुति के लिये घृत आदि जुटाने वाली सुलक्षणा नन्दिनी गौ वन से लौटकर आ पहुँची।।82।। नन्दिनी की देह नये पत्ते के समान कोमल और लाल थी। उसके माथे पर बनी हुई भूरे बालों की टेढ़ी रेखा ऐसी जान पड़ती थी, जैसे लाल संध्या के माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा आसीन हो।।83।। अपना बछड़ा देखते ही उसके कुंड के समान बड़े-बड़े थनों से वह गरम-गरम दूध निकलकर पृथ्वी पर टपकने लगा, जो यज्ञ के पश्चात् किए हुए अवभृथ स्नान के जल से भी अधिक पवित्र था।।84।।

---

1. अवेहि
2. अस्मात्परमयमधिकः श्लोक उपलभ्यते क्वचित्—
ताम्रां ललाटजां रेखां बिभ्रती सा सितेतराम्।
सन्ध्या प्रतिपदेनेव प्रतिद्युतिभिन्ना हिमांशुना।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः।। 85।।

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत्।। 86।।

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगण्यात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्।। 87।।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।। 88।।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाःस्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः।। 89।।

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात्।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि।। 90।।

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्।। 91।।

नन्दिनी के आते समय उसके खुरों से उड़ी हुई धूल के लगने से राजा दिलीप वैसे ही पवित्र हो गए, जैसे किसी तीर्थ में स्नान करके लौटे हों। शकुन जाननेवाले तपस्वी वशिष्ठजी ने जब उस गौ को देखा।। 85।। जिसके दर्शन से ही पुण्य मिलता है, तब वे अपने यजमान उन राजा दिलीप से बोले, जो अपनी प्रार्थना सफल कराने के लिए वहाँ आए हुए थे।।86।। 'हे राजन्! तुम्हारा मनोरथ बहुत शीघ्र ही पूरा होगा; क्योंकि यह कल्याण करनेवाली नन्दिनी नाम लेते ही आ पहुँची है।।87।। जैसे विद्यार्थी [सब सुखों को छोड़कर] लगन से पढ़कर विद्या प्राप्त कर लेता है, वैसे ही यदि तुम भी [सब भोगों को छोड़कर] कन्द-मूल-फल खाते हुए सदा इस गौ की सेवा करोगे, तो वह भी तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करेगी।।88।। जब यह चले, तब तुम भी इसके पीछे-पीछे चलने लगना, जब खड़ी हो जाय, तब तुम भी खड़े हो जाना, जब बैठे तभी तुम भी बैठना और जब यह पानी पीने लगे, तभी तुम भी पानी पीना।।89।। तुम्हारी रानी सुदक्षिणा को चाहिए कि वे नित्य प्रातःकाल बड़ी भक्ति से इसकी पूजा किया करें और जब यह वन को जाने लगे, तब वे तपोवन के बाड़े तक उसके पीछे-पीछे जायँ और सायंकाल लौटते समय वहीं से अगवानी करके उसे आश्रम में ले आये।।90।। जब तक यह गौ प्रसन्न न हो जाय, तब तक तुम इसी प्रकार इसकी सेवा करते रहो। ईश्वर करे तुम्हें कोई बाधा न हो और जिस प्रकार तुम अपने पिता के योग्य पुत्र हो, वैसा ही सुयोग्य पुत्र तुम्हें भी प्राप्त हो।।91।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ।। 92 ।।
अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम् ।
सूनुः सूनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम् ।। 93 ।।
सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः ।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम् ।। 94 ।।
निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
वशिष्ठाश्रमाभिगमनो नाम प्रथमः सर्गः ।।

राजा दिलीप यह सोचकर मन में बहुत प्रसन्न हुए कि संध्या के समय हवन की अग्नि के सामने बैठकर वशिष्ठजी ने जो कुछ कहा है वह अवश्य सत्य होगा। तब बड़ी नम्रता से उन्होंने वशिष्ठजी से कहा कि 'हम ऐसा ही करेंगे' और यह कहकर उन्होंने और उनकी पत्नी ने गुरुजी से इस व्रत के लिये आज्ञा ली।।92।। रात हो चली थी। विद्वान्, सत्यवक्ता, ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठजी ने राजा दिलीप को जाकर सोने की आज्ञा दे दी।।93।। यद्यपि वशिष्ठजी चाहते तो अपनी तपस्या के प्रभाव से ही राजा दिलीप के योग्य भोजन और सोने का उचित प्रबन्ध कर सकते थे; पर वे व्रत के नियमों को जानते थे, इसलिये उन्होंने राजा के व्रत के योग्य [कन्दमूल के भोजन और कुश की चटाई का] ही प्रबन्ध किया था।।94।। कुलपति वशिष्ठजी ने जो पर्णकुटी बताई, उसी में राजा दिलीप ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रानी सुदक्षिणा के साथ कुशा की चटाई पर ही सो गए और प्रातःकाल ही जब वशिष्ठजी ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाना प्रारंभ किया, तब उसकी ध्वनि कान में पड़ते ही राजा दिलीप उठ बैठे।।95।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंशम् महाकाव्य का 'वशिष्ठ के आश्रम में आगमन' नाम का पहला सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयः सर्गः ।।

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ।। 1 ।।
तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।। 2 ।।
निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ।। 3 ।।
व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोप्यऽनुयायिवर्गः ।।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ।। 4 ।।
आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत ।। 5 ।।
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ।। 6 ।।

दूसरा सर्ग

दूसरे दिन प्रातःकाल रानी सुदक्षिणा ने पहले फूल-माला-चन्दन लेकर नन्दिनी की पूजा की, फिर जब नन्दिनी के बछड़े ने दूध पी लिया, तब यशस्वी राजा दिलीप ने उसे बाँध दिया और ऋषि की गौ को जंगल में चरने के लिये खोल दिया।।1।। नन्दिनी चली जा रही थी और उसके खुरों से उड़ी हुई धूल मार्ग को पवित्र करती जा रही थी, उसी मार्ग में नन्दिनी के पीछे-पीछे चलती हुई उस समय की पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ रानी सुदक्षिणा को ठीक वैसे ही चली जा रही थी जैसे श्रुति के पीछे-पीछे स्मृति चली जा रही हो।।2।। कोमल हृदयवाले यशस्वी राजा दिलीप ने आश्रम के द्वार पर से ही रानी सुदक्षिणा को लौटा दिया और अपने आप उस नन्दिनी की रक्षा के लिये चल पड़े जो ऐसी प्रतीत होती थी, मानो साक्षात् पृथ्वी ने ही गौ का रूप धारण कर लिया हो, जिसके चारों थन ही पृथ्वी के चार समुद्र हों।।3।। राजा दिलीप ने केवल रानी को ही नहीं वरन् सब नौकर-चाकरों को भी लौटा दिया; क्योंकि उन्होंने तो गौ की सेवा का व्रत ले ही लिया था। रही अपने शरीर की रक्षा की बात, तो उसके लिये उन्होंने किसी सेवक की आवश्यकता नहीं समझी; क्योंकि जिस राजा ने मनु के वंश में जन्म लिया हो, वह अपनी रक्षा तो स्वयं कर ही सकता है।।4।। राजा दिलीप बड़ी लगन से नन्दिनी की सेवा करने लगे। कभी तो वे उसे रसीली घास की मुट्ठियाँ खिलाते, कभी उसकी देह खुजलाते, कभी डाँस उड़ाते और जिधर भी वह जाना चाहती थी उधर उसे जाने देते।।5।। जब वह खड़ी होती तो राजा भी खड़े हो जाते, ज्यों ही वह चलने को पग बढ़ाती त्यों ही वे भी चल पड़ते, वह बैठती तो ये भी बैठ जाते और जब वह जल पीने की इच्छा करती, तभी राजा भी जल की अभिलाषा रखता था। [बस यह समझिए कि] वे छाया के समान ही उसके पीछे-पीछे चले जा रहे थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः।।7।।
लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्।।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्।।8।।
विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः।।9।।
मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम्।
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।।10।।
धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः।।11।।
स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः।।12।।

किसी मतवाले हाथी के माथे से मद की धारा न भी निकलती हो तो भी उसको देखते ही उसके तेज का अनुमान हो जाता है। [राजा दिलीप के साथ भी ठीक यही बात थी।] उन्होंने गौ की सेवा के व्रत के कारण यद्यपि [छत्र, चँवर, आदि सब] राज-चिह्नों और राजसी ठाट छोड़ दिये थे, फिर भी उनके सुगठित शरीर और मुख के तेज को देखकर कोई भी कह सकता था कि ये सम्राट ही हैं।।7।। उनके सिर की लटें जंगल की लताओं के समान उलझ गई थीं। जब वे हाथ में धनुष लेकर जंगल में घूमते थे, तब उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो नन्दिनी की रक्षा के बहाने वे जंगल के दुष्ट जीवों को शान्त रहने की शिक्षा दे रहे हों।।8।। मार्ग के वृक्षों पर अनेक मतवाले पक्षी चहचहा रहे थे। उनका कलरव सुनकर ऐसा जान पड़ता था, मानो मार्ग के वृक्ष, यह समझकर वरुण के समान तेजस्वी राजा दिलीप की जय-जयकार कर रहे हों कि उनकी जय करनेवाला कोई भी सेवक उनके साथ नहीं है।।9।। [जब वृक्षों ने राजा का सत्कार किया तब वन की लताएँ ही क्यों पीछे रहें।] इसलिये जिधर-जिधर राजा दिलीप जाते थे, उधर-उधर की लताएँ अग्नि के समान तेजस्वी और पूजनीय राजा दिलीप के ऊपर उसी प्रकार फूलों की वर्षा करने लगीं, जिस प्रकार राजा के स्वागत में नगर की कन्याएँ राजा के ऊपर धान की खीलें बरसाती हैं।।10।। राजा दिलीप के हाथों में धनुष देखकर भी हरिणियाँ डरीं नहीं; क्योंकि वे उन्हें देखते ही समझ गईं कि ये बड़े कोमल हृदयवाले हैं, [बाण नहीं चलायेंगे।] राजा दिलीप के सुन्दर शरीर को वे इस प्रकार एकटक देखती ही रह गईं, मानो नेत्रों के बड़े होने का उन्हें सच्चा फल प्राप्त हो गया हो।।11।। राजा दिलीप सुन रहे थे कि वन-देवता वन की कुंजों में ऊँचे स्वर से उनका यश गा रहे हैं। उन वन-देवताओं के गीत के साथ वे बाँस भी मधुर बाँसुरी बजा रहे थे, जिनके छेदों में से वायु भर जाने के कारण मधुर स्वर निकल रहे थे।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे।। 13।।
शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने।। 14।।
संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।। 15।।
तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना।। 16।।
स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानिपश्यन्।। 17।।
आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः।
उभावलंचक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तपथं गताभ्याम्।। 18।।
वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्त्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्।। 19।।

पहाड़ी झरनों की ठंडी फुहारों से लदा हुआ और मन्द-मन्द कँपाए हुए वृक्षों के फूलों की गन्ध में बसा हुआ वायु उन सदाचारी राजा दिलीप को ठंडक देता चल रहा था, जिन्हें छत्र न होने के कारण धूप से कष्ट हो रहा था।।13।। राजा दिलीप प्रजापालक थे, इसीलिये उनके जंगल में पहुँचते ही वर्षा के बिना वन की आग ठंडी हो गई, वहाँ के पेड़ भी फल और फूलों से लद गए और वहाँ के बड़े जीवों ने छोटे जीवों को सताना भी छोड़ दिया।।14।। दिन ढलने पर नये पत्तों की लालिमा के सामने सूर्य की लालिमा चारों ओर फैलकर सब दिशाओं को पवित्र करके अब विश्राम करने लौट चली। उधर लाल रंग की नन्दिनी भी अपने खुरों के स्पर्श से मार्ग को पवित्र करती हुई तपोवन की ओर लौट पड़ी।।15।। पृथ्वी का पालन करनेवाले राजा दिलीप भी वशिष्ठ ऋषि के यज्ञ, श्राद्ध, अतिथि-पूजा आदि धर्म के कामों के लिये दूध देनेवाली उस नन्दिनी के पीछे-पीछे लौटते हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे ब्रह्मा की पुत्री श्रद्धा के साथ सदाचार शोभा पाता है।।16।। राजा दिलीप देखते हुए चले जा रहे थे कि कहीं तो छोटे-छोटे तालों में से सूअरों के झुंड निकल-निकल कर चले जा रहे हैं, कहीं मोर अपने बसेरों की ओर उड़े जा रहे हैं, कहीं हरिण हरी-हरी घासों पर थककर बैठ गए हैं और धीरे-धीरे साँझ होने से वन की सारी धरती धुँधली पड़ती जा रही है।।16।। नन्दिनी और दिलीप दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे थे। नन्दिनी अपने थन के भारी होने से धीरे-धीरे चल रही थी और राजा दिलीप भारी शरीर होने के कारण धीरे-धीरे चल रहे थे। उन दोनों को धीरे-धीरे चलते देख़कर तपोवन का मार्ग देखते ही बनता था।।18।। सायंकाल में राजा दिलीप नन्दिनी के पीछे-पीछे जब लौटे तब सुदक्षिणा अपलक नेत्रों से उन्हें देखती रह गई मानो उसकी आँखें राजा दिलीप का रूप पीने को प्यासी हों।।19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव संध्या।।20।।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः।।21।।

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि।।22।।

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सांध्यं च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम्।।23।।

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्।।24।।

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्त्तेः।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य।।25।।

आश्रम के मार्ग में गौ के पीछे राजा दिलीप थे और आगे अगवानी के लिये रानी सुदक्षिणा खड़ी थीं। इन दोनों के बीच में वह लाल रंगवाली नन्दिनी ऐसी शोभा पा रही थी, जैसे दिन और रात के बीच में संध्या सुशोभित होती है।।20।। पहले तो सुदक्षिणा ने हाथ में अक्षत आदि सामग्री लेकर नन्दिनी की पूजा करके प्रदक्षिणा की, फिर प्रणाम करके उसकी सींगों के बीच में माथे पर चन्दन-अक्षत लगाया; क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि वह सींगों का मध्य नहीं वरन् मेरी पुत्र-कामना की पूर्ति का द्वार है।।21।। यद्यपि नन्दिनी उस समय अपना बछड़ा देखने के लिये बहुत उतावली थी, फिर भी वह रानी से पूजा कराने के लिये खड़ी हो गई। नन्दिनी का यह प्रेम देखकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि नन्दिनी के समान मनोरथ पूर्ण करनेवाले यदि भक्त पर प्रसन्न हो जायें, तो समझ लो कि काम पूरा हो गया।।22।। गौ की पूजा हो चुकने पर शत्रुओं के संहारक राजा दिलीप ने पहले वशिष्ठजी और अरुन्धतीजी के चरणों की वन्दना की और फिर अपने सन्ध्या के नित्यकर्म पूरे किए। जब नन्दिनी का दूध दुह लिया गया और वह बैठ गई तब राजा दिलीप फिर उसकी सेवा में लग गए।।23।। प्रजापालक राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ बहुत देर तक नन्दिनी की सेवा और पूजा करते रहे। जब वह सो गई तब ये दोनों भी सोने चले गए और ज्यों ही वह सोकर उठी, त्यों ही इन दोनों की नींद भी टूट गई।।24।। इस प्रकार सन्तान-प्राप्ति के लिये अपनी पत्नी के साथ यह कठोर व्रत करते हुए दीनों के रक्षक परम कीर्तिशाली राजा दिलीप के इक्कीस दिन बीत गए।।25।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश।।26।।
सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष।।27।।
तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम्।।28।।
स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्।।29।।
ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः।।30।।
वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे।।31।।
बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः।।32।।

तब नन्दिनी ने सोचा कि मैं अपने सेवक राजा दिलीप की परीक्षा क्यों न ले-लूँ कि वह सच्चे भाव से सेवा कर रहा है या केवल स्वार्थभाव से। इसीलिये राजा दिलीप जब बाईसवें दिन उसे वन में ले गए, तो वह एकाएक हिमालय की उस गुफा में प्रविष्ट हो गई, जिस पर से गंगाजी की धारा गिर रही थी और जिसके तट पर घनी हरी-हरी घास खड़ी हुई थी।।26।। राजा दिलीप ने भी उधर जाने से उसे नहीं रोका; क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि कोई भी हिंसक जन्तु नन्दिनी पर आक्रमण करने की बात नहीं सोच सकता। इतने में ही गौ को अचानक एक सिंह ने दबोच लिया। उस समय राजा दिलीप पर्वत की शोभा देख रहे थे; इसलिये उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ा कि उस पर सिंह कब झपटा।।27।। सिंह की झपट से नन्दिनी रँभाने लगी और उसकी ध्वनि गुफा में गूँज उठी। राजा दिलीप उस समय पर्वत की शोभा निहारने में लगे हुए थे; पर इस पुकार ने उनकी दृष्टि को उसी प्रकार खींच लिया जैसे किसी ने रस्सी में बाँधकर उनकी दृष्टि को खींच लिया हो।।28।। धनुषधारी राजा दिलीप ने देखा कि उस लाल गौ पर बैठा हुआ सिंह ऐसा लग रहा है, जैसे गेरू के पहाड़ की ढाल पर बहुत-से फूलोंवाला लोध का पेड़ फूल रहा हो।।29।। उस समय सिंह के समान चलनेवाले शरणागत-रक्षक और बलपूर्वक शत्रुओं का संहार करनेवाले राजा दिलीप क्रोध से लाल हो गए और उन्होंने समझा कि यह सिंह मेरी शरण में आई हुई गौ को मारकर मेरा अपमान करना चाहता है। बस, झट उन्होंने उस सिंह को मारने के लिये तूणीर से बाण निकालने को हाथ उठाया।।30।। [कहाँ तो राजा दिलीप उस सिंह को मारने जा रहे थे और कहाँ यह हुआ कि] उनके दाहिने हाथ की उँगलियाँ उनके नखों से चमकनेवाले बाणों के पंखों से चिपक गईं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ने लगा, जैसे बाण निकालने का प्रयत्न करने का किसी ने चित्र खींच लिया हो।।31।। इसी प्रकार हाथ बँध जाने से राजा दिलीप पास ही खड़े अपराधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः।। 33।।
अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।। 34।।
कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्त्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्।।35।।
अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः।। 36।।
कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः।। 37।।
तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति।। 38।।
तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव।। 39।।

पर प्रहार न कर सकने के कारण क्रोध से तमतमा उठे और अपने तेज से भीतर ही भीतर उसी प्रकार जलने लगे जैसे मन्त्र और जड़ी से बँधा हुआ साँप।। 32।। सज्जनों के मित्र, मनुवंश के शिरोमणि और सिंह के समान पराक्रमी राजा दिलीप बड़े अचम्भे में पड़े हुए थे और जब वह सिंह मनुष्य की बोली में बोलने लगा तब तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा।।33। सिंह बोला—हे राजन्! तुम मुझे मारने का प्रयत्न मत करो; क्योंकि मुझ पर जो भी अस्त्र चलाओगे, वह व्यर्थ जायेगा। देखो! वायु का जो वेग वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंक सकता है, वह पर्वत का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।।34।। [मुझे तुम साधारण सिंह मत समझना] मैं सर्वशक्तिशाली शंकरजी का कृपापात्र सेवक तथा कुम्भोदर नाम का गण हूँ और शिवजी के शक्तिशाली गण निकुम्भ का मित्र हूँ। जब शंकरजी कैलाशपर्वत के समान उजले नन्दी पर चढ़ते हैं, तब पहले अपने चरणों से मेरी पीठ पवित्र करते हैं।।35।। यह जो तुम्हारे सामने बड़ा-सा देवदारु का पेड़ दिखाई दे रहा है, इसे शंकरजी अपने पुत्र के समान मानते हैं; क्योंकि स्वयं पार्वती अपने सोने के घटरूपी स्तनों के रस से सींच-सींचकर इसे इतना बड़ा किया है।।36।। [तुम जानते नहीं हो कि पार्वतीजी इससे कितना प्यार करती हैं।] एक बार एक जंगली हाथी ने आकर इससे रगड़-रगड़कर अपनी कनपटी खुजलाने लगा। उससे इसकी थोड़ी छाल छिल गई। बस, इतने पर ही पार्वतीजी को ऐसा शोक हुआ, जैसा दैत्यों के बाणों से घायल स्वामिकार्तिकेय को देखकर हुआ था।।37।। तब से शंकरजी ने जंगली हाथियों को डराने के लिये मुझे यहाँ पहाड़ के ढाल पर रखवाला बनाकर रख छोड़ा है और मेरा पेट भरने के लिये मुझे आज्ञा दे दी है कि यहाँ जो जीव आये उसे मारकर खा जाया करो।।38।। जैसे चन्द्रमा का अमृत राहु को मिलता है, वैसे ही शिवजी की कृपा से ठीक भोजन के समय पर यह गौ आ गई है और मेरे आज के भोजन के लिये पर्याप्त है।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति।।40।।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार।।41।।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः।।42।।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये।।43।।

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम्।।44।।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।।45।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन्।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किंचिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे।।46।।

इसलिये अब तुम लाज छोड़कर घर लौट जाओ। तुमने यह तो दिखा ही दिया है कि तुम अपने गुरु के बड़े भक्त हो। परन्तु जब किसी वस्तु की रक्षा शस्त्र से हो ही न सके, तब शस्त्र धारण करने वाले का क्या दोष? इससे उसका तो अपयश होता नहीं है।।40।। सिंह की ऐसी ढीठ बातें सुनकर जब राजा को विश्वास हो गया कि शंकरजी के प्रभाव से ही हम अस्त्र नहीं चला सके, तब कहीं उनके मन की आत्मग्लानि कुछ कम हो पाई।।41।। एक बार जब इन्द्र ने शिवजी पर वज्र चला दिया था, तब शिवजी ने केवल उनकी ओर देख भर दिया कि इन्द्र जड़ीभूत हो गए। ठीक वही दशा दिलीप की भी हो गई। बाण चलाने में पहले-पहल विफल होनेवाले, हाथ बँधे राजा दिलीप ने सिंह से कहा।।42।। 'हे सिंह! हाथ के बँध जाने से मैं कुछ कर नहीं सकता इसलिये जो कुछ मैं कहूँगा, उसकी सब खिल्ली ही उड़ायेंगे, फिर भी तुम सबके मन की बात जानते हो, इसलिये मैं तुमसे ही कह रहा हूँ।।43।। देखो! जड़-चेतन सभी प्राणियों को जन्म देनेवाले, पालन-पोषण करने वाले और संहार करनेवाले शिवजी का मैं बड़ा आदर करता हूँ। पर साथ ही मैं अग्निहोत्री गुरु के इस गौ रूपी धन को भी अपनी आँखों के आगे नष्ट होते नहीं देख सकता।।44।। इसलिये तुम मुझे खाकर अपनी भूख मिटा लो और महर्षि वशिष्ठजी की इस गौ को छोड़ दो; क्योंकि इसका नन्हा बछड़ा साँझ हो जाने से इसकी बाट देख रहा होगा।।45।। यह सुनकर वह शिवजी का सेवक सिंह गुफा के अँधेरे में दाँत की चमक से उजाला करता हुआ कुछ हँसकर राजा से बोला।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।। 47।।
भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमति त्वदन्ते।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि।। 48।।
अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयताघटोध्नीः।। 49।।
तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः।। 50।।
एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव।। 51।।
निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः।। 52।।
क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा।। 53।।

'हे राजन्! जान पड़ता है कि तुममें यह सोचने की शक्ति नहीं रह गई कि तुम्हें क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? क्योंकि तुम एक साधारण-सी गौ के पीछे इतना बड़ा राज्य, यौवन और ऐस सुन्दर शरीर छोड़ने पर उतारू हो गए हो।।47।। यदि तुम केवल प्राणियों पर दया करने के विचार से ही ऐसा कर रहे हो, तो भी यह त्याग ठीक नहीं है, क्योंकि इस समय यदि तुम मेरे भोजन बनते हो, तो केवल एक गौ की रक्षा होगी, परन्तु यदि जीते रहोगे, तो पिता के समान तुम अपनी पूरी प्रजा की रक्षा कर सकोगे।।48।। यदि तुम गौ के स्वामी और अग्नि के समान अपने तेजस्वी गुरुजी से डरते हो, तो उन्हें बड़े-बड़े थनोंवाली करोड़ों गौएँ देकर तुम मना सकते हो।।49।। देखो! अभी तुम्हारे खेलने-खाने के दिन हैं। इसलिए तुम अपने बलवान् शरीर की रक्षा करो, क्योंकि विद्वानों ने कहा है कि सुख और समृद्धि से भरा हुआ राज्य पृथ्वी पर ही स्वर्ग के समान होता है। उस स्वर्ग और इस स्वर्ग में इतना ही अन्तर होता है कि यह भूमिका स्वर्ग होता है और वह देवलोक का।।50।। जब इतना कहकर सिंह चुप हो गया, तब पर्वत की कन्दरा से भी सुनाई पड़नेवाली उसकी गूँज ऐसी जान पड़ी मानो पर्वत ने भी प्रसन्न होकर सिंह की ही बातों का समर्थन किया हो।।51।। राजा ने एक ओर सिंह की बातें सुनीं और दूसरी ओर देखा कि सिंह के नीचे दबी हुई गौ कातर नेत्रों से रक्षा की भीख माँग रही है। दयालु राजा दिलीप का जी भर आया और वे बोले—।।52।। 'हे सिंह! क्षत्रिय शब्द का अर्थ ही है कि दूसरों को नष्ट होने से बचाये। यदि मैंने यह काम नहीं किया तो मेरा राज्य करना ही किस काम का और अपशय लेकर जीते रहना ही किस काम का।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथं न शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम्।।54।।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः।।55।।

भवानपीदं परवानवैति महान्हि यत्नस्तव देवदारौ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन।।56।।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधाना पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।।57।।

संबन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते।
तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम्।।58।।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य।।59।।

तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम्।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता।।60।।

तुम समझते हो कि इसके बदले में दूसरी गौएँ देकर मैं महर्षि वशिष्ठ को मना लूँगा। यह नहीं हो सकता। तुम इस गौ को नहीं पहचान रहे हो। यह किसी भी प्रकार कामधेनु से कम नहीं है। आज शंकरजी की कृपा से ही तुमने इस पर आक्रमण किया है, नहीं तो तुममें इतनी शक्ति कहाँ [कि इसका बाल भी बाँका कर सको]।।54।। इसलिये मैं अपना शरीर देकर भी इसे छुड़ाऊँगा; क्योंकि ऐसा करने से तुम्हारी भूख भी मिट जायेगी और गौ के न रहने से वशिष्ठ जी की जो यज्ञ-क्रियायें रुक जातीं, वे भी न रुकेंगी।।55।। देखो भाई! तुम भी दूसरे के सेवक हो और बड़ी लगन से देवदारु के वृक्ष की रक्षा कर रहे हो। तुम यह जानते हो कि जिसकी रक्षा का भार सेवक को मिलता है, यदि वह नष्ट हो जाये और सेवक जीता रह जाये, तो बताओ वह अपने स्वामी के आगे कौन-सा मुँह लेकर जायेगा।।56।। यदि तुम किसी कारण से मेरे ऊपर दया करना चाहते हो, तो मेरे यश की रक्षा करो, क्योंकि मुझ जैसे लोगों को पञ्च-तत्व से बने इस नश्वर शरीर का तनिक भी मोह नहीं होता।।57।। देखो भाई! बातचीत चलाने के नाते हम दोनों मित्र हो गए हैं, इसलिये हे शिव के सेवक! अपने मित्र की प्रार्थना मत ठुकराओ।।58।। यह सुनकर सिंह बोला—अच्छी बात है, यही सही। तत्काल दिलीप का हाथ खुल गया और राजा दिलीप अपने अस्त्र फेंककर मास के पिंड के समान सिंह के आगे जा पड़े।।59।। नीचा मुँह करके राजा दिलीप यह सोच ही रहे थे कि अब सिंह उन पर आक्रमण करने वाला है कि इतने में ही प्रजा-पालक राजा दिलीप के ऊपर आकाश से विद्याधरों ने फूलों की झड़ी लगा दी।।60।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्।।61।।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुःप्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः।।62।।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पयाच प्रीतास्मि ते पुत्र वरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।।63।।

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे।।64।।

संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश।।65।।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।।66।।

इत्थं क्षितीशेन वशिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण।।67।।

इस बीच अमृत के समान मीठे वचन सुनाई पड़े—'उठो बेटा'! राजा दिलीप ने सिर उठाया और देखा कि आगे स्तनों से दूध टपकाती हुई माता के समान केवल नन्दिनी ही खड़ी है, सिंह का कहीं नाम भी नहीं है।।61।। राजा दिलीप आश्चर्य भरी आँखों से यह सब देख रहे थे। इतने में नन्दिनी मनुष्य की बोली में बोलने लगी—'हे साधु! मैंने माया रचकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। वशिष्ठ ऋषि के प्रभाव से यमराज भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, फिर अन्य हिंसक जीवों की तो शक्ति ही क्या है।।62।। हे पुत्र! तुमने जो अपने गुरु में भक्ति और मुझ पर दया दिखलाई है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वर माँग लो। तुम मुझे दूध देनेवाली साधारण गौ मात्र न समझना। मैं प्रसन्न हो जाऊँ तो मैं मुँह-माँगा फल दे सकती हूँ।।63।। तब मनचाहा दान देनेवाले और अपने पराक्रम से वीर कहलाने वाले राजा दिलीप ने हाथ जोड़कर यह वर माँगा कि मेरी प्यारी रानी सुदक्षिणा के गर्भ से ऐसा यशस्वी पुत्र हो जिससे सूर्यवंश बराबर बढ़ता चले।।64।। नन्दिनी ने सन्तान माँगने वाले राजा दिलीप से प्रतिज्ञा की कि मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगी और यह आज्ञा दी कि तू एक दोने में मेरा दूध दुहकर पी जा।।65।। राजा ने कहा—"हे माँ! मैं चाहता हूँ कि बछड़े के पी चुकने और हवन-क्रिया से बचने पर ही ऋषि की आज्ञा लेकर मैं उसी प्रकार आपका दूध ग्रहण करूँ, जैसे मैं राज्य की रक्षा करके उसका छठा भाग ग्रहण करता हूँ।।66।। यह बात सुनकर तो नन्दिनी बहुत ही प्रसन्न हुई और राजा के साथ ही हिमालय की उस कन्दरा से बिना थके ही आश्रम की ओर लौट पड़ी।।67।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव।।68।।
स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
पपौ वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः।।69।।
प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः।।70।।
प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः।।71।।
श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन।।72।।
तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम्।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्।।73।।

निर्मल चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले राजाधिराज दिलीप जब वशिष्ठजी के पास पहुँचे तब उनका प्रसन्न मुख देखते ही वशिष्ठजी सब बातें पहले से समझ गए। इसलिए राजा ने जो समाचार सुनाया वह उन्हें ऐसा लगा मानो दुहराया जा रहा हो। गुरुजी से कह चुकने पर राजा दिलीप ने यह समाचार सुदक्षिणा से भी कह सुनाया।।68।। जब बछड़ा दूध पी चुका और हवन भी हो चुका, तब सज्जनों के प्यारे प्रशंसनीय राजा दिलीप ने वशिष्ठजी की आज्ञा से नन्दिनी का दूध ऐसे पी लिया, मानो उन्हें बड़ी प्यास लगी हुई हो। उस दूध की धवलता तो कहना ही क्या! उनको जान पड़ा मानो स्वयं उज्ज्वल यश ही दूध बन आया हो।।69।। दूसरे दिन प्रातःकाल जितेन्द्रिय वशिष्ठजी ने समझ लिया कि गौ की सेवा का व्रत तो पूरा ही हो गया; इसलिये उन्होंने राजा और रानी दोनों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा मार्ग आनन्द से कटे और उन्हें अयोध्या के लिये विदा कर दिया।।70। विदा लेते समय राजा ने पहले हवन-कुण्ड की, फिर गुरु वशिष्ठ की, तब माता अरुन्धती की और सबसे पीछे बछड़े के साथ बैठी हुई नन्दिनी की परिक्रमा की। महर्षि के आशीर्वाद पाने से उनका तेज और भी अधिक बढ़ गया।।71।। सहनशील राजा दिलीप अपनी धर्मपत्नी के साथ जिस रथ पर चढ़कर अयोध्या को चले, उसकी ध्वनि कानों को बड़ी मीठी लग रही थी और वह ऐसा अच्छा था कि उसमें नाम मात्र की भी हचक नहीं लगती थी। इसलिये उस पर सुख से चढ़कर जाते हुए वे ऐसे लगते थे, मानो वे अपने सफल मनोरथ पर बैठे हुए जा रहे हों, रथ पर नहीं।।72।। राजा को अयोध्या से गए बहुत दिन हो गए थे; इसलिये प्रजा उनके दर्शन के लिये तरस रही थी। पुत्र की उत्पत्ति के लिये जो उन्होंने व्रत लिया था, उससे वे कुछ दुबले हो गए थे। अब इतने दिनों बाद लौटने से उनकी प्रजा उन्हें ऐसी एकटक होकर देखने लगी, जैसे लोग द्वितीया के चन्द्रमा के उदय होने पर उसे ध्यान से देखते हैं।।73।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरंदरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।
भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज।।74।।

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः।
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः। 75।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
नन्दिनीवरप्रदानो नाम द्वितीयः सर्गः।।

इन्द्र के समान सम्पत्तिशाली राजा दिलीप ने प्रजा का आदर पाकर अपनी उस अयोध्या नगरी में प्रवेश किया, जिसमें उनके स्वागत के लिये झंडे ऊँचे कर दिए गए थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शेषनाग के समान अपनी बलवती भुजाओं से फिर राज-काज सँभाल लिया।।74।। जैसे अत्रि ऋषि के नेत्र से निकली हुई चन्द्रमारूपी ज्योति को आकाश ने धारण किया और जैसे स्कन्द को उत्पन्न करनेवाले शंकरजी के उस तेज को गंगाजी ने धारण कर लिया, जिसे अग्नि भी नहीं सँभाल सकी थी, वैसे ही रानी सुदक्षिणा ने राजा दिलीप का वंश चलाने के लिये [आठों दिशाओं के] लोकपालों के समान तेजस्वी पुरुषों के तेज से भरा हुआ गर्भ धारण किया।।75।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य का 'नन्दिनी-वर-प्रदान'
नामक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयः सर्ग ।।

अथेप्सितं[1] भर्तुरुपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम्।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य संततेः सुदक्षिणा दोर्हृदलक्षणं दधौ।।1।।
शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।।2।।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम्।।3।।
दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं दिगन्तविश्रान्तरथो हि तत्सुतः।
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे मनो बबन्धान्यरसान्विलङ्घ्य सा।।4।।
न मेह्रिया शंसति किंचिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोसलेश्वरः।।5।।
उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः।।6।।

तीसरा सर्ग

धीरे-धीरे रानी सुदक्षिणा के शरीर में उस गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे, जो राजा दिलीप की इच्छा पूरी होने का सन्देश दे रहे थे, जिन्हें देख-देखकर रानी की सखियों के नेत्रों को ऐसा सुख मिल रहा था, मानो चाँदनी देखकर मगन हो रही हों और जो इस बात के प्रमाण थे कि अब इक्ष्वाकु-वंश नष्ट नहीं होगा, बराबर चलता रहेगा।।1।। गर्भिणी होने से रानी दुबली पड़ गई थीं; इसलिये उन्होंने अपने बहुत-से गहने उतार डाले। उनका मुँह लोध के फूल के समान पीला पड़ गया और इस वेश में रानी सुदक्षिणा उस रात जैसी लगने लगीं, जब थोड़े से तारे बचे रह जाते हैं और चन्द्रमा भी पीला पड़ जाता है।।2।। जैसे गर्मी के अन्त में पहली बार वर्षा होने से जंगल के छोटे-छोटे तालों की मिट्टी सोंधी हो जाती है और हाथी उसे बार-बार सूँघते हैं वैसे ही मिट्टी खाने से रानी सुदक्षिणा का जो मुँह सोंधा हो गया था उसे एकान्त में बार-बार सूँघकर भी राजा दिलीप तृप्त नहीं होते थे।।3।। रानी होकर भी सुदक्षिणा ने सब पदार्थ छोड़कर मानो इसलिये मिट्टी खाना आरंभ किया कि भविष्य में उसका पुत्र भी सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसी प्रकार राज करे जैसे इन्द्र स्वर्ग पर राज करते हैं।।4।। राजा दिलीप समझते थे कि सुदक्षिणा बड़ी लजीली है और अपने मन की बात हमें बताती नहीं है; इसलिये वे बार-बार उसके पास रहनेवाली सखियों से पूछते रहते थे कि रानी को किन-किन वस्तुओं की इच्छा होती है।।5।। गर्भिणी रानी सुदक्षिणा जब जिस वस्तु की इच्छा करती थीं, वह उसी समय उन्हें मिल भी जाती थीं; क्योंकि धनुषधारी राजा दिलीप को स्वर्ग की भी वस्तुएँ मिल सकती थीं फिर इस लोक की वस्तुओं तो बात ही क्या!।।6।।

---

1. ततो विशांपत्युरनन्यसंततेर्मनोरथं किंचिदिवोदयोन्मुखम्।
अनन्यसौहार्दरसस्य दोहदं प्रिया प्रपेदे प्रकृतिप्रियंवदा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा[1] रराज सा।
पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव संनद्धमनोज्ञपल्लवा।।7।।
दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियम्।।8।।
निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्वां महिषीममन्यत।।9।।
प्रियानुरागस्य मनः समुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसंपदाम्।
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीव्यर्धत्त सः।।10।।
सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात्प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः।।11।।
कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भकर्मणि[2]।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ददर्श काले दिवमभ्रितामिव।।12।।
ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसंपदम्।
असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्।।13।।

धीरे-धीरे जब गर्भ के प्रारम्भिक कष्ट बीत गए। तब रानी वैसे ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर लगने लगी, जैसे बसंत ऋतु में लताएँ पुराने पत्ते गिराकर नये कोमल पत्तों से लदकर सुन्दर लगने लगती हैं।।7।। थोड़े ही दिनों में उसके बड़े-बड़े स्तनों की घुंडियाँ (Nipples of Breasts) काली पड़ गईं। इससे रानी के स्तन ऐसे सुन्दर लगने लगे कि उनकी शोभा के आगे कमल के जोड़े पर बैठे हुए भौरों की शोभा भी हार मान बैठी।।8।। राजा दिलीप गर्भिणी सुदक्षिणा को वैसे ही महत्त्ववाली समझते थे, जैसे अमूल्य रत्नों से भरी हुई पृथ्वी, अपने भीतर अग्नि छिपाए रखनेवाली शमी का वृक्ष या भीतर ही भीतर जल बहानेवाली सरस्वती नदी।।9।। राजा दिलीप जितना रानी को प्यार करते थे, जितनी उन्हें प्रसन्नता थी और जितना बड़ा उनका राज्य था, उतने ही ठाट-बाट से उन्होंने पुंसवन आदि संस्कार भी किए।।10।। जब धीरे-धीरे रानी सुदक्षिणा का वह गर्भ बढ़ने लगा, जिसमें लोकपालों के अंश भरे थे, तब उन्हें उठने-बैठने में भी कठिनाई होने लगी, इसलिये जब राजा निवास में आते, तब वे बड़ी कठिनाई से उनके स्वागत के लिये उठ पातीं, उनको प्रणाम करने के लिए जब वे हाथ जोड़तीं तो हाथ ढीले पड़ जाते और थकावट से बार-बार आँखों में आँसू आ जाते। इन बातों को देख-देखकर राजा दिलीप बड़े प्रसन्न होते [क्योंकि वे समझते थे कि अब पुत्र होने में विलम्ब नहीं है]।।11।। बच्चों की चिकित्सा करनेवाले बहुत-से चतुर वैद्य वे सब उपाय कर रहे थे, जिनसे गर्भिणी सुख से बच्चा जनती है और गर्भ पुष्ट होता है। दशवें महीने में राजा ने देखा कि शीघ्र ही पुत्र को जन्म देनेवाली रानी ऐसी लग रही थी जैसे तत्काल में बरसनेवाले बादलों से घिरा हुआ आकाश हो।।12।। जिस प्रकार राजा अपनी तीन साधनाओं वाली शक्ति [तेज, उत्साह और ठीक मन्त्रणा] से अचल सम्पत्ति पा लेता है, वैसे ही इन्द्राणी के समान तेजवाली सुदक्षिणा ने भी वह पुत्र उत्पन्न किया,

---

1. उपोढगात्रोपचया 2. गर्भभर्मणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।। 14।।
अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव।। 15।।
जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे।। 16।।
निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम्।।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद् गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।। 17।।
स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ।। 18।।
सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि।। 19।।

जिसके सौभाग्यशाली होने की सूचना वे पाँच शुभ ग्रह दे रहे थे, जो उस समय उच्चस्थान पर थे और साथ में सूर्य के होने से फल देने में समर्थ थे।।13।। बालक के उत्पन्न होने के समय आकाश खुल गया, शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगा और हवन की अग्नि की लपटें दक्षिण की ओर घूमकर हवन की सामग्रियाँ लेने लगीं। सभी शकुन अच्छे हो रहे थे [और यह उचित भी था] क्योंकि ऐसे बालक संसार के कल्याण के लिये ही उत्पन्न होते हैं।।14।। उस भाग्यवान् बालक का तेज प्रसूति-गृह में चारों ओर इतना छाया हुआ था कि आधी रात के समय घर में रखे हुए दीपों का प्रकाश भी एकदम फीका पड़ गया और वे ऐसे जान पड़ने लगे, मानो चित्र में बने हुए हों।।15।। झट अन्तःपुर के सेवक ने राजा दिलीप के पास आकर पुत्र होने का समाचार सुनाया। यह सुनकर वे इतने प्रसन्न हुए कि छत्र और दोनों चँवर तो न दे सके [क्योंकि वे राजचिह्न थे] शेष सब आभूषण उन्होंने उन्होंने उतारकर उसे दे डाले।।16।। वे तत्काल भीतर गये और जैसे वायु के रुक जाने पर कमल निश्चल हो जाता है, वैसे ही वे एकटक होकर अपने पुत्र का मुँह देखने लगे। जैसे चन्द्रमा को देखकर महासमुद्र में ज्वार आ जाता है, वैसे ही पुत्र को देखकर राजा को इतना अधिक आनन्द हुआ कि वह उनके हृदय में समा न सका।।17।। पुरोहित वशिष्ठजी ने भी जब यह शुभ समाचार पाया, तब वे भी तपोवन से वहाँ आ गए और स्वभाव से ही सुन्दर उस बालक के जातकर्म आदि संस्कार किये। संस्कार हो जाने पर वह बालक वैसे ही सुन्दर लगने लगा, जैसे खान से निकालकर तराशा हुआ हीरा।।18।। यह बालक तो संसार का कल्याण करनेवाला था; इसलिये उसके जन्म लेने पर केवल सुदक्षिणा के पति दिलीप के ही राजमन्दिर में मनोहर बाजे और वेश्याओं के नाच आदि उत्सव नहीं हो रहे थे; वरन् आकाश में देवताओं के यहाँ भी नाच-गान हो रहा था। 19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः।
ऋणाभिधानात्स्वमेव केवलं तदापितृणां मुमुचे स बन्धनात्।।20।।
श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्।।21।।
पितुः प्रयत्नात्स समग्रसंपदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः[1]।।22।।
उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यया जयन्तेन शचीपुरंदरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ।।23।।
रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत।।24।।
उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः।।25।।
तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।
उपान्तसंमीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ।।26।।

[जब राजकुमार का जन्म होता है तब बन्दी-गृहों से बन्दी छोड़ दिए जाते हैं, पर राजा दिलीप के राज्य का ऐसा अच्छा प्रबन्ध था कि कोई अपराध ही नहीं करता था। इसलिये] राज्य में कोई बन्दी ही नहीं था, जिसे वे पुत्र-जन्म की प्रसन्नता में छोड़ते। इसलिये उन्होंने समझा कि पुत्र न होने से जो मैं पितरों के ऋण के बन्धन में था उस बन्धन से आज मैं ही छूट गया हूँ।।20।। [शब्दों के ठीक] अर्थ पहचानने वाले राजा ने (रघि) धातु का 'जाना' अर्थ समझकर अपने पुत्र का नाम इसलिये 'रघु' रक्खा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रों के पार पहुँच जायेगा और युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के व्यूहों को तोड़कर उनके भी पार चला जायेगा।।21।। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा सूर्य की किरणें पाकर दिन-दिन बढ़ने लगता है, वैसे ही बालक रघु के अंग भी सम्पत्तिशाली पिता की देखरेख में दिन-दिन बढ़ने लगे।।22।। जैसे कार्तिकेय के समान पुत्र को पाकर शंकर और पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और जयन्त-जैसे प्रतापी पुत्र को पाकर इन्द्र और शची प्रसन्न हुए थे, वैसे ही राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनों के ही समान तेजस्वी पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए।।23।। राजा और रानी में चकवा और चकवी के समान प्रगाढ़ प्रेम था। वह प्रेम यद्यपि एकमात्र पुत्र रघु पर बँट गया था, फिर भी उनके परस्पर प्रेम में कमी नहीं हुई, उलटे वह बढ़ता ही गया।।24।। जब बालक 'रघु' कुछ बड़े हुए तब धाय ने उन्हें जो कुछ सिखाया, उसे वे अपनी तोतली बोली में बोलने लगे, उसकी उँगली पकड़कर चलने लगे और सिर झुकाकर बड़ों को प्रणाम करना भी सीख गए। राजा दिलीप अपने पुत्र की ये बाललीलाएँ देखकर फूले नहीं समाते थे।।25।। जब राजा उसे गोद में उठाते, तब उसका शरीर छूने से ही उन्हें ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके शरीर पर अमृत की फुहारें बरस रही हों। उस समय आँखें बन्द करके वे बहुत देर तक यह आनन्द लेते ही रह जाते थे।।26।।

---

1. सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का प्रकाशित होना या चन्द्रकला का बढ़ना वैज्ञानिक तथ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमँस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम्।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः।। 27।।
स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्।। 28।।
अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।। 29।।
धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः।
ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः।। 30।।
त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः।। 31।।
महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः।। 32।।
अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः।। 33।।

जैसे प्रजापति ब्रह्मा ने अपने सतोगुण वाले अंश से विष्णु के प्रकट होने पर यह समझ लिया कि अब हमारी सृष्टि-अमर हो गई है, वैसे ही मर्यादापालक दिलीप ने भी यह समझ लिया कि 'रघु' से भी सूर्यवंश सदा चलता रहेगा।।27।। मुण्डन-संस्कार हो जाने पर घने चंचल लटोंवाले तथा समान आयुवाले मंत्रियों के पुत्रों के साथ पहले वर्णमाला लिखना-पढ़ना सीखा और फिर शास्त्र तथा काव्य का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया, मानो नदी के मुहाने से होकर समुद्र में बैठ गए हों।।28।। यज्ञोपवीत हो चुकने पर रघु को चतुर पण्डित लोग सब विद्याएँ भी पढ़ाने लगे। इसमें गुरुओं का सारा परिश्रम सफल हो गया; क्योंकि चतुर शिष्य को जो शिक्षा दी जाती है वह अवश्य सफल होती है।।29।। जैसे सूर्य अपने सरपट दौड़नेवाले घोड़ों की सहायता से थोड़े ही समय में चारों दिशाओं को पार कर लेता है; वैसे ही बुद्धिमान् रघु ने अपनी तीव्रबुद्धि की सहायता से शीघ्र ही चार समुद्रों के समान विस्तृत [आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दंडनीति ये] चारों विद्याएँ सीख लीं।।30।। पवित्र रुरु मृग का चर्म पहनकर रघु ने मंत्रयुक्त अस्त्रों की शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की; क्योंकि उनके पिता केवल चक्रवर्ती राजा ही नहीं थे; वरन् अद्वितीय धनुष चलानेवाले भी थे।।31। जैसे गाय का बछड़ा बड़ा होकर साँड़ हो जाता है और हाथी का बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है, वैसे ही जब रघु ने भी बचपन बिताकर युवावस्था में पैर रखा, तब उनका शरीर और भी खिल उठा।।32।। राजा ने गोदान संस्कार करके उनका विवाह कर दिया। जैसे दक्ष की [अश्विनी आदि] कन्याएँ चन्द्रमा-जैसे पति को पाकर प्रसन्न हुई थीं, वैसे ही राजकुमारियाँ भी रघु जैसा प्रतापी पति पाकर प्रसन्न हुई।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकंधरः।
वपुः प्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत।। 34।।
ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां नितान्तगुर्वी लघयिष्यता धुरम्।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्।। 35।।
नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम्।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम्।। 36।।
विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव।।
बभूव तेनातिरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः।। 37।।
नियुज्य तं होमतुरंगरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम्।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः।। 38।।
ततः[1] परं तेन मखाय यज्वना तुरंगमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः।। 39।।
विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत्।
वशिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी।। 40।।

युवावस्था के कारण रघु की भुजाएँ हल के जुए के समान दृढ़ और लम्बी हो गईं, छाती चौड़ी हो गई और कन्धे भारी हो गए। इस प्रकार डील-डौल बढ़ जाने के कारण रघु अपने बूढ़े पिता से भी ऊँचे और तगड़े लगते थे, फिर भी वे इतने नम्र थे कि उन्होंने कभी अपना बड़ापन प्रकट नहीं होने दिया।।34।। जब राजा दिलीप ने देखा कि शिक्षा आदि संस्कारों से रघु नम्र हो गए हैं और भली भाँति राज्य सँभाल सकते हैं, तब उन्होंने सोचा कि बहुत दिनों से जो राज्य मैं चला रहा हूँ, उसे रघु को क्यों न सौंप दूँ? यह विचारकर उन्होंने रघु को युवराज बना दिया।।35।। जैसे सुन्दरता की देवी मुरझाए हुए कमल को छोड़कर नए कमल पर चढ़ जाती है, वैसे ही राज्य-लक्ष्मी भी बूढ़े दिलीप को छोड़कर धीरे-धीरे रघु पर पहुँच गई।।36।। जैसे वायु की सहायता से अग्नि, शरद् ऋतु के खुले हुए आकाश को पाकर सूर्य और मद बहने के कारण हाथी प्रचंड हो जाता है, वैसे ही प्रतापी रघु की सहायता से दिलीप भी इतने शक्तिशाली हो गए कि उनके शत्रु उनसे काँपने लगे।।37।। इन्द्र के समान प्रभावशाली दिलीप ने यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार रघु और अन्य धनुर्धर राजकुमारों को सौंपकर निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञ बिना बाधा के पूरे कर लिए।।38।। तब दिलीप ने सौवाँ यज्ञ करने के लिये घोड़ा छोड़ा। इन्द्र को यह बात खटकी और उन्होंने अपने को छिपाकर धनुषधारी रक्षकों के देखते-देखते उस घोड़े को चुरा लिया।।39।। जब घोड़े की रक्षा करनेवाली रघु की सेना ने देखा कि घोड़ा देखते-देखते अदृश्य हो गया तब वे बड़े घबराए और उन्हें आश्चर्य भी हुआ। ठीक उसी समय वहाँ वशिष्ठ ऋषि की प्रभावशालिनी गौ नन्दिनी घूमती-घामती चली आई।।40।।

---

1. अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः।। 41।।
स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसंभवः।
पुनः पुनः सूतनिषिद्धचापलं हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम्।। 42।।
शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वां हरिभिश्च वाजिभिः।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव।। 43।।
मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र सदा निगद्यसे।
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्तसे।। 44।।
त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा।
स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः।। 45।।
तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरंगं प्रतिमोक्तुमर्हसि।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्।। 46।।
इति प्रगल्भं रघुणां समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम्।।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम्।। 47।।

सज्जन द्वारा सम्मानित रघु ने तत्काल नन्दिनी का मूत्र अपनी आँखों में लगाया, जिससे उन्हें उन सब वस्तुओं को देख सकने की शक्ति आ गई, जो किसी भी इन्द्रिय से किसी को नहीं ज्ञात होतीं।।41।। इस प्रकार दिव्य दृष्टि प्राप्त करके रघु देखते क्या हैं कि पर्वतों के पंख काटनेवाले इन्द्र स्वयं उस घोड़े को लिए चले जा रहे हैं और वह घोड़ा भी उनके रथ के पीछे बँधा हुआ, छुड़ाकर भागने का यत्न कर रहा है, जिसे इन्द्र का सारथी बार-बार सँभालने का यत्न कर रहा है।।42।। रघु ने आँखें गड़ाकर देखा कि घोड़ा चुराकर ले जाने वाले के शरीर पर आँखें ही आँखें हैं, उन आँखों की पलकें भी नहीं गिरती हैं और उनके रथ के घोड़े भी हरे-हरे हैं। बस रघु ने समझ लिया कि हो न हो ये इन्द्र ही हैं और वे ऊँचे गंभीर स्वर से इस प्रकार इन्द्र से बोले, मानो उन्हें लौटने को ललकार रहे हों।।43।। हे देवेन्द्र! विद्वानों का कहना है कि यज्ञ का भाग सबसे पहले आपको ही मिलता है। मेरे पिताजी भी आप लोगों के लिये ही यज्ञ कर रहे हैं, फिर न जाने क्यों आप उसमें विघ्न डाल रहे हैं।।44।। उलटे आपको तो यह चाहिए कि संसार में जो कोई भी यज्ञ में विघ्न डाले उसे आप स्वयं दंड दें, क्योंकि आप तो तीनों लोकों के स्वामी हैं और जब स्वयं आप ही यज्ञ में विघ्न डालने लगेंगे, तब तो संसार से धर्म ही लुप्त हो जायेगा।।45।। इसलिये हे इन्द्रदेव! आप मेरे पिता के अश्वमेघ यज्ञ के लिये इस घोड़े को छोड़ दीजिए। वेद का मार्ग दिखानेवाले महात्माओं को ऐसा ओछा काम करना शोभा नहीं देता।।46।। रघु के अभिमान भरे इन वचनों को सुनकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपना रथ लौटाकर वे बोले–।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः।।48।।
हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः।।49।।
अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः।
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य संततः।।50।।
ततः प्रहस्यापभयः पुरंदरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान्।।51।।
स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः।।52।।
रघोरवष्टम्भमयेन पत्त्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः।
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम्।।53।।
दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः।।
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम्।।54।।

'हे राजकुमार! तुम जो कहते हो वह सब ठीक है। पर हम यशस्वियों का यह भी कर्त्तव्य है कि जो अपने से होड़ करें उनसे अपने यश की रक्षा भी करें। मैंने सौ यज्ञ करने का जो यश पाया है, उसे तुम्हारे पिता मुझसे छीनना चाहते हैं।।48।। देखो! जिस प्रकार 'पुरुषोत्तम' केवल विष्णु ही हैं, 'त्र्यम्बक' केवल शंकर ही हैं वैसे ही मुनि लोग 'शतक्रुत' (सौ यज्ञ करनेवाला) केवल मुझे ही कहते हैं। जिन नामों से हम लोग प्रसिद्ध हैं, वे नाम दूसरे नहीं रख सकते।।49।। इसलिए जैसे कपिल मुनि नें तुम्हारे पूर्वज सगर के घोड़े को हर लिया था, वैसे ही मैंने तुम्हारे पिता के इस घोड़े को हर लिया है। तुम इसे छुड़ाने का प्रयत्न मत करो, नहीं तो जैसे कपिल मुनि के क्रोध से सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म हो गए थे, वैसे ही हमारे क्रोध से तुम भी भस्म हो जाओगे।।50।। यह सुनकर अश्व के रक्षक 'रघु' ने निडर होकर हँसते हुए इन्द्र से कहा—'यदि आपने यही निश्चय किया हो, तो शस्त्र उठाइए और युद्ध कीजिए। रघु को जीते बिना आप घोड़ा लेकर नहीं जा सकते।।51।। यह कहकर रघु ने धनुष पर बाण चढ़ाया और पैंतरा साधकर इन्द्र की ओर ऊपर मुँह करके खड़े हो गए। उस समय वे ऐसे लग रहे थे, मानो इन्द्र से युद्ध करने के लिए स्वयं शंकर भगवान् आ डटे हों।।52।। रघु ने खंभे के समान दृढ़ एक बाण इन्द्र की छाती में मारा। इससे इन्द्र बड़े क्रोधित हुए और अपने धनुष पर ऐसा बाण चढ़ाया, जिसका वार कभी चूकता नहीं। इन्द्र का वह धनुष इतना सुन्दर था कि थोड़ी देर के लिये उसने नए बादलों में इन्द्र-धनुष जैसे रंग भर दिए।।53।। बड़े-बड़े राक्षसों का रक्त पीनेवाले उस बाण ने रघु की छाती में घुसकर वहाँ का रक्त बड़े चाव से पिया; क्योंकि उसे अभी तक मनुष्य के रक्त का स्वाद तो कभी मिला ही नहीं था।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम्।। 55।।
जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेणं शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव।। 56।।
तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्त्रिभिः।। 57।।
अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः।। 58।।
ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम्।
रघुः शशांकार्धमुखेन पत्त्रिणा शरासनज्यामलुनाद्बिडौजसः।। 59।।
स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे।। 60।।
रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः।।
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः।। 61।।

कार्तिकेय के समान पराक्रमी रघु ने भी अपना नाम खुदा हुआ एक बाण इन्द्र की उस बाईं भुजा में मारा, जिसकी उँगलियाँ ऐरावत को बार-बार थपथपाने से कड़ी हो गई थीं और जिस पर शची ने कुंकुंम आदि से कुछ चित्रकारी कर रखी थी।।55। फिर रघु ने मोर के पंखवाले दूसरे बाण से इन्द्र की वज्र-जैसी ध्वजा को काट डाला। उससे इन्द्र को ऐसा क्रोध हुआ, मानो किसी ने बलपूर्वक देवताओं की राज्य-लक्ष्मी के सिर के बाल काट लिए हों।।56।। रघु और इन्द्र दोनों ही अपनी-अपनी जीत चाहते थे और दोनों सूर्य के समान तीखे बाणों से भयंकर युद्ध कर रहे थे। रघु को लक्ष्य बनाकर इन्द्र नीचे की ओर अपने बाण चलाते थे और इन्द्र को लक्ष्य बनाकर रघु ऊपर बाण चला रहे थे। ऊपर देवता और नीचे रघु के सैनिक इस अचरज-भरे युद्ध को देख रहे थे।।57।। जैसे बादल घोर वर्षा करके भी अपने हृदय में उत्पन्न बिजली को नहीं बुझा सकता, वैसे ही इन्द्र भी अपने अंश से पैदा हुए रघु को बाणों की वर्षा से नहीं हरा पा रहे थे।।58।। तब रघु ने अर्द्धचन्द्र के आकार के बाण से इन्द्र की ठीक कलाई के पास धनुष की वह डोरी काट डाली, जिसमें बाण चलाते समय ऐसा प्रचण्ड शब्द होता था, जैसे मथे जाने के समय क्षीरसमुद्र में होता था।।59।। धनुष की डोरी कट जाने से इन्द्र को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धनुष को तो दूर फेंका और अपने प्रबल शत्रु रघु को मारने के लिये पर्वतों के पंख काटनेवाला अग्नि के समान चमचमाता वज्र उठा लिया।।60।। उस वज्र की मार से रघु पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते ही उनके सैनिकों ने रोना-पीटना आरम्भ कर दिया; किन्तु क्षण भर में ही वे संभलकर उठ खड़े हुए और उनके साथ ही उनके सैनिकों की जयजयकार भी आकाश में गूँज उठी।।61।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।। 62।।
असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।
अवेहि मां प्रीतमृते तुरंगमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः।। 63।।
ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम्।
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम्।। 64।।
अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्।। 65।।
यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः।
तवैव संदेशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश तथा विधीयताम्।। 66।।
तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान्रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत।। 67।।
तमभ्यनन्दतप्रथमं प्रवोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः।
परामृशनहर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम्।। 68।।

वज्र की चोट से क्षण भर में संभलकर रघु फिर लड़ने के लिये आ डटे। उनकी इस अद्वितीय वीरता को देखकर इन्द्र बड़े संतुष्ट हुए। ठीक भी था, क्योंकि गुणों का आदर सर्वत्र होता ही है।।62।। इन्द्र ने कहा—'हे राजकुमार! पर्वतों के पंख काटनेवाले मेरे कठोर वज्र की चोट को तुम्हें छोड़कर आज-तक किसी ने नहीं सहा। मैं तुम्हारी वीरता पर प्रसन्न हूँ। तुम इस घोड़े को छोड़कर और जो कुछ मुझसे माँगना चाहो, माँग लो।।63।। इन्द्र के ये वचन सुनकर रघु ने तूणीर से आधे निकाले हुए उस बाण को फिर से उसमें डाल दिया, जिसके सुनहरे पंख की चमक से रघु की उँगलियों के नख भी चमक उठे थे और फिर वे इन्द्र से बोले।।64।।—'हे इन्द्र! यदि आप घोड़े को नहीं देना चाहते हैं, तो यही वरदान दीजिए कि मेरे पिता विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्त करके इस घोड़े के विना ही सौ अश्वमेध यज्ञ करने का फल पा जाएँ।।65।। हे लोकेश! मेरे पिता यज्ञमंडप में अष्टमूर्ति शिवजी के एक अंश के रूप में बैठे हुए हैं। अतः वहाँ इस समय हम लोगों में से कोई पहुँच नहीं सकता। इसलिये ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपका ही कोई दूत जाकर उनको यह समाचार सुना आये।।66।। इन्द्र ने कहा—'ऐसा ही होगा।' यह कहकर जिस मार्ग से वे आए थे, उसी मार्ग से चले गए। सुदक्षिणा के पुत्र रघु भी अपने पिता राजा दिलीप की सभा में लौट आए। वे बड़े खिन्न थे; क्योंकि इन्द्र से युद्ध में जीतने पर भी अश्वमेध का घोड़ा लौटा न पाने का उन्हें बड़ा दुःख था।।67।। रघु के पहुँचने के पहले ही इन्द्र के दूत ने राजा दिलीप को सब वृत्तान्त सुना दिया था। इसलिये जब रघु वहाँ आए, तब राजा दिलीप ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और जहाँ उन्हें वज्र लगा था, वहाँ धीरे-धीरे सहलाने लगे।।68।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ।।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ।। 69 ।।
अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ।। 70 ।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः ।।

इस प्रकार जिस दिलीप की आज्ञा कोई टाल नहीं सकता था। उन्होंने मानों स्वर्ग जाने के लिये निन्यानवे यज्ञों की सीढ़ी सी बना ली थी।।69। तब संसार के सब विषय छोड़कर राजा दिलीप ने अपने नवयुवक पुत्र रघु को शास्त्रों के अनुसार छत्र, चँवर आदि राजचिह्न भी सौंप दिए और देवी सुदक्षिणा के साथ तप करने के लिये जंगल की राह ली; क्योंकि इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं में यही परम्परा चली आई है कि वे बूढ़े होने पर जंगल में जाकर तपस्या किया करते थे।।70।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रघु का
राज्याभिषेक' नामक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थः सर्गः ।।

स राज्यं गुरुणां दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः।।1।।
दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम्।।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः।।2।।
पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्ननयनपङ्क्तयः।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः।।3।।
सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिहासनं पित्र्यमखिलं[1] चारिमण्डलम्।।4।।
छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम्।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम्।।5।।
परिकल्पितसांनिध्या काले काले च बन्दिषु।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती।।6।।
मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः।
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुंधरा।।7।।

चौथा वर्ग

जिस प्रकार सायंकालीन सूर्य से तेज लेकर आग चमक उठती है, वैसे ही अपने पिता से राज्य पाकर रघु और भी अधिक तेजस्वी हो गए।।1।। जब दूसरे राजाओं ने सुना कि दिलीप के बाद रघु राजा हो गए, तब उनके हृदय में बैर की जो आग धीरे-धीरे सुलग रही थी वह मानो भड़क उठी।।2।। राजा रघु जब अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठे थे, तब उनकी प्रजा के सब बूढ़े-बच्चे उनकी ओर आँख उठाकर देखते हुए वैसे ही प्रसन्न होते थे, जैसे आकाश में उठे हुए नये इन्द्रधनुष को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं।।3।। हाथी के समान मस्त चाल से चलनेवाले राजा 'रघु' ने पिता के सिंहासन पर और अपने शत्रुओं पर एक साथ अधिकार कर लिया।।4।। जब वे सिंहासन पर बैठते थे, उस समय उनके चारों ओर प्रकाश का एक घेरा-सा बन जाता था, उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो लक्ष्मी स्वयं छिपकर उज्ज्वल कमल का छत्र लेकर उनके पीछे खड़ी हो।।5।। समय-समय पर सरस्वती भी उनके चारणों के कंठों में बैठकर अर्थभरा बिरद सुनाकर उस प्रशंसनीय राजा 'रघु' का गुण गाती थी।।6।। रघु से पहले मनु आदि बहुत-से प्रतापी राजा पृथ्वी का भोग कर चुके थे; पर रघु के हाथ में पहुँचकर वही पृथ्वी ऐसी नई जान पड़ने लगी, मानो पहले-पहले रघु के ही हाथों में आई हो।।77।।

---

1. पैत्र्यमखिलम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स हि सर्वस्य लोकस्ययुक्तदण्डतया मनः।
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः।।8।।
मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः।।9।।
नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम्।
पूर्व एवाभवत्पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः।।10।।
पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः।
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत्।।11।।
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्।।12।।
कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना।।13।।
लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा।।14।।

जैसे बसंत का वायु बहुत शीत या बहुत गरम न होने के कारण सबको अच्छा लगता है [वैसे ही रघु भी न तो अधिक कठोर दंड देते थे, न अधिक कोमल] जो जैसा अपराध करता था, उसको वैसा ही दंड देते थे। इस प्रकार के न्याय से उनकी प्रजा भी उनसे बड़ी प्रसन्न थी।।8।। जैसे आम के सुन्दर फल देखकर लोग उसके बौर को भूल जाते हैं, वैसे ही रघु में राजा दिलीप से अधिक गुण देखकर लोग दिलीप को भूल गए।।9।। नीति जाननेवाले मंत्रियों ने यद्यपि रघु को सरल और कुटिल दोनों प्रकार की नीतियों से राज्य चलाने की विधियाँ सिखाई थीं, किन्तु उस धर्मात्मा राजा ने सीधी नीति को ही अपनाया, टेढ़ी को छोड़ दिया।।10।। रघु के सिंहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो गई, फूलों की सुगन्ध बढ़ गई और [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँचों तत्त्वों के गुण भी बढ़ने लगे। ऐसा जान पड़ने लगा, मानो नये राजा को पाकर सभी वस्तुएँ नयी हो गई हों।।11।। जैसे सबको आनन्द देकर चन्द्रमा ने अपना चन्द्र नाम सार्थक कर दिया और सबको तपाकर सूर्य ने अपना 'तपन' नाम सार्थक किया, वैसे ही रघु ने भी प्रजा का रंजन करके, उन्हें सुख देकर अपना 'राजा' नाम सार्थक कर दिया।।12।। यद्यपि रघु के नेत्र कानों तक फैले हुए और बहुत बड़े-बड़े थे; पर इन्हें अधिक भरोसा अपने उस शास्त्र-चक्षु पर था, जिससे वे सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को भी समझ जाते थे।।13।। जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका चित्त ठिकाने हुआ तभी दूसरी राज्य-लक्ष्मी के समान वह शरद् ऋतु आ गई, जिसमें चारों ओर सुन्दर कमल खिल गए थे।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः।
प्रतापस्तस्य भानोश्चयुगपद्व्यानशे दिशः।। 15।।
वार्षिकं संजहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ।। 16।।
पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः।
ऋतुर्विडम्वयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम्।। 17।।
प्रसादसुमुखे तस्मिश्चन्द्रे च विशदप्रभे।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः।। 18।
हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव।। 19।।
इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः।। 20।।
प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः।। 21।।
मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः।।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम्।। 22।।

वर्षा बीत चुकी थी, बादल हट गए थे और जैसे खुले आकाश में चमकते हुए प्रचण्ड सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल गया था, वैसे ही शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर रघु का प्रचंड प्रताप भी चारों ओर फैल गया।।15।। इन्द्र ने जब अपना वर्षा-ऋतु वाला इन्द्रधनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष हाथ में उठा लिया; क्योंकि ये दोनों ही बारी-बारी से प्रजा की भलाई किया करते थे।।16।। शरद्-ऋतु भी रघु के छत्र और चँवर को देखकर कमल के छत्र और फूले हुए काँस के चँवर लेकर रघु से होड़ करने चली, पर सब कुछ करके भी उनकी शोभा नहीं पा सकी।।17।। शरद्-ऋतु में रघु के ख़िले हुए मुख और उज्ज्वल चन्द्रमा दोनों को देखकर दर्शकों को एक-सा आनन्द मिलता था।।18।। उज्ज्वल हंसों की उड़ती हुई पाँतों, रात में खिले हुए टिमटिमाते तारों और तालों में खिली हुई कुमुदिनी को देखकर यह जान पड़ता था कि रघु की कीर्ति ही इतने रूप बनाकर फैली हुई है।।19।। [प्रजा को वे इतने प्यारे थे कि] धान के खेतों क़ी रखवाली करनेवाली किसानों की स्त्रियाँ, ईख की छाया में बैठकर प्रजापालक राजा रघु की बचपन से अब तक की गुणकथाओं के गीत बना-बनाकर गाती थीं।।20।। इधर तो चमकीले अगस्त्य तारे के निकलने से जल निर्मल हो गया, उधर शत्रुओं के मन में यह जानकर खलबली मच गई कि अब न जाने कब रघु चढ़ाई कर बैठे।।21।। उस ऋतु में ऊँचे-ऊँचे कंधोंवाले मतवाले साँड़ नदियों के कगार ढाते हुए ऐसे लगते थे, मानों वे रघु के लड़कपन के खेलों का अनुकरण कर रहे हों।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः।। 23।।
सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान्।
यात्रायै चोदयामास[1] तं शक्तेः प्रथमं शरत्।। 24।।
तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ।।25।
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया।। 26।।
अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः।
पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम्।। 27।।
स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा।
अहिताननिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः।। 28।।
रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसंनिभैः।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन्व्योमेव भूतलम्।। 29।।

(शरद ऋतु में चारों ओर) छतिवन के जो फूल फूले हुए थे, उनकी मद-जैसी गन्ध पाकर [रघु के हाथियों ने सोचा कि ये भी हाथी हैं और हमसे होड़ करके मद बहा रहे हैं। इसलिए वे भी] ईर्ष्यावश अपनी सूँड़ के नथनों से, दोनों कपोलों से, कमर से और दोनों आँखों से मद बहाने लगे।।23।। शरद् के आते ही नदियों का पानी उतर गया और मार्ग का कीचड़ भी सूख गया, मानो शरद् ऋतु ने रघु के सोचने से पहले ही उन्हें दिग्विजय करने को उकसा दिया हो।।24।। यात्रा के लिये चलने से पहले घोड़ों की पूजा के लिए हवन होने लगा और हवन की अग्नि भी दाहिनी ओर घूमती हुई उठ रही थी, मानो अपने हाथ उठा-उठाकर रघु को पहले से ही विजय दे रही हो।।25।। सौभाग्यशाली रघु ने अपनी राजधानी और सीमा के गढ़ों की रक्षा का प्रवन्ध किया, फिर शुभ मुहूर्त में [घुड़सवार, हाथी, रथ, पैदल, गुप्तचर और शत्रु के राज्य के मार्ग को जाननेवाले इन] छह प्रकार की सेनाओं को लेकर वे विजय के लिये चल पड़े।।26।। जैसे मन्दराचल से मथते समय क्षीरसागर की लहरों की उछलती हुई उजली फुहारें विष्णु भगवान् के ऊपर बरस रही थीं वैसे ही नगर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने विजय-यात्रा के लिये जाते हुए रघु के ऊपर धान की खीलें बरसाईं।।27।। इन्द्र के समान प्रतापी राजा रघु पहले दिग्विजय के लिये पूर्व की ओर चले। वायु लगने से सेना की जो झंडियाँ फरफरा रही थीं, वे मानो शत्रुओं को उँगली उठा-उठाकर डाट रही थीं।।28।। रघु के रथों के चलने से जो धूल ऊपर उड़ी, उसने आकाश को पृथ्वी बना दिया। इधर पृथ्वी पर चलती हुई सेना के काले-काले हाथी बादल-जैसे लग रहे थे, जिससे पृथ्वी भी आकाश जैसी लगने लगी थी।।29।।

---

1. प्रेरयामास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम्।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः।।30।।
मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः।।31।।
स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः।।32।।
त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः।
तस्यासीदुल्बणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः।।33।।
पौरस्त्यानेवमाक्रामँस्ताँस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः।।34।।
अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्।।35।।
वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान्गङ्गास्रोतोन्तरेषु सः।।36।।

[रघु का प्रताप इतना अधिक था कि सेना के पहुँचने से पहले ही शत्रु काँप जाते थे।] इस प्रकार आगे-आगे उनका प्रताप चलता था, पीछे उनकी सेना का कोलाहल सुनाई पड़ता था, तब धूल उड़ती दिखाई देती थी और सबसे पीछे रथ आदि की सेना चली आ रही थी, मानो रघु की सेना इस प्रकार से चार भागों में बँटी हुई चल रही थी।।30।। रघु के पास ऐसे साधन थे कि मरुभूमि में भी जल की धाराएँ बहने लगीं, गहरी नदियों पर पुल बँध गए और घने जंगलों में खुले मार्ग बन गए।।31।। अपनी विशाल सेना के साथ जब वे पूर्वी समुद्र की ओर जा रहे थे, उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानो शंकरजी की जटा से निकली हुई गंगाजी को साथ लिए हुए भगीरथजी [पूर्वी समुद्र की ओर] चले जा रहे हों।।32।। जैसे कोई बलवान् जंगली हाथी किसी वृक्ष को केवल धक्का मारकर छोड़ देता है, किसी को उखाड़ फेंकता है और किसी को तोड़ देता है, वैसे ही रघु ने भी किसी राजा से कर लेकर उसे छोड़ दिया, किसी का राज्य उखाड फेंका और किसी को लड़ाई में ध्वस्त कर डाला। इस प्रकार शत्रुओं का नाश करके उन्होंने अपने मार्ग के सब रोड़े दूर कर डाले।।33।। विजयी राजा रघु पूर्वी राज्यों को जीतते हुए, उस समुद्र के किनारे पहुँचे जो तट पर खड़े हुए ताड़ के वृक्षों की छाया पड़ने से काला दिखाई पड़ रहा था।।34।। जैसे बेंत की शाखाएँ नदी की धारा में झुककर खड़ी रह जाती हैं, वैसे ही सुह्म देश के राजाओं ने अभिमानियों को उखाड़ फेंकनेवाले रघु की अधीनता चुपचाप कान दबाकर मान ली और अपने प्राण बचा लिए।।35।। फिर सेनानायक रघु ने उन बंगाली राजाओं को जाकर हराया, जो जलसेना लेकर लड़ने आए थे, उन्हें जीतकर रघु ने गंगासागर के द्वीपों में अपने विजय का झंडा गाड़ दिया।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः।।37।।

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ।।38।।

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।
अंकुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः।।39।।

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः।।40।।

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम्।।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम्।।41।।

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः।।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः।।42।।

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्।।43।।

[जैसे एक खेत से उखाड़-उखाड़कर दूसरे खेत ले जाकर रोपते हुए] धान के पौधे किसान का घर अन्न से भर देते हैं, वैसे ही रघु ने उन राजाओं को फिर राज पर बैठा दिया, जो उनके पैरों पर आकर गिर पड़े थे और जिन्होंने बहुत-सा धनधान्य भेंट में देकर रघु का राज्यकोष बढ़ाया था।।37।। वहाँ से चलकर रघु ने हाथियों का पुल बनाकर अपनी पूरी सेना को कपिशा नदी के पार कर दिया। वहाँ उड़ीसा के राजाओं ने अधीनता तो स्वीकार की ही साथ ही आगे का मार्ग भी बताया और कलिङ्ग देश जीतने के लिये रघु आगे बढ़ गए।।38।। जैसे मतवाले हाथी के माथे में हाथीवान् अंकुश गड़ाता है, वैसे ही रघु ने भी महेन्द्रपर्वत पर पहुँचकर उसकी चोटी पर अपना पड़ाव जमा दिया।।39।। जैसे पत्थर बरसानेवाले पहाड़ ने पत्थर बरसाकर पर्वतों के पंख काटनेवाले इन्द्र का सामना किया था, वैसे ही कलिङ्ग-नरेश ने हाथियों की सेना लेकर और अस्त्र बरसाकर रघु का सामना किया।।40।। जैसे तीर्थों के जल से स्नान कराकर राजाओं का राज्याभिषेक होता है और उन्हें राज्य-लक्ष्मी मिलती है वैसे ही रघु ने भी शत्रुओं के बाणों की वर्षा से स्नान करके विजय पाई।।41।। लड़ाई हो चुकने पर रघु के वीर सैनिकों ने महेन्द्रपर्वत पर पान के पत्ते बिछाकर मदिरालय बनाया और वहाँ नारियल की मदिरा के साथ-साथ मानो शत्रुओं का यश भी पी गए।।42।। राजा रघु तो धर्म-युद्ध करते थे; इसलिये उन्होंने महेन्द्रपर्वत के राजा को बन्दी तो बना लिया; पर जब उसने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली, तब उसे छोड़ भी दिया। इस प्रकार उन्होंने महेन्द्र के राजा की राज्यश्री तो ले-ली पर राज्य उन्हीं को लौटा दिया।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।
अगस्त्याचारितामाशामनाशास्यजयो ययौ।। 44।।
स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत्।। 45।।
बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः।।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः।। 46।।
ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः।।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः।। 47।।
भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीछेदिनामपि।। 48।।
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।। 49।।
ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम्।। 50।।
स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ।। 51।।

पूर्व दिशा को जीतकर विजयी रघु समुद्र के उस तट पर होते हुए दक्षिण दिशा की ओर गए जिस पर पकी हुई सुपारियों के पेड़ लगे हुए थे।।44।। जब वे कावेरी के तट पर पहुँचे, तब राजा रघु के सैनिकों ने जी भर नहा-नहाकर जल को मथ डाला। फिर हाथियों के नहाने से मद की कसैली गन्ध भी जल में आने लगी। कावेरी नदी की उन्होंने ऐसी दुर्गति कर दी कि जब वह अपने पति समुद्र के पास जाय, तो उसे उसके चरित्र में सन्देह होने लगे।। 45।। वहाँ से चलते-चलते वे बहुत दूर निकल गए और विजय चाहने वाले रघु के सैनिक मलयाचल की उस तराई में जा उतरे, जहाँ काली मिर्च की झाड़ियों में हरे-हरे सुग्गे इधर-उधर उड़ रहे थे।।46।। वहाँ पृथ्वी पर गिरे हुए लौंग के बीज घोड़ों की टापों से पिसकर वायु के सहारे हाथियों के उन गालों पर चिपक गए जहाँ उन्हीं के गन्ध-जैसी मद की गन्ध निकल रही थी।।47।। साँपों के सदा लिपटे रहने से वहाँ के चन्दन के पेड़ों के चारों ओर गहरी रेखाएँ बन गई थीं, जिनमें बँधे हुए रस्सों को वे हाथी भी न तोड़ सके, जो पैर के रस्सों को झटके से तोड़ डालते थे।।48।। दक्षिण दिशा में जाने पर महाप्रतापी सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, पर रघु का तेज इतना प्रबल था कि वहाँ के पांड्य राजा भी इनके आगे न ठहर सके।।49।। दक्षिण के पांड्य राजाओं ने ताम्रपर्णी और समुद्र के संगम से जितने मोती बटोरे थे, वे सब उन्होंने रघु को ऐसे सौंप दिए, मानो अपना बटोरा हुआ यश ही उन्हें दे डाला हो।।50।। उन्हें जीतकर महाप्रतापी रघु ने उन मलय और दर्दुर नाम की पहाड़ियों पर बहुत दिनों तक पड़ाव डाला, जिन पर चन्दन के पेड़ लगे थे और जो ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो चन्दन लगे हुए दक्षिण दिशा के दो स्तन हों।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्।। 52।।
तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः।। 53।।
भयोत्सृष्टविभूषणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः।। 54।।
मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रजः।
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम्।। 55।।
अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः।
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः।। 56।।
खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुंनागेभ्यः शिलीमुखाः।। 57।।
अवकाशं किलोदन्वान्रामायाभ्यर्थितो ददौ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम्।। 58।।
मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः।।59।।

फिर वे सह्य की उस पहाड़ी को पार करके आगे बढ़े जो समुद्र के दूर हट जाने से ऐसी दिखाई पड़ती थी, मानो वह पृथ्वी का नितंब हो जिस पर से कपड़ा हट गया हो।।52।। यद्यपि परशुराम ने अपने फरसे से ही समुद्र को सह्यपर्वत से हटा दिया, फिर भी उसके पास से जाती हुई रघु की सेना ऐसी लगती थी, मानो समुद्र फिर सह्याद्रि के पास ही लहरें ले रहा हो।।53।। रघु के भय से जो केरल देश की स्त्रियाँ साज-शृंगार छोड़कर घर से भाग खड़ी हुई थीं उनके बालों पर रघु की सेना के चलने से उठी हुई जो धूल बैठ गई थी, वह ऐसी लगती थी मानो कस्तूरी का चूरा लगा हुआ हो।।54।। मुरला नदी की ओर से आनेवाले वायु के कारण जो केवड़े के फूलों की धूल उड़ रही थी, वह सैनिकों के कवचों पर बैठकर बिना यत्न के ही सुगन्धित चूर्ण का काम करने लगी।।55।। चलते समय घोड़ों के शरीर के कवच ऐसे ऊँचे स्वर से खनखना रहे थे कि वायु के चलने से जो बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ों से ध्वनि निकल रही थी, वह भी उसके आगे फीकी पड़ गई।।56।। नागकेसर के फूलों पर बैंठे हुए भौरों को जैसे ही खजूर की डालों से बँधे हुए हाथियों के कपोलों से टपकते हुए मद की गन्ध मिली कि वे उन्हें छोड़कर इन पर ही आ टूटे।।57।। पश्चिम के राजाओं ने जो रघु के अधीन होकर उन्हें कर (Tax) दिया था, वह मानो उन्होंने नहीं वरन् उस प्रतापी समुद्र ने ही दिया, जिसने बहुत प्रार्थना करने पर परशुरामजी को थोड़ी-सी भूमि दी थी।।58।। वहाँ रघु के मतवाले हाथियों ने अपने दाँतों की चोटों से त्रिकूट पर्वत पर जो रेखाएँ बना दी थीं उनसे यह पर्वत ऐसा लगने लगा मानो वह रघु की विजय का स्मरण दिलानेवाला जय-स्तम्भ खड़ा हो जिस पर रघु की विजय-कथा लिखी हुई हो।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारसीकाँस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्वज्ञानेन संयमी।।60।।

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः।।61।।

संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत्।।62।।

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव।।63।।

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्।।64।।

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम्।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु।।65।।

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव।।66।।

जैसे कोई योगी इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को जीतने के लिये तत्त्वज्ञान का सहारा लेता है, वैसे ही रघु ने भी पारसी राजाओं को जीतने के लिये स्थल-मार्ग पकड़ा।।60।। जैसे असमय में उठे हुए बादलों से प्रभात की धूप में खिले हुए कमलों की चमक चली जाती है, वैसे ही रघु के अचानक आक्रमण से मदिरा से लाल गालों वाली यवनियों के मुख-कमल मुरझा गए।।61।। वहाँ पश्चिम देश के घुड़सवार राजाओं से रघु की घनघोर लड़ाई हुई। सेना के चलने से इतनी धूल उड़ी कि आस-पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था, केवल धनुष की टङ्कार से ही सैनिक लोग शत्रु को पहचान पाते थे।।62।। मधुमक्खियों से भरे हुए छत्ते के समान दाढ़ियों वाले यवनों के सिरों को भल्ल नाम के बाणों से काट-काट कर रघु ने पृथ्वी पाट दी।।63।। उनमें से जो जीते बच गए, उन्होंने अपने लोहे के टोप उतार-उतारकर रघु के चरणों में रख दिए; क्योंकि महापुरुषों की कृपा प्राप्त करने का यही उपाय है कि उनकी शरण में पहुँच जाया जाय।।64।। रघु के सैनिक दाख की लताओं से घिरी हुई पृथ्वी पर सुहावनी मृगछालाएँ बिछाकर चैन से बैठ गए और मदिरा पी-पीकर लड़ाई की थकावट मिटाने लगे।।65।। जैसे सूर्य अपनी तीखी किरणों से पृथ्वी का जल खींचने के लिये उत्तर की ओर घूम जाता है, वैसे ही रघु भी उत्तर के राजाओं को जीतने के लिए उधर घूम पड़े।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकुमकेसरान्।। 67।।
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्।। 68।।
काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः।। 69।।
तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्।। 70।।
ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः।। 71।।
शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम्।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्त्यावलोकितम्।। 72।।
भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे।। 73।।
विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।
दृषदो वासितोन्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः।। 74।।

सिन्धु नदी के तट पर पहुँचकर रघु के घोड़े, वहाँ की रेत में लोट-लोटकर अपनी थकान मिटाने लगे। लोटने से उनके शरीर में जो केसर लग गई थी, उसे उठ-उठकर उन्होंने हिला कर झाड़ दिया।।67।। वहाँ रघु ने प्रचण्ड पराक्रम से जिन हूण राजाओं को मार डाला था, उनकी स्त्रियाँ इतना सिर पीट-पीटकर रोईं कि उनके गाल लाल हो गए।।68।। कंबोज या काबुल के राजा भी लड़ाई में रघु के आगे नहीं ठहर सके। हाथियों के बाँधने से जैसे वहाँ की अखरोट की डालियाँ झुक गई थीं, वैसे ही वे राजा भी रघु के आगे झुक गए।।69।। कंबोज के हारे हुए राजा ने रघु को बहुत-से घोड़े और बहुत-सा धन दिया; पर उतना धन पाकर भी रघु को अभिमान नहीं हुआ।।70।। वहाँ से वे अपने घोड़ों की सेना लेकर हिमालय पहाड़ पर चढ़ गए, मानो अपने घोड़ों की टापों से उठी हुई गेरू आदि धातुओं की लाल-लाल धूल से हिमालय की चोटियों को और भी ऊँची करना चाहते हों।।71।। सैनिकों के समान ही बलवान् सिंह गुफाओं में लेटे-लेटे आँखें घुमा-घुमाकर रघु की सेना को देख रहे थे। उनकी सेना के कोलाहल से वे तनिक भी मन में घबराते नहीं थे।।72।। वहाँ भोजपत्रों में मर्मर करता हुआ कीचक नाम के बाँसों के छेदों में घुसकर बाँसुरी-सी बजाता हुआ और गंगाजी की फुहारों से ठण्डा हुआ वायु 'रघु' की सेवा करता जा रहा था।।73।। और रघु के सैनिक भी वहाँ नमेरु के वृक्ष के तले उन पथरीली पाटियों पर बैठकर विश्राम करने लगे, जिनमें से कस्तूरी मृगों के बैठने से तीव्र सुगन्ध आ रही थी।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरलासक्त मातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ।। 75 ।।
तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ।। 76 ।।
तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ।। 77 ।।
शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ।। 78 ।।
परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ।। 79 ।।
तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ।। 80 ।।
चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ।। 81 ।।
न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम् ।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ।। 82 ।।

देवदारु के पेड़ों में बँधे हुए हाथियों के गले में जो साँकलें पड़ी थीं वे रात को चमकने वाली बूटियों के प्रकाश से चमचमा उठती थीं और इस प्रकार उन बूटियों ने रघु के लिये बिना तेल के ही दीपक जला दिए।।75।। जब रघु ने वहाँ से अपनी सेना का पड़ाव हटा लिया, तब वहाँ देवदार की ऊँची-उँची शाखाओं पर हाथियों के गले की साँकलों से बनी रेखाओं को देखकर ही जंगली किरातों ने रघु के हाथियों की ऊँचाई का अनुमान कर लिया।।76।। पहाड़ी सेनाओं से रघु की सेना की घनघोर लड़ाई हुई। रघु की सेना बाण चलाती थी और पहाड़ी लोग पत्थर चलाते थे। इस प्रकार जब लोहे और पत्थर की भिड़न्त हो जाती थी, तो कभी-कभी आग उत्पन्न हो जाया करती थी।।77।। रघु ने धुआँधार बाण बरसाकर उत्सव-संकेत नामक पहाड़ियों के छक्के छुड़ा दिए। इस पर किन्नरों ने मिलकर रघु की वीरता के बहुत-से गीत गाए।।78।। पहाड़ी राजाओं ने रत्नों के ढेर 'रघु' को भेंट में दिए, जिसे देखकर रघु ने हिमालय के अतुल धन का अनुमान किया और हिमालय ने भी युद्ध में रघु के पराक्रम का अनुमान कर लिया।।79।। हिमालय पर अपना झंडा गाड़कर आगे कैलाश की ओर न बढ़कर रघु लौट पड़े। इससे कैलाश पर्वत को इस बात की लज्जा हुई कि एक बार रावण ने मुझे क्या उठा लिया कि सभी मुझे हारा हुआ समझने लगे।।80।। लौहित्य नदी को पार करके रघु प्राग्ज्जोतिष या असम में जा पहुँचे। वहाँ हाथियों के बँधने से जैसे कालागुरु के पेड़ काँपते थे, वैसे ही प्राग्ज्योतिष के राजा भी रघु के भय से काँपने लगे।।81।। वहाँ के राजा ने देखा कि बादलों के बिना ही केवल रघु की सेना की धूल से सूर्य छिप गया। जब इस धूल से ही वह बहुत घबरा गया, तो फिर सेना से लड़ता ही क्या।। 82।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः।।83।।
कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्।
रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयोः।।84।।
इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम्।
रजो विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषुमौलिषु।।85।।
स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।86।।
सत्रान्ते सचिवसखःपुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभिःशमितपराजयव्यलीकान्।।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्राजान्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने।।87।।
ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्।
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्।।88।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रघुदिग्विजयो नाम चतुर्थः सर्गः।।

तब असम के राजा ने जिन हाथियों को लेकर बड़े-बड़े शत्रुओं को हरा दिया था, वे ही हाथी उसने इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी रघु को भेंट में दे डाले।।83।। और जैसे कोई भक्त फूल-माला आदि से भक्तिपूर्वक देवता की पूजा करता है, वैसे ही कामरूप के नरेश ने पाँव-पीढ़े पर पड़ी हुई रघु के चरणों की छाया को रत्नों से पूजा।।84।। इस प्रकार विजयी रघु जब सारी पृथ्वी को जीतकर अपनी राजधानी अयोध्या को लौटने लगे, तो उनके रथ के पहियों से उठी हुई धूल पीछे-पीछे चलनेवाले हारे हुए राजाओं के छत्र-रहित मुकुटों पर बैठती चलती थी।।85।। दिग्विजय से लौटकर रघु ने विश्वजित् नाम का यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दक्षिणा में दे दी। जैसे बादल पृथ्वी से जल लेकर फिर पृथ्वी पर बरसा देते हैं, वैसे ही महात्मा लोग भी धन को दान करने के लिये ही इकट्ठा करते हैं।।86।। यज्ञ समाप्त हो चुकने पर रघु ने और उनके मंत्रियों ने हारे हुए राजाओं का बड़ा सत्कार किया और उनके मन में हारने की जो लाज थी उसे दूर कर दिया। फिर अपनी रानियों से बहुत दिन से बिछुड़े हुए उन राजाओं को उन्होंने अपने-अपने देशों में जाने की आज्ञा दे दी।।87।। जाते समय उन राजाओं ने रघु के उन चरणों में झुककर प्रणाम किया, जिस पर ध्वजा, वज्र और छत्र आदि की रेखाएँ बनी हुई थीं। उस समय उन राजाओं के सिर की मालाओं से जो पराग गिर रहा था, उससे रघु के चरणों की उँगलियां गौरवर्ण हो गईं।।88।।

महाकवि कालीदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रघु-दिग्विजय' नामक
चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमः सर्गः ।।

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोषजातम्।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः।। 1।।
स मृण्मये वीतहिरण्यमयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः।। 2।।
तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी।
विशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच।। 3।।
अप्यग्रणीर्मन्त्र कृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः।।4।।
कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्।। 5।।
आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
कच्चिन्नवाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्।। 6।।
क्रियानिमित्तेष्ववपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः।। 7।।

पाँचवाँ सर्ग

जिस समय 'रघु' विश्वजित् यज्ञ में अपना सब कुछ दान किए बैठे थे, उसी समय महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि गुरुदक्षिणा के लिये धन माँगने को उनके पास आ पहुँचे।।1।। अतिथि का सत्कार करनेवाले, अत्यन्त शीलवान् और यशस्वी रघु मिट्टी का पात्र लेकर विद्वान् अतिथि [कौत्स ऋषि] की पूजा करने चले; क्योंकि सोने-चाँदी के पात्र तो उन्होंने सब दान ही कर डाले थे।।2।। तपस्वी कौत्स कुशा के आसन पर बैठे हुए थे। शास्त्रों को जानने वाले सम्माननीय रघु ने बड़ी विधिपूर्वक उनकी पूजा की और हाथ जोड़कर उनसे कहा–।।3।। 'हे बुद्धिमान्! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सोए हुए संसार को जगा देता है, वैसे ही जिस गुरु ने आपको ज्ञान की ज्योति देकर जगाया है और जो मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे आपके गुरु कुशलता से तो हैं।।4।। उन्होंने शरीर, मन और वचन तीनों प्रकार का जो कठिन तप करना प्रारम्भ किया था और जिसे देखकर इन्द्र भी घबरा उठे थे, वह तप तो ठीक चल रहा है।।5।। आप लोगों ने आश्रम के जिन वृक्षों के थाँवले बाँधकर उन्हें पुत्र के समान जतन से पाला है और जिनसे पथिकों को छाया मिलती है, उन वृक्षों को आँधी-पानी से कोई हानि तो नहीं पहुँची है।।6।। हरिणियों के वे छोटे-छोटे छौने कुशल से तो हैं, जिन्हें ऋषि लोग बड़े प्यार से गोदी में बैठाकर खिलाते हैं, जिनकी नाभि का नाल ऋषियों की गोद में ही सूखकर गिरता है और जिन्हें ऋषि लोग यज्ञ के लिये बटोरी हुई कुशा चबाने से भी नहीं टोकते।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्।। 8।।
नीवारपाकादि कडंगरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः।। 9।।
अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते।। 10।।
तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञयाशासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम्।। 11।।
इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः।। 12।।
सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।। 13।।
भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः।। 14।।

उन नदियों का जल तो ठीक है न, जिसमें आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि करते हैं और जिनकी रेत पर आप लोग अपने चुने हुए अन्न का छठा भाग राजा का अंश समझकर रख छोड़ते हैं।।8।। तिन्नी के जिस अन्न और जिन फलों से आप लोग अतिथियों का सत्कार करते हैं और जिन्हें खाकर ही आप लोग रह जाते हैं, उन्हें आस-पास के गाँवों के पशु तो नहीं आकर चर जाते।।9।। क्या ऋषि ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको गृहस्थ बन जाने की आज्ञा दे दी है? क्योंकि आपकी इतनी अवस्था भी हो गई है कि आप विवाह करें और सबका भला करनेवाले गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।।10।। आप जैसे पूजनीय महात्मा के आने भर से मेरा जी नहीं भरा, मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा भी दीजिए और यह बताइए कि आपने केवल अपने गुरुजी की आज्ञा से ही यहाँ आकर मुझे कृतार्थ किया है या अपनी इच्छा से ही आपने कृपा की है।।11।। कौत्स ने ध्यान से रघु की उदार बातें सुनीं, पर देखा कि उनके हाथ में केवल मिट्टी का पात्र बचा है। उन्होंने समझ लिया कि रघु के पास एक कौड़ी भी नहीं है। उनका मुँह उतर गया और उन्होंने समझ लिया कि यहाँ हमारा काम नहीं बनेगा। यह सोचकर वरतन्तु के शिष्य कौत्स बोले-।।12।। 'हे राजन्!' आपके राज्य में हमें सब प्रकार का सुख है। जैसे सूर्य के रहते हुए अँधेरा नहीं ठहर पाता, वैसे ही आपके राजा रहने पर प्रजा में दुःख का नाम भी नहीं है।।13।। हे भाग्यशाली! बड़ों की पूजा करना आपके वंश का ही धर्म है और आप तो इस बात में अपने पूर्वजों से भी आगे बढ़े हुए हैं। मैं आपके पास कुछ माँगने आया था, पर मैं समझता हूँ कि मुझे आने में कुछ विलम्ब हो गया है, इसी का मुझे खेद है।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः।। 15।।
स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिंचनत्वं मखजं व्यनक्ति।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।। 16।।
तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।। 17।।
एतावदुक्त्वा प्रतियातु कामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त।। 18।।
ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे।। 19।।
समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात्।। 20।।
निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।। 21।।
सोहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य।। 22।।

हे राजन्! आपने अपना सब धन अच्छे लोगों को दे डाला है और केवल यह शरीर मात्र आपके पास बचा है। इससे आप उस तिन्नी के पौधे की ठूँठ-जैसे रह गए हैं, जिसके दाने तपस्वियों ने झाड़ लिए हों।।15।। चक्रवर्ती होते हुए भी यज्ञ में सब कुछ देकर और दरिद्र होकर भी आप उस चन्द्रमा के समान बड़े सुन्दर लग रहे हैं, जिसकी सारी कलाएँ धीरे-धीरे देवताओं ने पी डाली हों।।16।। आपके पास तो कुछ है नहीं, इसलिये मैं अब किसी दूसरे धनी का द्वार खटखटाता हूँ; क्योंकि पपीहा भी बिना जलवाले बादलों से पानी नहीं माँगता। आपका कल्याण हो।।17।। ऐसा कहकर कौत्स उठकर चलने लगे। रघु ने उन्हें रोका और पूछा—'आप गुरुजी को क्या और कितना देना चाहते हैं? कुछ कहिए भी तो'।।18।। ब्रह्मचारी कौत्स ने देखा कि विश्वजित् यज्ञ करने पर भी रघु को अभिमान-शून्य हैं। इसलिये वर्ण और आश्रम की रक्षा करनेवाले रघु से उन्होंने अपने मन की बात कहनी प्रारम्भ की—।।19।। "राजन्! विद्या पढ़ चुकने पर मैंने गुरुजी से कहा कि आप मुझसे गुरु-दक्षिणा माँगिए। गुरुजी ने कहा—मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से ही बहुत प्रसन्न हूँ, फिर गुरु-दक्षिणा लेकर क्या होगा? मैंने बड़ी भक्ति से जो उनकी सेवा की थी, उसे ही उन्होंने गुरु-दक्षिणा समझ लिया था।।20।। पर जब मैंने बार-बार दक्षिणा माँगने के लिये उनसे हठ किया तो वे बिगड़ खड़े हुए और मेरी दरिद्रता का विचार किए बिना ही बोल उठे—मैंने तुम्हें चौदह विद्याएँ पढ़ाई हैं; इसलिये मुझे चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ लाकर दो।।21।। आपके हाथ में मिट्टी का पात्र देखकर ही मैं समझ गया कि आपके पास 'राजा' शब्द छोड़कर और कुछ भी नहीं बचा है। इधर मेरी गुरु-दक्षिणा भी इतनी गहरी है कि अब मेरा मन ही नहीं करता कि आपसे कुछ माँगूँ।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः।।23।।
गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः।।24।।
स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम्।।25।।
तथेपि तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा।।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात्।।26।।
वशिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य।।27।।
अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम्।
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः।।28।।
प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः।।29।।
तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात्।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्।।30।।

जब वैदिक ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ कौत्स ने यह कहा, तब चन्द्रमा के समान सुन्दर परम धार्मिक रघु बोले—।।23।। आप जैसे वेदपाठी ब्राह्मण गुरु-दक्षिणा के लिये हमारे पास आयें और यहाँ से निराश लौटकर किसी दूसरे का द्वार झाँके, यह नहीं हो सकता।।24।। इसलिये आप हमारी यज्ञशाला में चलिए। वहाँ [गार्हपत्य, दाक्षिणात्य और आहवनीय—] ये तीन पूजनीय अग्नि स्थापित हैं। आप भी चौथी अग्नि के समान पूजनीय होकर दो-चार दिन ठहरिए, तब तक मैं आपकी गुरु-दक्षिणा के लिये कुछ न कुछ यत्न करता हूँ।।25।। यह सुनकर कौत्स बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सत्यवादी रघु की बात मान ली। रघु ने भी देखा कि पृथ्वी पर तो धन है नहीं, इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि कुबेर से ही धन लिया जाय।।26।। जैसे वायु के झोंकों से मेघ कहीं भी जा सकता है, वैसे ही वशिष्ठजी के मन्त्रों से पवित्र किया हुआ रघु का रथ भी समुद्र, आकाश और पर्वत कहीं भी आ-जा सकता था।।27।। रघु ने सोचा कि उसी रथ पर चढ़कर मैं अकेला ही महाप्रतापी कैलाश के स्वामी कुबेर को छोटे से राजा के समान सहज में जीत लूँगा। यह निश्चय करके वे साँझ होते ही अस्त्र-शस्त्र ठीक करके रथ में ही जाकर सो गये।।28।। दूसरे दिन प्रातः जैसे ही रघु चलने को तैयार हुए, वैसे ही राजकोश के रक्षकों ने आकर यह आश्चर्य-भरा समाचार दिया कि कोश में बहुत देर तक सोने की वर्षा होती रही है।।29।। [बात यह हुई थी कि] रघु की चढ़ाई की बात कान में पड़ते ही कुबेर ने रात को ही सोने की वर्षा कर दी थी। वह सोने का ढेर ऐसा चमक रहा था, जैसे किसी ने वज्र से सुमेरु पर्वत का एक टुकड़ा काटकर गिरा दिया हो। रघु ने वह सारा सोना कौत्स को भेंट कर दिया।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपाऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।। 31।।

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः।। 32।।

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा।। 33।।

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव।। 34।।

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम्।
राजापि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः।। 35।।

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार।। 36।।

[उसे देखकर कौत्स ने कहा—मैं इतना सोना लेकर क्या करूँगा। मुझे तो गुरु-दक्षिणा चुकाने भर को धन चाहिए। इस पर रघु बोले—यह नहीं हो सकता। यह सारा धन आप ही ले जाइये।।] अयोध्या-निवासियों ने इन दोनों की बड़ी प्रशंसा की; क्योंकि उन दोनों में एक तो इतना सन्तोषी था कि आवश्यकता से अधिक एक कौड़ी लेने को उद्यत नहीं था और दूसरा इतना बड़ा दाता था कि माँग से अधिक धन देने पर तुला हुआ था।।31।। रघु ने उस सारे धन को सैकड़ों ऊँटों और खच्चरों पर लदवा दिया और जब कौत्स चलने लगे तब राजा ने बड़ी नम्रता से उन्हें प्रणाम किया। कौत्स बड़े प्रसन्न थे और उन्होंने राजा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा।।32।। धर्मात्मा राजाओं के लिए यदि पृथ्वी उनकी इच्छा के अनुसार धन दे, तो कोई आश्चर्य नहीं है, पर तुम्हारे प्रभाव को देखकर तो सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है; क्योंकि तुमने तो स्वर्ग से भी जितना चाहा उतना धन ले लिया।।33।। संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हें प्राप्त हो सकती हैं; इसलिये तुम्हें उनके लिये आशीर्वाद देना तो व्यर्थ है, तो भी मैं तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि जैसे तुम्हारे पिता दिलीप को तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ पुत्र मिला, वैसे ही तुम्हें भी तुम्हारे ही समान प्रतापी पुत्र प्राप्त हो।।34।। राजा को यह आशीर्वाद देकर ब्राह्मण कौत्स तो अपने गुरुजी के पास चले गए और जैसे सूर्य से संसार को प्रकाश मिलता है, वैसे ही ब्राह्मण के आशीर्वाद से थोड़े ही दिन में रघु को भी पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ।।35।। रघु की रानी की कुक्षि से ब्राह्म मुहूर्त में कार्तिकेय के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ तो ब्राह्म मुहूर्त में जन्म होने से पिता ने ब्रह्मा के नाम पर पुत्र का नाम अज रख दिया।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्विभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।। 37।।

उपात्तविद्यं विधिवद्गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्।
श्रीः साभिलाषापि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष।। 38।।

अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः।।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।। 39।।

तं श्लाघ्यसंबन्धमसौविचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम्।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्।। 40।।

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः।। 41।।

स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम्।। 42।।

अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तः सलिलप्रवेशः।।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज।। 43।।

जैसे एक दीपक से जलाए जाने पर दूसरे दीपकों में भी ठीक वैसी ही लौ और ज्योति होती हैं वैसे ही अज भी रूप, गुण, बल सभी बातों में रघु के जैसा ही था, किसी भी बात में कम नहीं था।।37।। जैसे शीलवती कन्या अपनी इच्छा के अनुसार रूप-गुणवाले वर को चुनकर भी विवाह के लिये पिता की आज्ञा ले-लेना चाहती है, वैसे ही राज्य-लक्ष्मी भी यद्यपि सुन्दर युवा 'अज' को स्वामी बनाना चाहती थी, फिर भी वह रघु की आज्ञा की बाट जोह रही थी कि वे कब अज को राज्य सौंपे।।38।। इसी बीच में विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहन 'इन्दुमती' के स्वयंवर में अज को बुलाने के लिये एक अपना विश्वासपात्र दूत रघु के पास भेजा।।39।। रघु ने भी सोचा कि भोज के वंश के साथ अपने कुल का सम्वन्ध करना ठीक ही होगा और कुमार अज भी विवाह के योग्य हो गए हैं। इसलिये उन्होंने सेना के साथ अज को विदर्भदेश की राजधानी में जाने के लिये विदा किया।।40।। मार्ग में अज के ठहरने के लिये अनेक प्रकार के ऐसे वितानों का प्रबन्ध किया गया था, जिनमें सब प्रकार के सुख की सामग्री एकत्र कर दी गई थी और वहाँ के पास के गाँववालों ने भी अज के लिये अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेंट में ला-लाकर दे दीं। [इन सबके कारण] वे ग्रामीण स्थान भी ऐसे लगने लगे, मानो अज राजसी विलास उद्यानों में आकर ठहरे हों।।41।। वहाँ से चलकर अज ने नर्मदा नदी के किनारे अपनी उस थकी हुई सेना का पड़ाव डाला, जिसकी पताका मार्ग की धूल लगने से मटमैली हो गई थीं। वहाँ बड़ा शीतलवायु वह रहा था और उसके झोंकों से करञ्जक के पेड़ झूम रहे थे।।42।। इसी बीच एक जंगली हाथी नर्मदा के जल में से झूमता हुआ निकला। जिसके जल में घुसने की सूचना जल के ऊपर ही भनभनाने वाले भौंरे दे रहे थे और जल में स्नान करने के कारण जिसके माथे के दोनों ओर का मद धुल गया था।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वरेखाशवलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन।। 44।।

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्।
वभौ स भिन्दन्बृहस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः।। 45।।

शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात्।
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प।। 46।।

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मद्दुर्दिनश्रीः।। 47।।

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम्।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा वभूवुः।। 48।।

स च्छिन्नवन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार।। 49।।

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः।। 50।।

यद्यपि नहाने से उसके दाँतों में लगी गेरु की लाली तो छूट गई थी, फिर भी टीलों पर टक्कर मारने से उसकी दाँतों पर जो नीली-नीली रेखाएँ बन गई थीं, उनसे जान पड़ता था कि उसने ऋक्षवान पर्वत की शिलाओं में टक्करें मारी हैं।।44।। वह हाथी ज्यों-ज्यों तट की ओर बढ़ने लगा, त्यों-त्यों अपनी सूँड़ फैला और सिकोड़कर चिंग्घाड़ता हुआ जल की लहरों को चीरने लगा। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अलान की साँकलें तोड़ रहा हो।।45।। वह पहाड़ के समान लम्बा-चौड़ा हाथी अपनी छाती से सवार को अपने साथ खींचता हुआ तट पर आ पहुँचा। इससे जल में जो लहरें उठी थीं वे उससे भी पहले तट पर पहुँच चुकी।।46।। यद्यपि नदी में नहाने से उस हाथी के माथे का सब मद धुल चुका था। फिर भी अज की सेना के हाथियों को देखकर वह बलवान् हाथी क्रोध से तमतमा उठा और उसके माथे से फिर धुआँधार मद बरसने लगा।।47।। जब अज के हाथियों ने उसके छितवन के दूध के समान कसैले मद की गन्ध पाई, तब वे हाथीवानों के बार-बार रोकने पर भी इधर-उधर भाग चले।।48।। उस विशाल जंगली हाथी को देखते ही सब घोड़े भी रस्सा तुड़ा-तुड़ाकर भाग चले। इस भगदड़ में जिन रथों के धुरे टूट गए वे जहाँ-तहाँ गिर पड़े थे। उस अकेले हाथी ने सेना में इतनी भगदड़ मचा दी कि लोग अपनी-अपनी स्त्रियों को छिपाने के लिये सुरक्षित स्थान ढूँढ़ने लगे।।49।। वह हाथी अज की ओर चला आ रहा था; किन्तु अज ने सोचा कि यह जंगली हाथी है। इसको मारना ठीक नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने धनुष को थोड़ा-सा खींचकर एक बाण उसके मस्तक में इसलिए मारा कि वह लौट जाय।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्ट।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्त्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे।। 51।।
अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः।। 52।।
मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य।। 53।।
स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।। 54।।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम्।। 55।।
संमोचितः सत्त्ववता त्वयाहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः।। 56।।
संमोहन नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते।। 57।।

बाण लगते ही वह हाथी का शरीर छोड़कर देवताओं के समान सुन्दर और तेजपूर्ण शरीर वाला बनकर खड़ा हो गया। यह देखकर अज के सैनिक तो आँख फाड़कर आश्चर्य से देखते हुए जहाँ के तहाँ खड़े रह गए।।51। उस देवता का वेष धारण करनेवाले पुरुष ने अपने प्रभाव से कल्पवृक्ष के फूल मँगाकर अज के ऊपर बरसाए और जब उसने बोलने के लिए मुँह खोला तब उसके दाँतों की चमक से उसके गले में पड़ा हुआ हार दमक उठा।।52।। [वह बोला] मैं गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का पुत्र प्रियम्वद हूँ। एक बार मैंने अभिमान में आकर मतंग ऋषि का अपमान कर दिया था, उन्हीं के शाप से मैं हाथी हो गया।।53।। जब मैंने ऋषि के बहुत हाथ-पाँव जोड़े, तब उन्हें दया आ गई; क्योंकि जल तो आग की गर्मी पाकर ही गर्म होता है, उसका अपना स्वभाव तो ठंडा ही होता है।।54।। तब प्रसन्न होकर उस तपस्वी ने कहा—इक्ष्वाकु वंश में अज नाम के कुमार उत्पन्न होंगे, जब वे तुम्हारे माथे पर लोहे के फलवाला बाण मारेंगे, तब तुम्हें फिर से अपना वास्तविक शरीर प्राप्त हो जायेगा।।55।। उसी दिन से मैं हाथी हो गया और तब से सदा आपके आने की बाट देखा करता था। आज बड़े भाग्य से आपने आकर मुझे शाप से छुड़ा दिया। इस उपकार के बदले में यदि मैंने आपकी कोई भलाई न की, तो मेरा यह शरीर पाना व्यर्थ ही है।।56।। देखिये! मेरे पास यह सम्मोहन नाम का गन्धर्वास्त्र है, जिसके चलाने और रोकने के अलग-अलग मन्त्र हैं। इस दुर्लभ अस्त्र को आप ले लीजिए। इसमें यह विशेषता है कि जब आप इसे चलायेंगे तब आप शत्रु के प्राण लिए बिना ही उसे जीत लेंगे।।57।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मूहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम्।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम्।। 58।।
तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात्।। 59।।
एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्।। 60।।
तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली।। 61।।
प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम्।। 62।।
तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्।
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास।। 63।।
तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।। 64।।

जान पड़ता है कि आपने जो मेरे ऊपर बाण चलाया है, उससे आपके मन में कुछ संकोच हो रहा है। पर इसमें लजाने की क्या बात है, क्योंकि बाण चलाते समय भी आपके मन में मुझे मारने की इच्छा तो थी नहीं। आपने तो दया करके ही बाण चलाया था। अब मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप यह अस्त्र ले लीजिए, आना-कानी न कीजिए।।58।। चन्द्रमा के समान सुन्दर अज ने गन्धर्व का कहना मान लिया। उन्होंने पहले चन्द्रमा से निकली हुई नर्मदा के जल का आचमन किया और फिर उत्तर की ओर मुँह करके शाप से छूटे हुए उस गन्धर्व से वह अस्त्र ले लिया और उसके चलाने और रोकने का मन्त्र भी सीख लिया।।59।। इस प्रकार दैवयोग से अज और प्रियम्वद की मार्ग में ही मित्रता हो गई। वहाँ से प्रियम्वद तो कुबेर के चित्ररथ नामक उपवन की ओर चला गया और अज उस विदर्भदेश की ओर चला पड़े, जो अच्छे शासन के कारण बड़ा सुन्दर हो गया था।।60।। जब विदर्भ के राजा को समाचार मिला कि अज आ गए हैं, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और जैसे समुद्र अपनी लहरें ऊँचे उठाकर चन्द्रमा का स्वागत करता है, वैसे ही उन्होंने भी नगर के बाहर अज के पड़ाव में जाकर उनका स्वागत किया।।61।। राजा भोज अपने साथ अज को नगर में ले गए और वहाँ उन्हें अपना सब कुछ भेंट करके ऐसी नम्रता के साथ उनका सत्कार किया कि लोग यही समझने लगे कि अज ही इस घर के स्वामी हैं और भोज अतिथि हैं।।62।। वहाँ से भोज-राज के सेवक, अज को बड़ी नम्रता से उस मनोहर राज-मंदिर में ले गए, जिसके द्वार की चौकियों पर जल से भरे मंगल-कलश रखे हुए थे। उस भवन में रघु के प्रतिनिधि अज रहने लगे, मानो कामदेव ने अपना बचपन बिताकर जवानी में पैर रखा हो।।63।। अब अज को यह चाह हुई कि किसी प्रकार उस कन्या को प्राप्त करें, जिसे पाने के लिये सैकड़ों राजा स्वयंवर में आए हैं। इसी उलझन में पड़े रहने केकारण रघु की आँखां में रात को उसी प्रकार बहुत विलंब से नींद आई जैसे अपने पति के मन का भाव न जाननेवाली नई बहू अपने पति के पास विलंब से जाती है।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम्।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रवोधं प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः।। 65।।

रात्रिर्गता मतिमतांवर मुञ्च शय्यां धात्रां द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता।
तामेकतस्तव विभर्ति गुरुर्विनिद्रस्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्वी।। 66।।

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्ष्यमाणा पर्युत्सुकत्वमवला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः।। 67।।

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम्।। 68।।

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य।। 69।।

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्।। 70।।

एक करवट सोने के कारण अज के कन्धों पर कुण्डल के दबने से उसका चिह्न पड़ गया और बिछौने की रगड़ से उनके शरीर पर लगा हुआ अंगराग भी छूट गया। दिन निकलते ही उनकी समान अवस्था वाले और मधुर बोलने वाले सूतों के पुत्र यह स्तुति गा-गाकर बुद्धिमान अज को जगाने लगे।।66।। हे परम बुद्धिमान! रात ढल गई है, अब शय्या छोड़िए। ब्रह्मा ने पृथ्वी का भार केवल दो भागों में बाँटा है, जिसे एक ओर तो तुम्हारे पिता सदा सजग होकर सँभालते हैं और दूसरी ओर तुम्हें जागकर सँभालना है।।66।। देखो, तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी ने जब यह देखा कि तुम निद्रारूपी दूसरी स्त्री के वश में हो, तब वह तुम्हें चाहते रहने पर भी रुष्ट होकर तुम्हारे ही मुख के समान सुन्दर चन्द्रमा के पास चली गई है, [क्योंकि तुम्हारे मुख की बराबरी करनेवाला और कोई सुन्दर पदार्थ तो है नहीं, जिसके पास वह जा सके।] इसलिये जागकर तुम उसे फिर अपना लो।।67।। इस समय तुम्हारी बन्द आँखों में पुतलियाँ घूम रही हैं और तालाबों में कमलों के भीतर भौंरे गूँज रहे हैं। इस समय उठो सूर्य के निकलने पर तुम्हारे और कमल एक साथ खिलकर एक जैसे सुन्दर लगने लगें।।68।। प्रातःकाल का पवन वृक्षों की शाखाओं पर झूलने वाले ढीले कोरवाले फूलों को गिराता हुआ सूर्य की किरणों से खिले हुए कमलों को छूता हुआ चल रहा है, मानो तुम्हें जागृत हुआ न देखकर वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगन्धि दूसरों से लेने का प्रयास कर रहा हो।।69।। हार के उजले मोतियों के समान निर्मल ओस के कण वृक्षों के लाल-लाल पत्तों पर गिरकर वैसे ही सुन्दर लग रहे हैं, जैसे तुम्हारे हँसने के समय तुम्हारे साथ ओठों पर पड़ी हुई तुम्हारे दाँतों की चमक सुन्दर लगती है।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानुरह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते किं वा रिपूँस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति।। 71।।
शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगाद्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः।। 72।।
दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः।। 73।।
भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्तामनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः।। 74।।
इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः।। 75।।
अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम्।। 76।।

इसी महाकविश्रीकालिदासकृतो रघुवंशे महाकाव्ये
अजस्वयंवराभिगमनो नाम पञ्चमः सर्गः।।

सूर्य के उदय होने के पहले ही उनका चतुर सारथी अरुण संसार से अँधेरे को भगा देता है। यह ठीक भी है, क्योंकि जब सेवक चतुर रहता है तब स्वामी को स्वयं कार्य करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। देखो, जब तुम्हारे जैसे योग्य पुत्र युद्ध में जाकर लड़ते हैं, तब तुम्हारे पिताजी को क्या कभी शत्रुओं को स्वयं मारने का कष्ट उठाना पड़ता है? कभी नहीं।।71।। तुम्हारी सेना के हाथी, दोनों ओर करवट बदलकर खनखनाती हुई साँकल खींचते हुए उठ खड़े हुए हैं। लाल सूर्य की किरणें पड़ने से उनके दाँत ऐसे लगते हैं, मानो वे अभी गेरू का पहाड़ खोदे चले आ रहे हों।।72।। हे कमल के समान नेत्रवाले! बड़े-बड़े पट-मंडपों में बँधे हुए तुम्हारे वनायु (काबुल) देश के घोड़े नींद छोड़कर सेंधे नमक के उन टुकड़ों को अपने मुँह की भाप से मैला कर रहे हैं जो चाटने के लिये उनके आगे रक्खे हुए हैं।।73।। रात की सजावट के फूल मुरझाकर झड़ गए हैं। उजाला हो जाने के कारण दीपक का प्रकाश भी अब अपनी लौ से बाहर नहीं जाता और पिंजरे में बैठा हुआ मीठी बोली बोलनेवाला तुम्हारा यह सुग्गा भी हमारी ही बातें दुहरा रहा है।।74।। जैसे आकाशगंगा की रेत में लेटा हुआ सुप्रतीक नाम का देवताओं का हाथी, राजहंसों का शब्द सुनकर जाग उठता है, वैसे ही चारणों की सुरचित वाणी सुनकर राजकुमार अज की नींद खुल गई और वे उठ बैठे।।75।। सुन्दर पलकों वाले राजकुमार अज ने उठकर शास्त्र से बताई हुई प्रातःकाल की सब उचित क्रियायें कीं और फिर उनके चतुर सेवकों ने उन्हें बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए। इस प्रकार सज-धजकर वे स्वयम्बर के राज-समाज की ओर चल दिए।।76।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अज का
स्वयम्वर-गमन' नाम का पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठः सर्गः ।।

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु।
वैमानिकानां मरुतापमश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान्।। 1।।
रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण।।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम्।। 2।।
वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभंगैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्संगमिवारुरोह।। 3।।
परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासनं सनः।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन।। 4।।
तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः।
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव।। 5।।
तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः।। 6।।
नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः।। 7।।

छठा सर्ग

[स्वयम्वर-सभा में जाकर अज ने देखा कि] सजे हुए मंचों पर बैठे हुए राजा लोग ऐसे सुन्दर लग रहे हैं, जैसे विमानों पर देवता बैठे हुए हों।।1।। जब दूसरे राजाओं ने अज को देखा, तब उन्होंने इन्दुमती को पाने की सब आशाएँ छोड़ दीं; क्योंकि अज ऐसे लग रहे थे, मानो साक्षात् कामदेव हों, जिसे शिवजी ने रति की प्रार्थना पर फिर से जीवित कर दिया हो।।2।। जैसे सिंह का बच्चा एक-एक शिला पर पैर रखता हुआ पहाड़ पर चढ़ जाता है, वैसे ही राजकुमार अज भी सुन्दर सीढ़ी पर चढ़कर भोज के बताए हुए मंच पर जाकर बैठ गए।।3।। जिस सिंहासन पर वे आकर बैठे, वह सोने का बना हुआ था, उसमें रत्न जड़े थे और उस पर रंग-बिरंगे वस्त्र बिछे हुए थे। उस पर बैठे हुए वे ऐसे सुन्दर लग रहे थे, मानो स्वयं कार्तिकेय ही अपने मोर पर चढ़कर बैठे हों।।4।। वहाँ बैठे हुए राजाओं के ठाट-बाट और उनकी तड़क-भड़क देखकर आँखें चौंधिया जाती थीं और ऐसा जान पड़ता था मानो लक्ष्मी ने अपनी शोभा उन लोगों में उसी प्रकार बाँट दी हो जैसे बिजली अपनी चमक बादलों में बाँट देती है।।5।। जैसे नन्दन वन के वृक्षों में पारिजात ही सबसे अधिक सुन्दर हैं, वैसे ही बहुमूल्य सिंहासनों पर बैठे हुए और बड़े ठाट-बाट से सजे हुए राजाओं के बीच में अकेले अज ही खिल रहे थे।।6।। जैसे फूलवाले वृक्षों को छोड़कर मद बहानेवाले जंगली हाथियों पर भौंरे झुक पड़ते हैं, वैसे ही नगरवासियों की आँखें सब राजाओं से हटकर अज पर ही जा टिकी थीं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके।
संचारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः।।8।।
पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्ताँस्तूर्यस्वने मूर्च्छति मङ्गलार्थे।।9।।
मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा।।10।।
तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु।।11।
तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः।
प्रवालशोभा[1] इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः।।12।।
कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम्।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयांचकार।।13।।
विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्।
प्रालम्बमुत्कृश्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः।।14।।

इतने में सब राजाओं का वंश जाननेवाले वन्दीजनों ने सूर्य और चन्द्र के वंश में उत्पन्न होनेवाले उन सब राजाओं की प्रशंसा प्रारंभ कर दी। उधर अगर के सार से बनाई हुई धूप-बत्तियों का धुआँ चारों ओर उड़ता हुआ फहराती हुई झंडियों तक जा पहुँचा।।8।। जिन शंखों और मंगल बाजों के बजने पर नगर के आस-पास की अमराइयों में रहनेवाले 'मोर' उसे बादल का गरजना समझकर नाच उठते हैं, उन बाजों की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं।।9।। इसी बीच वर चुनने के लिये विवाह के समय का वेश धारण किए हुए इन्दुमती, पालकी पर चढ़कर मंचों के बीचवाले राजमार्ग से आई। वह पालकी मनुष्य ढो रहे थे और उसके चारों ओर दासियाँ पैदल चलती आ रही थीं।।10।। वह कन्या ब्रह्मा की रचना का बड़ा ही सुन्दर कौशल थी; जिसे सैकड़ों आँखें एकटक होकर देख रही थीं। उसकी सुन्दरता देखते ही सब राजाओं के मन तो उसके पास चले गए, केवल उनके शरीर पर मंचों पर रह गए।।11।। राजाओं ने अपना प्रेम जताने के लिए जो वृक्षों के पत्तों के समान अनेक प्रकार से भौंह आदि चलाकर शृङ्गार-चेष्टाएँ, कीं वे मानो उनके प्रेम को इन्दुमती तक पहुँचानेवाली दूतियाँ थीं।।12।। कोई राजा हाथ में सुन्दर कमल लेकर उसकी डंठल पकड़कर घुमाने लगा। उसके घूमने से भौंरे तो इधर-उधर भाग गए, पर उसमें जो पराग भरा हुआ था, उसके फैलने से कमल के भीतर चारों ओर एक कुण्डली सी बन गई। [उसे घुमाकर यह यह प्रकट करता था कि विवाह कर लेने पर हम भी तुम्हारे हाथ में इसी प्रकार नाच सकते हैं]।।13।। दूसरा एक विलासी राजा, थोड़ा मुँह घुमाकर कन्धे से सरकी हुई और भुजबन्ध में उलझी हुई रत्नों की माला उठाकर फिर उसे गले में ठीक से पहनने लगा। [इससे उसने संकेत किया कि मैं सदा तुम्हें गले का हार बनाए रखूंगा।।14।।

1. प्रवालचेष्टा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः।
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम्।। 15।।
निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नतांसः।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत्।। 16।।
विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः।
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः।।17।।
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान्।। 18।।
कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे।। 19।।
ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी।
प्राक्संनिकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा।। 20।।
असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः।।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परंतपो नाम यथार्थनामा।। 21।।

तीसरा राजा भौंहे मटकाकर, पैर की उँगलियाँ मोड़कर, पैर के नखों की चमक तिरछी डालते हुए पैर की उँगलियों से सोने के पाँव पीढ़े पर कुछ लिख रहा था। [इस संकेत से वह इन्दुमती को अपने पास बुला रहा था]।।15।। कोई राजा सिंहासन के एक ओर बाईं भुजा टेककर बैठा था और अपने पास बैठे हुए मित्र से इस प्रकार बात करने लगा कि उसका बायाँ कन्धा उठ गया और गले की माला भी पीठ पर लटक गई। [इससे उसने यह संकेत किया कि मैं सदा तुम्हें अपनी बाईं ओर बिठाऊँगा]।।16।। एक दूसरा युवा राजा था, जिसका नख मानो प्रिया के नितम्बों पर चिह्न बनाने के लिये ही बने थे। वह उन नखों से केतकी के उन धौले पत्तों को नोच रहा था, जो किसी विलासी स्त्री के शृङ्गार के लिये कान के आभूषण के रूप में कटे हुए थे। [इस संकेत से उसने प्रकट किया कि हम इसी प्रकार तुम्हारे नितम्बों पर नख-चिह्न लगायेंगे]।।17।। एक दूसरे राजा ने, जिनकी हथेली कमल के समान लाल थी और जिस पर ध्वाजा की रेखाएँ बनी हुई थीं। वे अपने हाथ में पासे उछाल रहे थे और उनकी अँगूठी की झलक पासों पर पड़ रही थी। [वे संकेत कर रहे थे कि तुम्हारे साथ विवाह होने पर हम दिन-रात तुम्हारे साथ पासा खेला करेंगे]।।18।। एक दूसरा राजा बार-बार अपने हाथ से उस मुकुट को सीधा कर रहा था जो पहले से ही सीधा था। ऐसा करने में उसके हाथों की उँगलियों के बीच का भाग रत्नों की किरणों से चमक उठता था। [इससें वह संकेत करता था कि मैं तुम्हें सदा सिर-आँखों पर बिठाए रखूँगा।।19।। इसी बीच पुरुषों के समान ढीठ और राजाओं के वंशों की कथा जाननेवाली रनिवास की प्रतिहारी सुनन्दा, सबसे पहले इन्दुमती को मगध-नरेश के आगे ले गई और बोली।।20।। ये राजा बड़े पराक्रमी हैं और अपनी शरण में आनेवालों की रक्षा करते हैं। अपनी प्रजा को सुख देकर इन्होंने बड़ा नाम कमाया है। इनका नाम 'परंतप' है और ये सचमुच परन्तप [शत्रुओं को ताप देनेवाले] हैं।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।। 22।।
क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकाँश्चकार।। 23।।
अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे।
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम्।। 24।।
एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला।
ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा।। 25।।
तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्।। 26।।
जगाद चैनामयमङ्गनाथो सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः।।
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते।। 27।।
अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः।। 28।।

जैसे तारों, ग्रहों और नक्षत्रों से भरी रहने पर भी रात तभी चाँदनी रात कहलाती है, जब चन्द्रमा खिला हुआ हो, वैसे ही यद्यपि संसार में सहस्त्रों राजा हैं; किन्तु पृथ्वी इन्हीं के रहने से राजावाली कहलाती है।।22।। इन्होंने एक पर एक यज्ञ करके बार-बार इन्द्र को अपने यहाँ बुलाया, जिसका फल यह हुआ कि इन्द्राणी के सिर की चोटी कल्पवृक्ष के फूलों का शृङ्गार न होने से पीले गालों पर झूलने लगी, [क्योंकि पति के पास न रहने से उन्होंने शृंगार करना ही छोड़ दिया था]।।23।। यदि इनके साथ तुम विवाह करना चाहती हो तो अवश्य करो। क्योंकि जब तुम विवाह करके इनके साथ इनकी राजधानी [पाटलिपुत्र में] पहुँचोगी, तब वहाँ की स्त्रियाँ झरोखों में बैठकर तुम्हें देखेंगी और तुम्हारी सुन्दरता देखकर उनकी आँखों को सुख मिलेगा।।24।। सुनन्दा की बात सुनकर इन्दुमती ने तनिक-सी आँख उठाकर राजाओं को देखा। उसके हाथ की दूब में गुथी हुई महुए की माला कुछ सरक गई और बिना कुछ कहे-सुने सीधा-सा प्रणाम करके उसे अस्वीकार करती हुई, वह आगे बढ़ गई।।25।। जैसे वायु से उठी हुई लहर के सहारे मानसरोवर की राजहंसिनी एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँच जाती है, उसी प्रकार सुनन्दा भी राजकुमारी इन्दुमती को दूसरे राजा के आगे पहुँचाकर खड़ी हो गई।।26।। और बोली—ये अंग देश के राजा हैं। इनके यौवन को देवताओं की स्त्रियाँ भी चाहा करती हैं। हाथियों की विद्या के बड़े-बड़े गुणी लोग इनके हाथियों को सिखाते हैं। ये पृथ्वी पर रहते हुए भी इन्द्र ही समझे जाते हैं।।27।। [इन्होंने जिन राजाओं को युद्ध में मार डाला था] उनकी स्त्रियों ने अपने पतियों के शोक में मोतियों के हार तो उतार फेंके थे; पर उनके रोने से उनके स्तनों पर गिरती हुई आँसुओं की बूँदें बड़े-बड़े मोतियों के समान लगती थीं, उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो इन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों के गले से मोतियों के हार उतार कर उन्हें बिना डोरेवाले [आँसुओं के] हार पहना दिये हों।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।
कान्त्या गिरा सूनृतया चयोग्या त्वमेवकल्याणि तयोस्तृतीया।। 29।।
अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो नच वेद सम्यग्द्रष्टुं न साभिन्नरुचिर्हि लोकः।। 30।।
ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै।। 31।।
अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति।। 32।।
अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि।। 33।।
असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।। 34।।
अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु।। 35।।

यों तो तुम जानती ही हो कि लक्ष्मी और सरस्वती दोनों में कभी नहीं बनती, पर इनके पास दोनों ही मिलकर रहती हैं। इसलिये हे कल्याणी! तुम सुन्दर भी हो और तुम्हारी मधुर वाणी भी है, तुम उन दोनों के साथ तीसरी बनकर पहुँच सकती हो।।29।। इन्दुमती, उस अंग देश के राजा से आँखें हटाईं और सुनन्दा से बोली आगे चलो—यह बात नहीं थी कि वह राजा सुन्दर न हो और न यही बात थी कि इन्दुमती ने उसे ठीक से देखा न हो; पर सबकी अपनी-अपनी रुचि ही तो है [किसी को कोई अच्छा लगता है, किसी को कोई]।।30।। वहाँ से आगे बढ़कर प्रतिहारी सुनन्दा ने एक दूसरे राजा को दिखाया जिससे सब शत्रु काँपते थे और जिसका रूप और यौवन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर था। उसे दिखाकर सुनन्दा बोली।।31।। 'देखो, ये जो लम्बी भुजा, चौड़ी छाती और पतली गोल कमरवाले राजा सूर्य के समान चमक रहे हैं, ये अवन्ती देश के राजा हैं और ऐसा जान पड़ता है कि विश्वकर्मा ने अपने शान चढ़ाने के चक्र पर इन्हें बड़े यत्न से खराद कर बनाया है।।32।। जब ये शक्तिशाली राजा शत्रुओं पर चढ़ाई करते हैं, तब सेना के आगे चलनेवाले घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से शत्रुओं के मुकुटों की चमक धुँधली पड़ जाती है।।33।। इनका 'राज-भवन' महाकाल मन्दिर में बैठे हुए सिर पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले शिवजी के पास ही है। इसलिये अँधेरे पाख में भी शिवजी के सिर पर बने हुए चन्द्रमा की चाँदनी से ये अपनी स्त्रियों के साथ सदा शुक्लपक्ष का ही आनन्द लेते हैं।।34।। केले के खम्भे के समान [चिकनी और ढलवाँ] जाँघवाली इन्दुमती! क्या तुम अवन्ती के उन उद्यानों में विहार करना चाहती हो, जिनमें दिन-रात सिप्रा नदी का ठंडा वायु हरहराता रहता है।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम्।। 36।।
तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम्।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातर्जुगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा।। 37।।
सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः।। 38।।
अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवँश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता।। 39।।
ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण।
कारागृहे निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात्।। 40।।
तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप[1] इत्यागमवृद्धसेवी।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्।। 41।।
आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम्।
धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलपत्रसाराम्।। 42।।

सुनन्दा की बात सुनकर भी सुकुमारी इन्दुमती को वह मित्रों को प्रसन्न करनेवाला और शत्रुओं को मारनेवाला प्रतापी राजा उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा, जैसे कुमुदिनी को वह सूर्य नहीं भाता जो कमल को खिलाता है और कीचड़ को सुखा देता है। ।36।। कमल के समान सुन्दरी, बड़ी गुणवती, विधाता की सुन्दर रचना और सुन्दर दाँतोंवाली इन्दुमती को वहाँ से 'अनूप' राजा के आगे ले जाकर सुनन्दा बोली— ।।37।। 'बहुत दिनों की बात है, एक कार्त्तवीर्य नामक बड़े योगी हो चुके हैं। उनमें बड़ी भारी बात यह थी कि जब वे लड़ने जाते थे, तब उनके सहस्रों हाथ निकल आते थे। उन्होंने अठारह द्वीपों में जाकर यज्ञ के खम्भे गाड़ दिए थे। वे ऐसे प्रतापी थे कि उनके सामने कोई अपने को राजा ही नहीं कह सकता था। ।38।। उनके समय में यदि कोई पाप करने का विचार भी करना था, तो वे धनुष-बाण लेकर उसके सिर पर जा चढ़ते थे। इस ढंग से उस दंडधारी ने सब लोगों के मन से पाप निकाल डाला था। ।39।। जिस रावण ने इन्द्र को जीत लिया था, उसको भी उन्होंने अपने कारागार में बन्दी रख छोड़ा था। उन्होंने रावण की भुजाएँ इस प्रकार धनुष की डोरी से कसकर बाँध दी थीं कि वह बेचारा दिन-रात उसाँसें भरता रहता था और जब तक कार्त्तवीर्य उस पर प्रसन्न नहीं हुए तब तक उन्होंने उसे छोड़ा नहीं। ।40।। उन्हीं प्रसिद्ध राजा के वंश में ये उत्पन्न हुए हैं, ये वेदों और बड़े-बूढ़ों [अथवा वेद के पण्डितों] की बड़ी सेवा करते हैं। लक्ष्मी को जो चंचलता का दोष लगाया जाता था, उनका वह दोष भी तब से धुल गया जब से वह इनके साथ रहने लगीं [क्योंकि लक्ष्मी तो उसी पुरुष को छोड़कर चंचला होकर जाती हैं जो व्यसनी होते हैं। इनमें कोई व्यसन नहीं, इसलिये इन्हें क्यों छोड़कर जायें] ।।41।। ये राजा इतने बलवान् हैं कि अग्नि की सहायता पा लेने से, ये परशुराम के उस फरसे की तेज धारा को भी कमल की पंखुड़ी के समान कोमल समझते हैं, जिसने युद्ध में क्षत्रियों का महासंहार कर डाला था। ।42।।

---

1. प्रदीप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः।।43।।
तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः।।44।।
सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी।।45।।
नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः।।46।।
यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव संनिविष्टा।
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु।।47।।
यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।।
कलिन्दकन्या मथुरां[1] गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति।।48।।
त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं हेपयतीव कृष्णम्।।49।।

तुम यदि राजभवन के झरोखों से उस सुन्दर लहरोंवाली नर्मदा का मनोहर दृश्य देखना चाहो, जो माहिष्मती नगरी के चारों ओर घूम गई है, तो इस महाबाहु राजा से विवाह कर लो।।43।। जैसे खुले आकाशवाली शरद ऋतु का मनोहर चन्द्रमा भी कमलिनी को नहीं भाता, वैसे ही वह सुन्दर राजा भी इन्दुमती के मन में नहीं जँचा।।44।। तब रनिवास की सेविका सुनन्दा, राजकुमारी को मथुरा के उस राजा सुषेण के आगे ले गई जिसकी कीर्ति स्वर्ग के देवता भी गाते थे और जिसने अपने शुद्धचरित्र से माता और पिता के दोनों कुलों को उजागर कर दिया था। उन्हें दिखाकर सुनन्दा बोली–।।45।। ये राजा बड़ी विधि से यज्ञ करते हैं और प्रशंसनीय वंश में उत्पन्न हुए हैं। जैसे ऋषियों के शान्त आश्रमों में सब जीव बैर छोड़कर एक साथ रहते हैं, वैसे ही विद्वत्ता और मौन रहना ये परस्पर विरोधी गुण भी इनमें एक साथ रहते हैं।।46।। चन्द्रमा की चाँदनी के समान आँखों को सुख देनेवाला इनका प्रकाश तो घर में रहता है और सूर्य के समान प्रचण्ड तेज शत्रुओं के उन राजभवनों पर दिखाई देता है, जिनके उजड़ जाने पर उनमें घास जम आई है।।47।। जब ये जलविहार करते हैं और इनकी रानियों के स्तनों पर लगा हुआ चन्दन जल में मिलकर यमुना में बहने लगता है उस समय मथुरा में भी यमुनाजी का रंग ऐसा प्रतीत होता है मानो वहीं पर उनका गंगाजी की लहरों से संगम हो गया हो।।48।। जब ये अपने ग़ले में वह मणि पहन लेते हैं, जो उन्हें उस कालिय नाग ने दी थी, जो गरुड़ के डर से यमुना के जल में रहने लगा था, तब इनकी शोभा के आगे कौस्तुभमणि पहने हुए श्रीकृष्णजी की शोभा भी फीकी पड़ जाती है।।49।।

---

1. मधुरां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः।।50।।
अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि।।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु।।51।।
नृपं तमावर्त्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री।
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव।।52।।
अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम्।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबवालेन्दुमुखीं बभाषे।।53।।
असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यान्त्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः।।54।।
ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः।
रिपुश्रियां साञ्जनवाष्पसेके वन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे।।55।।
यमात्मनः सद्मनि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्।।56।।

हे सुन्दरी! इनके साथ विवाह करके आप कुबेर के चैत्ररथ नाम के उद्यान से भी बढ़कर सुन्दर वृन्दावन में कोमल पत्तों और फूलों की शय्याओं पर विहार करना।।50।। वर्षा के दिनों में गोवर्धनपर्वत की सुहानी गुफाओं में पानी की फुहारों से भींगी हुई शिलाजीत की गन्ध वाली पत्थर की पाटियों पर बैठकर मोरों का नाच देखना।।51।। पानी की भँवर के समान गहरी नाभिवाली और किसी अन्य से विवाह करने की इच्छावाली इन्दुमती, राजा सुषेण को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई, जैसे समुद्र की ओर बढ़ती हुई नदी बीच में स्थित पहाड़ को छोड़ जाती है।।52।। वहाँ से सुनन्दा दासी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली इन्दुमती को उस कलिंग देश के राजा हेमाङ्गद के आगे ले गई, जो अपनी बाँह में भुजबन्ध पहने हुए थे और जिन्होंने अपने शत्रुओं को नष्ट कर डाला था। उन्हें दिखाती हुई सुनन्दा बोली।।53।। 'इनको देखती हो! ये महेन्द्रपर्वत के समान शक्तिवाले हैं महेन्द्रपर्वत और समुद्र दोनों पर इनका अधिकार है। जब ये युद्ध के लिये चलते हैं, उस समय इनके आगे-आगे चलने वाले मतवाले हाथी ऐसे लगते हैं, मानो हाथियों का वेष बनाकर स्वयं महेन्द्रपर्वत चला जा रहा हो।।54।। इनको देखती हो, कैसी सुन्दर इनकी भुजाएँ हैं और धनुषधारियों में तो इनसे बढ़कर कोई है ही नहीं। इनकी भुजाओं पर जो दो काली-काली रेखाएँ धनुष की डोरी खींचने से बन गई हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो ये शत्रुओं की उस राज्य-लक्ष्मी के आने की दो पगडंडियां हैं, जो उन्होंने शत्रुओं से छीन ली हों और जिसके कजरारे नेत्रों से बहे आँसुओं के कारण ये काले पड़ गए हों।।55।। ठीक इनके राजभवन के नीचे ही समुद्र हिलोरें लेता है। उनकी लहरें राजभवन के झरोखों से स्पष्ट दिखाई देती हैं। जब ये अपने राजभवन में सोते हैं तब वह समुद्र की नगाड़े की ध्वनि से भी गंभीर अपने गर्जन से इन्हें प्रातः जगा देता है।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः।। 57।।
प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम्।
तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात्।। 58।।
अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम्।। 59।।
पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः।। 60।।
विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः।। 61।।
अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः।
पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की संधाय लङ्काधिपतिः प्रतस्थे।। 62।।
अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।। 63।।

तुम चाहो तो इनके साथ विवाह करके समुद्र के उन तटों पर विहार करो, जहाँ दिन-रात ताड़ के जंगलों की तड़-तड़ाहट सुनाई देती है और वहाँ जब तुम्हें पसीना हुआ करेगा, तब लौंग के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ दूसरे द्वीपों से आता हुआ शीतल पवन तुम्हारा पसीना पोंछ दिया करेगा।।57।। विदर्भराज की छोटी बहन सुन्दरी इन्दुमती अपनी दासी की लुभावनी बातें सुनकर भी उस राजा को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई, जैसे पुरुषार्थ से लाई हुई लक्ष्मी भाग्य के फेर से छोड़कर चली जाती है।।58।। तब सुनन्दा उसे देवता के समान मनोहर नागपुरी के राजा के पास ले जाकर बोली—'अरी चकोर-जैसे नेत्रवाली! इधर तो देख।।59।। ये पांड्यदेश के राजा हैं जिनके कंधे पर बड़ा-सा हार लटका हुआ है और जिनके शरीर पर हरिचन्दन का लेप किया हुआ है। इस वेश में ये उस हिमालय के शिखर के समान सुन्दर लग रहे हैं, जो प्रातःकाल की धूप से लाल हो गया हो और जिस पर से अनेक पानी के झरने गिर रहे हों।।60।। जब ये अश्वमेध यज्ञ करके स्नान करते हैं, तब इनसे वे महाप्रतापी अगस्त्य ऋषि आकर कुशल पूछते हैं, जिन्होंने विन्ध्याचल को आगे बढ़ने से रोक दिया था और पूरे समुद्र को पीकर फिर मुँह से निकाल दिया था।।61।। जब महाप्रतापी रावण इन्द्र को जीतने चला, तब उसने इस डर से इनसे सन्धि कर ली थी कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी पीठ पीछे ये मेरे देश को तहस-नहस कर दें; क्योंकि इन्होंने भी शिवजी से बड़ा प्रतापी अस्त्र प्राप्त कर रखा है।।62।। ये बड़े अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं और तुम भी पृथ्वी के समान महान् हो। इनके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके तुम रत्नों से भरी उस दक्षिण देश की पृथ्वी की सौत बन जाओ जिसके चारों ओर स्वयं रत्नों से भरा समुद्र है।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु।।64।।

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु।।65।।

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः।
दिवाकरादर्शनवद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे।।66।।

संचारिणीदीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।67।।

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद।।68।।

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यवर्त्ततान्योपगमात्कुमारी।।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली।।69।।

तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा।।70।।

यदि तुम सदा मलयपर्वत की उन घाटियों में विहार करना चाहो, जिनमें पान की बेलों से ढके हुए सुपारी के पेड़ खड़े हैं, इलायची की बेलों से लिपटे हुए चन्दन के पेड़ लगे हैं और स्थान-स्थान पर ताड़ के पत्ते फैले हुए हैं, तो तुम इनसे विवाह कर लो।।64।। फिर ये नीलकमल के समान साँवले हैं और तुम गोरोचन जैसी गौरी हो, इसलिये तुम दोनों का विवाह हो जायेगा, तो तुम ऐसी सुन्दर लगोगी जैसे बादल के साथ बिजली।।65।। सुनन्दा की बातें इन्दुमती के मन में वैसे ही नहीं घर कर सकीं जैसे सूर्य के न दिखाई देने पर बन्द कमल के भीतर चन्द्रमा की किरणें नहीं पहुँच पातीं।।66।। रात को जब हम दीपक लेकर चलते हैं तब जो-जो भवन राजमार्ग के पीछे छूटते चलते हैं, वे अँधेरे में पड़कर धुँधले पड़ते जाते हैं, वैसे ही जिन-जिन राजाओं को छोड़कर इन्दुमती आगे बढ़ गई, उनका मुँह उदास पड़ गया।।67।। जब वह रघु के पुत्र अज के आगे आकर खड़ी हुई, तब अज के मन में भी वह शंका होने लगी कि यह मेरा वरण करेगी या नहीं। पर उसी समय भुजबन्ध के पास उनकी दाईं भुजा फड़क उठी जिससे उनकी शंका दूर हो गई।।68।। इन्दुमती ने जब उन सर्वाङ्ग-सुन्दर राजा अज को देखा, तब वह वहीं रुक गई और फिर किसी राजा के आगे नहीं जा सकी; क्योंकि जब भौरों का झुण्ड आम के वृक्ष पर पहुँच जाता है, तब उन्हें दूसरे वृक्षों के पास जाने की चाह नहीं रहती।।69।। सुनन्दा तो बात चलाने का बड़ा ढंग जानती थी इसलिये जब उसने देखा कि चन्द्रमा के समान मुखवाली इन्दुमती अज के रूप पर लट्टू हो गई है, तब वह बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बात बनाती हुई बोली—।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्रा।। 71।।
महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः।। 72।।
ऐरावतास्फालनविश्लथं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन।
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमाग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ।। 73।।
जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः।। 74।।
यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथेगतानाम्।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्।। 75।।
पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।
चतुर्दिगावर्जितसंभृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्।। 76।।
आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम्।। 77।।

'देखो! इक्ष्वाकु के वंश में, राजाओं में श्रेष्ठ और सुन्दर लक्षणों वाले एक ककुत्स्थ नाम के राजा हो गए हैं, जिनके कारण उनके पीछे उत्तरकोशल के सभी राजा अपने को 'काकुत्स्थ' कहते आये हैं।।71।। उन ककुत्स्थ राजा ने जब युद्ध में असुरों को मारा था, तब बैल पर चढ़े हुए वे शिवजी के समान लगते थे। [और जानती हो उनका बैल कौन था।] स्वयं इन्द्र भगवान् उनके लिए बैल बने हुए थे और उस युद्ध में उन्होंने जिन असुरों को मार डाला था, उनकी स्त्रियों ने पतियों से वियोग होने के कारण अपने कपोलों को पोंछना ही छोड़ दिया था।।72।। युद्ध समाप्त हो जाने पर जब इन्द्र अपना रूप धारण करके ऐरावत पर चढ़कर स्वर्ग जाने लगे, तब उनके साथ ककुत्स्थ भी बैठे हुए थे। उस समय वे इन्द्र के साथ ऐसे सटे हुए बैठे थे कि ऐरावत को बार-बार अंकुश लगाने से इन्द्र के जो भुजबन्ध ढीले पड़ गए थे, वे ककुत्स्थ के भुजबन्ध से रगड़ खाते चलते थे।।73।। उन्हीं प्रतापी ककुत्स्थ के वंश में यशस्वी राजा दिलीप ने जन्म लिया, जो केवल निन्यान्वे यज्ञ करके ही इसलिये चुप हो गए कि कहीं सौ यज्ञ पूरे करने से इन्द्र को कष्ट न हो।।74।। वे प्रतापी राजा ऐसे अच्छे ढंग से अपना राज चलाते थे और उनका ऐसा दबदबा था कि उपवनों में स्त्रियों के वस्त्रों को वायु भी नहीं हिला सकता था, फिर उन्हें हटाने का साहस तो भला कौन करता।।75।। उन्हीं के पुत्र रघु उनके पीछे राजा हुए, जिन्होंने सब देशों को जीतकर अपार धन इकट्ठा किया और विश्वजित् यज्ञ में अपना सब कुछ बाँट दिया, केवल मिट्टी का पात्र भर उनके पास अवशिष्ट रहा।।76।। उनका यश कहाँ तक फैला हुआ है, उसका कोई ठिकाना नहीं है। पर्वतों पर, समुद्र के पार, पाताल में, नागों के देश में, सब दिशाओं में और भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालों में सब जगह उनका यश फैला हुआ है।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः।
गुर्वीं धुरं योभुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं विभर्ति।।78।।
कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।।79।।
ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव।।80।।
सा यूनि तस्मिन्नभिलापवन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्वा निराक्रामदरादलकेश्याः।।82।।
तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे।
आर्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श।।81।।
सा चूर्णगौरं रघुन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः।
आसज्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्त्तमिवानुरागम्।।83।।
तथा स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षः स्थललम्बया सः।
अमँस्त कण्ठार्पितवाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः।।84।।
शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्रपौराः श्रवणकटुनृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः।।85।।

जैसे इन्द्र के पुत्र जयन्त बड़े प्रतापी हुए थे, वैसे ही कुमार अज भी उन्हीं प्रतापी रघु के पुत्र हैं और ये भी अपने प्रतापी पिता के समान ही राज्य का सब काम सँभालते हैं।।78।। इनका कुल, रूप, यौवन, और नम्रता आदि गुण सब तुम्हारे ही जैसे हैं। तुम इनसे अवश्य विवाह करो, जिससे रत्न और सोने का ठीक-ठीक मेल हो जाय।।79।। जब सुनन्दा कह चुकी, तब इन्दुमती ने संकोच छोड़कर अपनी हँसती हुई आँखें अज पर डालीं और आँखों-आँखों में इस प्रकार उन्हें वर लिया, मानो वह दृष्टिही स्वयंवर की माला हो।।80।। लाज के मारे इन्दुमती अपने प्रेम की बात अज से कह तो न सकी, पर उस प्रेम के कारण उसे रोमांच हो आया और घुँघराले बालों वाली इन्दुमती के हृदय का वह प्रेम छिपाने पर भी न छिप सका, मानो खड़े हुए रोगंटों के रूप में वह प्रेम शरीर फोड़कर निकल आया हो।।81।। सुनन्दा ने इन्दुमती की यह दशा देखकर ठिठोली करते हुए कहा—आर्ये! चलिए आगे बढ़िए। इसपर इन्दुमती ने आँखें तरेरकर सुनन्दा की ओर देखा।।82।। हाथी की सूँड़ के समान जंघाओं वाली इन्दुमती सुनन्दा के हाथों से रघु के पुत्र अज के गले में वह स्वयंवर की माला पहनवा दी, जिसके डोरे में लगी हुई रोली साक्षात् अनुराग के समान ही शोभा दे रही थी।।83।। जब अज के गले में वह फूलों की मंगल माला पड़ी और उनकी चौड़ी छाती पर झूल गई, तब उसे देखकर अज ने यही समझा मानो इन्दुमती ने मेरे गल में अपनी भुजाएँ ही डाल दी हों।।84।। जब वहाँ के नगरवासियों ने देखा कि समान गुणवाले अज और इन्दुमती का सम्बन्ध हो गया तब वे एक साथ बोल उठे—'यह तो चाँदनी और चन्द्रमा का मेल हुआ है और गंगाजी समुद्र में मिल गई हैं।' दूसरे राजा लोग ज्यों-ज्यों ये सब बातें सुनते जा रहे थे, त्यों-त्यों मन में कुढ़ते जा रहे थे।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत्।। 86।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
स्वयंवरवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः।।

स्वयंवर के मंडप में एक ओर अज के साथी हँसते हुए खड़े थे और दूसरी ओर उदास मुँहवाले राजा लोग। उस समय वह मण्डप प्रातःकाल के उस सरोवर जैसा लगने लगा, जिसमें एक ओर खिले हुए कमल दिखाई दे रहे हों और दूसरी ओर बन्द कुमुदों का झुण्ड खड़ा हो गया हो।।86।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'इन्दुमती-स्वयंवर' नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। सप्तमः सर्गः ।।

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ।। 1 ।।
सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः ।। 2 ।।
सांनिध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ।
काकुस्थमुद्दिश्य समत्सरोपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ।। 3 ।।
तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ।। 4 ।।
ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ।। 5 ।।
आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ।। 6 ।।

सातवाँ सर्ग

स्वयंवर हो चुकने पर योग्य पति से ब्याही हुई, अपनी बहन इन्दुमती को साथ लेकर विभर्दनरेश नगर की ओर चले। अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ जाते हुए 'अज' ऐसे लग रहे थे, मानो साक्षात् देवसेना के साथ स्कन्द जा रहे हों।।1।। दूसरे राजा लोग भी प्रातःकाल के तारों के समान अपना उदास मुँह लेकर अपने-अपने डेरों में यह कहते हुए लौट गए कि जब इन्दुमती ही नहीं मिली तब हम लोगों का यह रूप और यह वेश किस काम का।।2।। उस स्यवंवर में स्वयं इन्द्राणी उपस्थित थीं; इसलिये वहाँ किसी का साहस नहीं हुआ कि कुछ गड़बड़ी कर सके। जितने हारे हुए राजा थे वे सभी अज से मन ही मन ईर्ष्या कर रहे थे; किन्तु इन्द्राणी के रहने से उनका भी क्रोध ठण्डा पड़ गया।।3।। उस समय अज अपनी पत्नी के साथ नगर के बीच से राजपथ पर चले जा रहे थे। स्थान-स्थान पर सुन्दर नये फूल उन पर बरसाए जा रहे थे और इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगे तोरण उनके स्वागत में सजाए गए थे। नगर में इतनी झण्डियाँ लगाई गई थीं कि धूप भी रुक गई थी।।4।। उनको देखने के लिये नगर की सुन्दरियाँ अपना-अपना काम छोड़कर अपने-अपने भवनों के झरोखों की ओर दौड़ पड़ीं।।5।। एक सुन्दरी उन्हें देखने के लिए जब झरोखे की ओर लपकी, तब सहसा उसका जूड़ा खुल गया। उस हड़बड़ी में अपना जूड़ा बाँधने की भी उसे सुध न रही और वह अपने केश हाथ में थामे ही खिड़की पर पहुँच गई। बालों के ढीले पड़ जाने से उनमें गुथे हुए फूल बराबर नीचे गिरते जाते थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।। 7।।
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती।। 8।।
जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः।। 9।।
अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।। 10।।
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन्।। 11।।
ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा।। 12।।
स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममँस्त भोज्या।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्।। 13।।

एक दूसरी स्त्री अपनी शृङ्गार करनेवाली दासी से पैरों में महावर लगवा रही थी। वह भी अपने पैर खींचकर गीले पैरों से ही झरोखे की ओर दौड़ पड़ी, जिससे झरोखे तक लाल पैरों के छाप की पाँत-सी बनती चली गई।।7।। एक तीसरी स्त्री अपनी आँखों में आँजन लगा रही थी। दाईं आँख में तो लगा चुकी थी; पर बाईं आँख में आँजन लगाए बिना ही वह सलाई हाथ में लिए झरोखे की ओर दौड़ पड़ी।।8।। एक और स्त्री झरोखे में आँख लगाए खड़ी थी। उसका नीवीबन्ध खुल गया था; पर उसे बाँधने की सुध ही नहीं थी। वह अपने कपड़े हाथ से थामे इस प्रकार खड़ी थी कि उसके हाथ के आभूषणों की चमक उसकी नाभि तक पहुँच रही थी।।9।। एक स्त्री बैठी हुई मणियों की माला गूंथ रही थी जिसका एक छोर उसने एक पैर के अँगूठे में बाँध रक्खा था। वह अभी आधी ही पिरो पाई थी कि सहसा उठकर अज को देखने के लिये झरोखे की ओर लपकी चली गई। फल यह हुआ कि वहाँ पहुँचते-पहुँचते मणि तो सब निकल-निकलकर इधर-उधर बिखर गए, केवल डोरा-भर पाँव में बँधा रह गया।।10।। मदिरा की गन्ध से सुवासित मुखोंवाली, झरोखों में उत्सुकता के साथ झाँकती हुईं वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो झरोखों में बहुत-से कमल सजे हुए हों और उन पर बहुत-से भौंरे आ बैठे हों; क्योंकि उनके सुन्दर मुखों पर आँखें ऐसी जान पड़ती थी जैसे कमल पर भौंरे बैठे हों।।11।। वे स्त्रियाँ ऐसी एकटक होकर अपने नेत्रों से अज का रूप पी रही थीं कि उनका ध्यान किसी और काम की ओर गया ही नहीं, मानो उनकी सभी इन्द्रियों की शक्ति आँखों में ही आ बसी हो।।12।। [स्त्रियाँ आपस में कह रही थीं] यों तो बहुत-से राजाओं ने अपने आप आकर इन्दुमती से विवाह की प्रार्थना की थी, पर राजकुमारी ने स्वयंवर करके ही अपना विवाह करना उचित समझा और यह ठीक भी किया। जैसे स्वयंवर में लक्ष्मी ने नारायण को वर लिया, वैसे ही इन्दुमती ने भी अज को वर लिया है। बताओ तो बिना स्वयंवर के उसे ऐसा योग्य वर कैसे मिल पाता?।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत्।। 14।।

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथाहि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम्।। 15।।

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः संबन्धिनः सद्म समाससाद।। 16।।

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः।। 17।।

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम्।
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः।। 18।।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिनवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः।। 19।।

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये बधूवरौ संगमयांचकार।। 20।।

यदि ब्रह्मा यह सुन्दर जोड़ी न मिलाते तो इन दोनों को सुन्दर बनाने का उनका सब परिश्रम ही व्यर्थ हो जाता।।14।। ये दोनों पिछले जन्म में रति और कामदेव ही रहे होंगे। इसीलिये तो सहस्रों राजाओं के बीच में इन्दुमती ने उन्हें प्राप्त कर लिया; क्योंकि पिछले जन्म के सम्बन्ध को मन तो भली-भाँति पहचान ही लेता है।।15।। नगर की महिलाओं के मुँह से इस प्रकार की बातें सुनते हुए कुमार अज अपने सम्बन्धी भोज के उस राज-भवन में जा पहुँचे; जो मंगल सामग्रियों की सजावट से जगमगा रहा था।।16।। वहाँ पहुँचकर वे तत्कालहथिनी से नीचे उतरे और कामरूप के राजा के हाथ में हाथ देकर विदर्भराज के बताये हुए भीतरी चौक में ऐसे पैठ गये, मानो वे वहाँ की स्त्रियों के मन में भी पैठ गए हों।।17।। वहाँ वे सुन्दर बहुमूल्य सिंहासन पर जाकर बैठ गए। भोज ने उन्हें रेशमी वस्त्रों के एक जोड़े के साथ जो [दही, मधु और घी मिला हुआ] मधुपर्क भेंट किया, उसे उन्होंने वहाँ की नवेलियों की बाँकीं चितवन के साथ-साथ स्वीकार कर लिया।।18।। जैसे चन्द्रमा की नई किरणें समुद्र की उजली झागवाली लहरों को खींचकर दूर किनारे तक ले आती हैं, वैसे ही रनिवास के नम्र सेवक अज को इन्दुमती के पास ले गये।।19।। वहाँ विदर्भराज के अग्नि के समान तेजस्वी पुरोहित ने घी आदि सामग्रियों से हवन करके और उसी अग्नि को साक्षी बनाकर वर-वधू का गठबन्धन कर दिया।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तेन हस्तं परिगृह्य बध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन।। 21।।
आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नांगुलिः संववृते कुमारी।
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन।। 22।।
तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिवर्त्तितानि।
हीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि।। 23।।
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्।। 24।।
नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ।। 25।।
हविः शमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।। 26।।
तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम्।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव।।27।।
तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरंध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्।
कन्याकुमारी कनकासनस्थावार्द्राक्षितारोपणमन्वभूताम्।। 28।।

जैसे आम का पेड़ अपनी पत्तियों के साथ-साथ अशोक लता की लाल पत्तियों के मिल जाने से मनोहर लगता है वैसे ही जब अज ने अपनी बहू का हाथ पकड़ा, तब वे भी बहुत सुन्दर लगने लगे।।21।। बहू के हाथ थामने से अज को रोमांच हो आया और इन्दुमती की उँगलियों में पसीना आने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो कामदेव ने अपने प्रेम का भाव उन दोनों में बराबर बाँट दिया हो।।22।। वे कनखियों से एक दूसरे की ओर देखते थे और आँखें चार होते ही एक दूसरे को देखकर लज्जा से आँखें नीची कर लेते थे। उनका यह लाजभरा संकोच देखनेवालों का मन मोह ले रहा था।।23।। अज और इन्दुमती दोनों जब हवन की अग्नि के फेरे देने लगे, उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो दिन और रात का जोड़ा मिलकर सुमेरुपर्वत की फेरी दे रहा हो।।24।। तब बड़े-बड़े नितम्बोंवाली मत्त चकोर के समान आँखोंवाली, लजीली इन्दुमती ने ब्रह्मा के समान पूज्य पुरोहित के कहने से अग्नि में धान की खीलें छोड़ीं।।25।। घी शमी के पत्तों और धान की खीलों की गन्ध से भरा हुआ पवित्र धुआँ अग्नि से निकलकर जब इन्दुमती के कपोल तक पहुँचा, तब ऐसा जान पड़ा मानो इन्दुमती ने नीले कमल का कर्णफूल पहन लिया हो।।26।। उस विवाह की अग्नि का धुआँ लगने से इन्दुमती को आँखों से आँजन मिला हुआ आँसू बहने लगा, कानों के कर्णफूल कुम्हला गए और गाल गाल हो गए।।27।। फेरे हो चुकने पर सोने के सिंहासन पर बैठे हुए वर-वधू के ऊपर स्नातकों ने, कुटुम्बियों ने, भोजराज ने और पुरोहित जी ने बारी-बारी से अक्षत एवं खीले छोड़कर आशीर्वाद दिए।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः।। 29।।
लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाच्छलेन।। 30।।
स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम्।।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ।। 31।।
भर्त्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च।। 32।।
तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः।। 33।।
प्रमन्यवः प्रागपि कोशलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य।। 34।।
तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः।। 35।।

उस भोज-कुल के दीपक, लक्ष्मीवान् राजा ने अपनी बहन का विवाह-संस्कार पूरा करके सेवकों को आज्ञा दी कि वे अलग-अलग सब राजाओं का आदर-सत्कार करें।।29।। जैसे तालाब के निर्मल जल के भीतर ही घड़ियाल भी रहते हैं, वैसे ही दूसरे राजा भी ऊपर से तो बड़े प्रसन्न दिखाई देते थे, पर मन में बड़े खिन्न थे। वे सब विदर्भराज से आज्ञा लेकर उनकी दी हुई सामग्री को भेंट करने के बहाने से लौटा-लौटाकर अपने-अपने देशों को लौट चले।।30।। इन राजाओं ने मिलकर पहले ही निश्चय कर लिया था कि जब 'अज' इन्दुमती को लेकर चलें तो उन्हें घेर लिया जाय और उनसे सुन्दरी इन्दुमती को छीन लिया जाय; इसलिये वे सब मिलकर आगे अज का मार्ग रोककर बीच में ठहर गए।।31।। इधर छोटी बहिन का विवाह करके विदर्भ-राज ने भी अपने सामर्थ्य के अनुसार धन देकर रघु के पुत्र अज को बिदा कर दिया और उनके साथ-साथ जाकर कुछ दूर तक उन्हें पहुँचा आए।।32।। कुण्डिनपुर के राजा भोज ने तीनों लोकों में विख्यात अज के साथ मार्ग में तीन रातें बिताईं और फिर वैसे ही लौट आए जैसे अमावस्या होने पर सूर्य के पास से चन्द्रमा लौट आता है।।33।। जो राजा मार्ग रोके खड़े हुए थे, उनका कोशलपति रघु ने दिग्विजय के समय धन छीन लिया था, इसलिये वे तो पहले से ही उनसे जले बैठे थे। वे यह भी नहीं सह सके कि रघु का पुत्र हम लोगों के रहते हुए इन्दुमती को लेकर चला जाय।।34।। जब अज इन्दुमती को साथ लिए चले जा रहे थे, उस समय उन अभिमानी राजाओं ने अज को उसी प्रकार रोक लिया, जैसे इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर ने वामन के चरण को उस समय रोक लिया था, जब वे बलि की राज्य-लक्ष्मी लेकर चले थे।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः।
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः।।36।।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।।37।।

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान्।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः।।38।।

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम्।।39।।

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नोदकानि।।40।।

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः।
स्वभर्तृनामग्रहणाद्बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः।।41।।

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः।।42।।

अज ने अपने पिता के मंत्री को आज्ञा दी कि थोड़े से योद्धा साथ लेकर इन्दुमती की रक्षा करो और वे स्वयं उस सेना को रोककर उसी प्रकार खड़े हो गए, जैसे बाढ़ के दिनों में ऊँची तरंगोंवाला शोणनद गङ्गाजी की धारा को रोक लेता है।।36।। लड़ाई छिड़ गई। पैदल, पैदलों से भिड़ गये, रथवाले रथवालों से जूझ गए, घुड़सवार घुड़सवारों से उलझ पड़े, हाथी-सवार हाथी सवारों पर टूट पड़े। इस प्रकार बराबर जोड़ की लड़ाई होने लगी।।37।। वहाँ इतनी तुरहियाँ बज रही थीं कि किसी को कुछ सुनाई नहीं देता था। इसलिये धनुषधारी अपना कुल और नाम भी नहीं पुकार रहे थे। पर वे जो बाण चला रहे थे उनपर खुदे हुए अक्षरों से ही उनके नामों का ज्ञान हो जाता था।।38।। युद्ध-क्षेत्र में घोड़ों की टापों से जो धूल उठी, उसमें रथ के पहियों से उठी हुई धूल मिलकर और भी घनी हो गई। हाथियों के कानों के डुलाने से ऐसी धूल चारों ओर फैल गई मानो सूर्य को कपड़े से ढक दिया गया हो।।39।। वायु के कारण सेना की मछली के आकारवाली झंडियों के मुँह खुल गये थे। उनमें जब धूल घुस रही थी, तब वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो वर्षा का गन्दा पानी पीती हुई वास्तविक मछलियाँ हों।।40।। धूल इतनी गहरी छा गई थी कि उस युद्ध क्षेत्र में पहियों का शब्द सुनकर ही वे समझ पाते थे कि रथ आ रहा है और अपना-पराया तब समझते थे, जब दोनों ओर के सैनिक अपने-अपने राजाओं का नाम ले-लेकर युद्ध करते थे।।41।। आँखों के आगे अँधेरा छा देनेवाली और युद्धभूमि में फैली हुई धूल के अँधियारे में, शस्त्रों से घायल घोड़ों, हाथियों और योद्धाओं के शरीर से निकला हुआ लहू, प्रातःकाल के सूर्य की लाली जैसा लगने लगा।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवावभासे।।43।।
प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निवर्तिताश्वान्।
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूँस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः।।44।।
अप्यर्धमार्गे परवाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धभागैः फलिभिः शरव्यम्।।45।।
आधोरणानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः।।46।।
पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष।।47।।
तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः।
उद्यन्तमग्निं शमयांबभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण।।48।।
शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः।।49।।

पृथ्वी पर इतना रक्त बहा कि नीचे की धूल दब गई और जो धूल उठ चुकी थी वह वायु के सहारे इधर-उधर फैलकर उस धुएँ जैसे लगने लगी, जो अग्नि से उठकर ऊपर फैल चुका हो और नीचे केवल अंगारे बचे रह गये हों।।43।। जो योद्धा चोट लगने से मूर्च्छित हो गये थे, उनको उनके सारथी रथ पर डालकर लौटा लाए। जब उनकी मूर्छा दूर हुई तो वे अपने सारथियों को बहुत बुरा-भला कहने लगे और जिनकी मार से वे घायल हुए थे, उन्हें रथ के झण्डों से पहचान-पहचानकर मारने लगे।।44।। जिन धनुषधारियों के हाथ बाण चलाने में सधे हुए थे, उनके बाण यद्यपि शत्रुओं के बाणों से बीच में ही दो टूक हो जाते थे, फिर भी उनमें इतना वेग होता था कि उनका फल लगा हुआ अगला भाग लक्ष्य पर पहुँच ही जाता था।।45।। जहाँ हाथियों का युद्ध हो रहा था, वहाँ पैने छुरेवाले चक्रों से जिन हाथीवानों के सिर कट गए थे, वे सिर बहुत देर से पृथ्वी पर गिरते थे, क्योंकि उनके लम्बे-लम्बे बाल बाज-पक्षियों के नखों में उलझने से बहुत देर तक ऊपर ही टँगे रह जाते थे।।46।। एक घुड़सवार ने अपने शत्रु घुड़सवार पर पहले चोट की। चोट खाते ही वह घोड़े के कन्धे पर झुक गया और उसमें इतनी भी शक्ति न रही कि सिर तक उठा सके। जिस घुड़सवार ने प्रहार किया था उसने यह देखकर फिर उस पर हाथ नहीं उठाया, उलटे यह मनाने लगा कि वह फिर से जी उठे [और फिर उससे लड़ा जाय; क्योंकि मरे को मारना कायरता है]।।47।। जो कवचधारी योद्धा अपने प्राण हथेली पर लिए लड़ रहे थे, उन्होंने नंगी तलवार से जब हाथियों के दाँतों पर चोटें कीं तब चिनगारी निकलने लगी। उस चिनगारी से हाथी इतने डर गए कि वे अपनी सूँड़ के जल से उस आग को बुझाने लगे।।48।। वह युद्धक्षेत्र मृत्युदेव के उस मंदिरालय-सा जान पड़ने लगा, जिसमें बाण से कटे हुए सिर ही मानो फल हों, उलटकर गिरे हुए कूँड़े ही मानो प्याले हों और बहता हुआ रक्त ही मानो मदिरा हो।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार।।50।।

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य।
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श।।51।।

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित्।
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ।।52।।

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकोप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः।।53।।

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम्।
पश्चात्पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी।।54।।

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव।
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः।।55।।

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः।।56।।

एक स्थान पर किसी के बाँह का टुकड़ा कटा पड़ा था, जिसे गिद्ध आदि पक्षियों ने नोच रखा था। उसे माँस के लोभ से सियारिन खींच ले गई, पर ज्योंही उसने उस पर मुँह मारा त्यों ही बाँह में बँधे हुए भुजबन्ध की नोक से उसका तालू छिद गया और उसने उसे वहीं पर छोड़ दिया।।50।। एक योद्धा का सिर शत्रु की तलवार से कट गया। युद्ध में मृत्यु होने से वह देवता हो गया और अपने बाएँ एक अप्सरा लिए हुए विमान पर चढ़कर आकाश से यह देखने लगा कि मेरा धड़ रणभूमि में किस प्रकार नाच रहा है।।51।। दो योद्धाओं के सारथी मारे जा चुके थे, इसलिये वे अपने आप रथ भी चला रहे थे और लड़ भी रहे थे। पर जब उनके घोड़े भी मारे जा चुके, तब वे रथ से उतरकर पैदल ही गदा लेकर लड़ने लगे और जब गदाएँ भी टूट गईं तब वे मल्ल-युद्ध करने लगे।।52।। दो वीर एक दूसरे के प्रहार से एक साथ मारे गए। दोनों देवता होकर जब स्वर्ग में पहुँचे, तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों रीझ गए और वहाँ भी वे आपस में झगड़ने लगे।।53।। जैसे समुद्र की दो लहरें आगे-पीछे झोंका लेनेवाले वायु से हटती-बढ़ती रहती हैं, वैसे ही वे दोनों सेनाएँ भी कभी जीतती थीं और कभी हारती थीं।।54।। यद्यपि शत्रुओं ने अज की सेना को मारकर भगा दिया था पर महापराक्रमी अज, शत्रु की सेना में बढ़ते ही चले गए; क्योंकि वायु धुएँ को भले ही उड़ा दे पर आग तो उसके सहारे घासफूस को पकड़ती ही चली जाती है।।55।। जैसे प्रलय के समय वराह भगवान् समुद्र के बढ़े हुए जल को चीरते हुए चलते थे, वैसे ही घोड़े पर चढ़े तूणीर बाँधे स्वाभिमानी वीर अज अकेले ही शत्रुओं की सेना को चीरते चले जा रहे थे।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ।
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान्।।57।।
स रोषदष्टाधिकलोहितौष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः।।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः।।58।।
सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव।।59।।
सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः।
नोहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव।।60।।
प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः।।
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः।।61।।
ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्।।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम्।।62।।
ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवाबभासे।।63।।
शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्तस्तां सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः।।
निमीलितानामिव पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम्।।64।।

वे इतनी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि यह पता ही नहीं चलता था कि उन्होंने कब अपना हाथ तूणीर में डाला और कब बाण निकाला। अपितु ऐसा जान पड़ता था कि वे जब कान तक धनुष की डोरी खींचते थे, तब उसी में से शत्रुओं का नाश करनेवाले बाण निकलते चले जा रहे थे।।57।। जिन राजाओं ने क्रोध से चबा-चबाकर ओठों को लाल कर लिया था और जो भौंहें तान-तानकर हुँकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे, उनके सिर काट-काट कर अज ने पृथ्वी पाट दी।।58।। जब उन राजाओं ने यह देखा तब वे रथ, घोड़े और पैदल लेकर कवच तक काट देनेवाले पैने अस्त्रों से पूरा बल लगाकर एक साथ अज पर प्रहार करने लगे।।59।। इन राजाओं ने अज पर इतने अस्त्र बरसाए कि उनका रथ ढक गया। जैसे कोहरे के दिन में प्रभात होने का ज्ञान धुँधले सूर्य को देखकर होता है, वैसे ही अज का पता उनके रथ की पताका के सिरे को देखकर ही मिलता था।।60।। तब महाराज रघु के पुत्र, कामदेव के समान सुन्दर, सावधान अज ने 'प्रियंवद' का दिया हुआ वह गन्धर्व-अस्त्र राजाओं पर छोड़ा जिससे निद्रा आ जाती है।।61।। अस्त्र छोड़ते ही उन राजाओं की सेना के हाथ ऐसे रुक गए कि वे अपने धनुष तक न खींच पाए। उनकी पगड़ियाँ गिरकर कन्धों पर झूल गई और सारी सेना झंडियों के डंडों के सहारे सो गई।।62।। उस समय इन्दुमती के चुम्बन का रस लेनेवाले अपने ओठों से शंख फूंकते हुए 'अज' ऐसे जान पड़ते थे, मानो अपने बाहुबल से उत्पन्न किए हुए मूर्तिमान यश को ही पी रहे हों।।63।। शंख की ध्वनि को पहचानकर अज के योद्धा लौट आए। सोते हुए शत्रुओं के बीच अज उन्हें ऐसे लगे मानो मुँदे हुए कमलों के बीच में चन्द्रमा चमक रहा हो।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम्।
यशो हृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः।।65।

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे।।66।।

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि पश्यानुमता मयासि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः।।67।।

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निःश्वासबाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः।।68।।

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम्।।69।।

इति शिरसि स वामं पादमाधायराज्ञा–
मुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा
समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्त्ता बभूव।।70।।

तब उन मूर्छित पड़े हुए राजाओं की ध्वजाओं पर रुधिर से सने बाणों की नोकों से यह लिख दिया गया–'हे राजाओ! इस समय राजकुमार अज ने तुम लोगों का यश तो ले लिया, पर दया करके प्राण नहीं लिए।।65।। अज ने अपने सिर का शिरस्त्राण उतारा तो उनके बाल बिखर गए, उनके माथे पर पसीना छा गया, और धनुष के एक छोर पर बाँह टेककर वे इन्दुमती के पास आकर बोले।।66।। 'इन्दुमती! चलो देखो, युद्धभूमि में राजा लोग इस प्रकार सोए पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र छीन लायें। देखो, इसी बल पर ये तुम्हें मेरे हाथों से छीनने चले थे।।67।। जब इन्दुमती को विश्वास हो गया कि शत्रु मारे गए तब उनका मुँह उस दर्पण के समान सुन्दर लगने लगा, जिस पर पड़ी हुई साँस की भाप पोंछ दी गई हो।।68।। अपने पति का पराक्रम देखकर इन्दुमती प्रसन्न तो हुई, पर वह इतनी लजा गई कि उसके मुँह से उनके अभिनन्दन के लिए शब्द तक ना निकले। पर जैसे नये बादलों की बूँदों से भीगी हुई पृथ्वी मोर के शब्दों से मेघों का स्वागत करती है, वैसे ही उसकी सखियों ने जो अज की प्रशंसा की वह मानो इन्दुमती ने ही उनका अभिनन्दन किया हो।।69।। इस प्रकार पवित्र अज उन राजाओं के सिरों पर बायाँ पैर रखकर सुन्दरी इन्दुमती को लेकर चले। उनके रथ के घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से इन्दुमती के केश भर गए थे। और वह साक्षात् विजयलक्ष्मी जैसी जान पड़ रही थी।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाध्यजायासमेतम्।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोभूत्
न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय।। 71।।

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकव्ये अजेनेन्दुमतीपाणिग्रहणो नाम सप्तमः सर्गः।।

रघु को यह समाचार पहले ही मिल चुका था इसलिये उन्होंने सुन्दरी पत्नी के साथ आए हुए विजयी अज़ का स्वागत किया और फिर उन्हें कुटुम्ब का भार सौंपकर मोक्ष की साधना में लग गए, क्योंकि सूर्यवंशी राजाओं का यह नियम है कि जब पुत्र कुल का भार सँभालने के योग्य हो जाता है, तब वे घर में नहीं रहते।।71।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अज का विवाह' नामक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अष्टमः सर्गः ।।

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः।
वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम्।। 1।।
दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत्।
तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया।। 2।।
अनुभूय वशिष्ठसंभृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम्।
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी कथयामास कृतार्थतामिव।। 3।।
स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा।। 4।।
रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि।। 5।।
अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम्।
पदमृद्धमजेन पैतृकं विनयेनास्य नवं च यौवनम्।। 6।।
सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव।। 7।।

आठवाँ सर्ग

अभी अज ने विवाह का सुन्दर मङ्गल-सूत्र उतारा नहीं था कि रघु ने अज के हाथों में सारी पृथ्वी इस प्रकार सौंप दी, मानो वह भी दूसरी इन्दुमती हो।।1।। जिस राज्य को पाने के लिये दूसरे राजकुमार खोटे उपायों का प्रयोग करने में भी नहीं संकोच करते, उसी राज्य को अज ने केवल पिता की आज्ञा मानकर ही स्वीकार कर लिया, भोग की इच्छा से नहीं।।2।। जिस समय अज का राज्याभिषेक हुआ, उस समय वशिष्ठजी ने उनके ऊपर जो पवित्र जल छिड़का, वह पृथ्वी पर भी पड़ा। उसके कारण पृथ्वी से जो भाप निकली वह मानो यह सूचित करती थी कि उसे भी अज के राजा होने से सन्तोष है।।3।। अथर्ववेद के जाननेवाले वशिष्ठजी ने जब उनका राज्याभिषेक कर दिया, तब वे इतने तेजस्वी हो उठे कि उनके सब शत्रु काँप गए; क्योंकि जब क्षात्रतेज के साथ ब्रह्मतेज मिल जाता है, तब वह वैसा ही बलशाली हो जाता है जैसे वायु का सहारा पाकर अग्नि।।4।। वहाँ की प्रजा ने भी अज के राजा होने पर यही समझा मानो रघु ही फिर से युवा हो गये हों; क्योंकि अज ने केवल रघु की राज्य-लक्ष्मी को ही नहीं पाया था; अपितु रघु के सब गुण भी उनमें आ गए थे।।5।। उस समय संसार में केवल दो ही वस्तुएँ एक दूसरे से मिलकर सुन्दर जँची, एक तो पिता का भरा-पूरा राज्य पाकर अज और दूसरे अज की नम्रता पाकर उनका नव-यौवन।।6।। महाबाहु अज ने नई पृथ्वी का पालन यह समझकर दयालुता के साथ करना प्रारम्भ किया कि कहीं अधिक कठोरता का व्यवहार करने से वह भी उसी प्रकार न घबरा जाय जैसे नई ब्याही हुई बहू कठोर व्यवहार से घबरा जाती है।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत्।
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित्।। 8।।
न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्।। 9।।
अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया।
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत्।। 10।।
गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः।
पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे।। 11।।
तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः।। 12।।
रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः।
न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम्।।13।।
स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया।। 14।।

वे अपनी प्रजा को बहुत प्यार करते थे। इससे सब लोग अपने-अपने मन में यही सोचते थे कि वे हमें ही सबसे अधिक मानते हैं। बात यह थी कि जैसे समुद्र सैकड़ों नदियों से एक-सा ही व्यवहार करता है, वैसे ही वे भी न किसी का बुरा चाहते थे न किसी से बैर करते थे।।8।। वे न तो बहुत कठोर थे और न बड़े कोमल। उन्होंने बीच का मार्ग पकड़ा था और अपने शत्रु राजाओं को राजगद्दी से उतारे बिना ही उनको उसी प्रकार नम्र कर दिया, जैसे मध्यम गति से बहनेवाला वायु वृक्षों को उखाड़ता तो नहीं पर झुका अवश्य देता है।।9।। जब रघु ने देखा कि हमारे पुत्र अज का प्रजा में बड़ा आदर है और वह भली-भाँति राज कर रहा है, तब उन्हें इतना आत्मज्ञान हो गया कि स्वर्ग के उन सुखों की चाह भी उन्होंने छोड़ दी, जो कभी न कभी नष्ट हो ही जाते हैं।।10।। दिलीप के वंश में जितने राजा हुए वे वृद्धावस्था में सब राज-काज अपने गुणवान् पुत्र को सौंपकर नियम से पेड़ की छाल का वस्त्र पहननेवाले संन्यासियों के समान जंगल में चले जाते थे।।11।। इसलिए जब राजा रघु जंगल में जाने को उद्यत हुए तब अज ने मनोहर पगड़ीवाला अपना सिर उनके चरणों में नवाकर प्रार्थना की कि आप मुझे छोड़कर न जाइये।।12।। अपने पुत्र अज को रघु बहुत प्यार करते थे, इसलिये अज की आँखों में आँसू देखकर वे रुक तो गए; पर जैसे साँप अपनी केंचुली छोड़कर फिर उसे नहीं ग्रहण करता, वैसे ही उन्होंने जिस राज्य-लक्ष्मी को एक बार छोड़ दिया फिर स्वीकार नहीं किया।।13।। वे संन्यास लेकर नगर के बाहर एक कुटिया में रहने लगे। जिस भूमि पर उनके पुत्र राज्य कर रहे थे वह जितेन्द्रिय रघु को फल-फूल देकर उसी प्रकार सेवा कर रही थी मानो उनकी पुत्रवधू ही हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम्।
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत्।।15।।
यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः।।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ।।16।।
अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरजः।
अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः।।17।।
नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम्।।18।।
अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान्।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान्।।19।।
अकरोदचिरेश्वेरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात्।
इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना।।20।।
पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद्गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः।।21।।

उस समय सूर्य-वंश उस आकाश के समान लग लग रहा था, जिसमें एक ओर चन्द्रमा छिप रहे हों और दूसरी ओर सूर्य निकल रहे हों, [क्योंकि एक ओर राजा रघु संन्यास लेकर शान्ति का जीवन बिता रहे थे और दूसरी ओर ऐश्वर्यशाली 'अज' राजा बनकर गद्दी पर बैठे थे]।।15।। संन्यासी बने हुए रघु और राज़ा बने हुए अज को देखकर लोगों ने यह समझ लिया कि मोक्ष और ऐश्वर्य देनेवाले धर्मों के दो अंश पृथ्वी पर साथ-साथ चले आए हैं।।16।। एक ओर अज नीति जाननेवाले मंत्रियों के साथ दिग्विजय का विचार करने लगे, दूसरी ओर रघु भी मोक्ष पद पाने के लिये तत्वदर्शी योगियों के साथ शास्त्र-चर्चा करने लगे।।17।। इधर युवा अज जनता के कामों की देखभाल करने के लिये न्याय के आसन पर बैठते थे, उधर बूढ़े रघु अपने मन को साधने का अभ्यास करने के लिये अकेले में कुशा के पवित्र आसन पर बैठते थे।।18।। अज ने अपने प्रभुत्व और अपनी शक्ति से आस-पास के शत्रु राजाओं को वश में कर लिया और रघु ने अपने योगबल से शरीर के भीतर रहनेवाले [प्राण, अपमान, समान, उदान और व्यान इन] पाँचों पवनों को अपने वश में कर लिया था।।19।। अज ने पृथ्वी पर शत्रुओं की सब चालें नष्ट कर डालीं और रघु ने ज्ञान की अग्नि से अपने सारे कर्मों को नष्ट कर डाला।।20।। एक ओर अज [संधि, विग्रह, यान, आसन, आश्रय और द्वैधीभाव इन] छह नीतियों का परिणाम समझकर प्रयोग करते थे, दूसरी ओर मिट्टी और सोना दोनों को बराबर समझनेवाले रघु ने भी प्रकृति के सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों को जीत लिया।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात्।। 22।।
इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ।
प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं सिद्धिमुभाववापतुः।। 23।।
अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः।
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः।। 24।।
श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित्।। 25।।
अकरोत्स तदौर्ध्वदेहिकं पितृभक्त्या पितृकार्यकल्पवित्।
न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः।। 26।।
स परार्ध्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः।
शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवानप्रतिशासनं जगत्।। 27।।
क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम्।
प्रथमा बहुरत्नसूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम्।। 28।।

दृढ़ प्रतिज्ञावाले अज जब किसी काम को प्रारम्भ करते थे तो उसे तब तक नहीं छोड़ते थे, जब तक वह पूरा नहीं हो जाता था, वैसे ही स्थिर चित्तवाले रघु ने भी तब तक योगक्रिया नहीं छोड़ीं, जब तक उन्हें परमात्मा का दर्शन नहीं हो गया।।22।। इस प्रकार एक ओर अज सारे संसार के ऐश्वर्य को प्राप्त करने में लगे हुए थे और दूसरी ओर रघु मोक्ष प्राप्त करने में मन लगाए हुए थे। अज ने अपने शत्रुओं का बढ़ना रोककर और रघु ने इन्द्रियों को वश में करके अपनी-अपनी सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं।।23।। सबको समान समझनेवाले रघु ने अज के कहने से कुछ वर्ष संसार में और बिताए। फिर योगबल से सदा प्रकाशमान, अविनाशी परमात्मा में लीन हो गए।।24।। अपने पिता के देहत्याग का समाचार पाकर अग्निहोत्र करनेवाले अज बहुत रोए। उन्होंने अपने पिता के शरीर का दाह-संस्कार नहीं किया, वरन् योगियों के साथ उनके शरीर को ले जाकर पृथ्वी में समाधि दे दी [क्योंकि संन्यासियों का दाह संस्कार नहीं किया जाता]।।25।। यद्यपि रघु जैसे–जो महात्मा योगबल से शरीरत्याग करके मुक्त हो जाते हैं, उन्हें अपने पुत्रों से पिण्डदान की आवश्यकता नहीं रहती, फिर भी अज तो यह जानते ही थे कि पिता का संस्कार किस प्रकार करना चाहिये। इसलिये उन्होंने बड़ी भक्ति से अपने पिता के श्राद्ध आदि संस्कार किए।।26।। तत्वज्ञानी पण्डितों ने जब अज को समझाया कि तुम्हारे पिता ने मोक्ष पा लिया है, तब उन्हें धीरज हुआ और उनका शोक कम हुआ। तब वे धनुष-बाण लेकर सारे संसार पर एकछत्र राज्य करने लगे।।27।। पृथ्वी और इन्दुमती दोनों 'अज' जैसे महापराक्रमी को पति के रूप में पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और बदले में पृथ्वी ने बहुत से रत्न उत्पन्न किए और इन्दुमती ने वीर पुत्र को जन्म दिया।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम्।
दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः।। 29।।
ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः।
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः।। 30।।
बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।। 31।।
स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजः।
नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने।। 32।।
अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्।
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः।। 33।।
कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।
अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः।। 34।।
भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः।
ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवाञ्जनाविलम्।। 35।।

ये अज के पुत्र वही थे, जो दस सौ किरणों वाले सूर्य के समान तेजस्वी थे, जिनका यश दसों दिशाओं में फैला था, जो उस राम के पिता थे जिन्होंने दस सिरवाले रावण को मारा था और जिन्हें पंडित लोग दशरथ कहते हैं।।29।। इस प्रकार वेदों का अध्ययन करके ऋषियों के ऋण से, यज्ञ करके देवताओं के ऋण से और पुत्र उत्पन्न करके अपने पितरों के ऋण से मुक्त होकर 'अज़' वैसे ही शोभित हुए जैसे मण्डल से छूटकर सूर्य शोभा देता है।।30।। अज ने केवल अपने धन से ही दूसरों को लाभ नहीं पहुँचाया; वरन् अपने गुणों से भी लोगों का उपकार किया; क्योंकि अपने पराक्रम से तो उन्होंने दीन-दुर्बलों का डर दूर किया और अपने शास्त्र के ज्ञान से विद्वानों का सत्कार किया।।31।। एक दिन अच्छी संतानवाले, प्रजापालक राजा अज अपनी रानी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में उसी प्रकार विहार कर रहे थे, जैसे देवताओं का पालन करनेवाले इन्द्र नन्दनवन में इन्द्राणी के साथ विहार करते हैं।।32।। उसी समय दक्षिणी समुद्र के किनारे पर गोकर्ण में बसे हुए शंकरजी को वीणा के साथ गाना सुनाने के लिये नारदजी आकाश से चले जा रहे थे।।33।। उनकी वीणा के सिरे पर स्वर्गीय फूलों से गुँथी हुई माला लटकी हुई थी। कहा जाता है कि उस समय वेग से चलनेवाले वायु के कारण वह माला खिसककर नीचे गिर गई, मानो वायु ने ही गन्ध के लोभ से उसे वहाँ से उतार लिया हो।।34।। वह माला तो गिर गई; पर फूलों के साथ लगे हुए भौंरे अभी तक नारदजी की वीणा पर मँडर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वायु से अपमानित होकर वीणा भी काजल मिले हुए आँसू बहा रही हो।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिभूय विभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम्।
नृपतेरमरस्रगाप सा दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम्।।36।।
क्षणमात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृतचंद्रा तमसेव कौमुदी।।37।।
वपुषाकरणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत्।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम्।।38।।
उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिताः।
विहगाः कमलाकरालयाः समुदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः।।39।।
नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते।।40।।
प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात्।
स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम्।।41।।
पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः।।42।।
विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।।43।।

उस स्वर्गीय माला में इतना अधिक मधु और इतनी अधिक गन्ध थी कि उसके आगे बसन्त के वृक्षों और लताओं का मधु और सुवास लजा जाता था। वही माला अचानक रानी इन्दुमती के बड़े-बड़े स्तनों के ठीक बीच में आकर गिरी।।36।। क्षणभर के लिये अज की प्रियतमा ने अपने स्तनों की सखी उस माला को देखा और देखते ही उसने व्याकुल होकर आँखें मूँद लीं, मानो चन्द्रमा को राहु ने ग्रस लिया हो।।37।। प्राणहीन होने से वह गिर पड़ी और उसके साथ-साथ अज भी गिर पड़े; क्योंकि गिरते हुए तेल की बूँदों के साथ क्या दीपक की लौ पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ती।।38।। उनके सेवकों ने घबराकर रोना-चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया और उनसे डरकर तालाबों में रहनेवाले पक्षी भी इस प्रकार चिल्ला उठे, मानो वे भी उनके दुःख में दुखी हों।।39।। पंखा डुलाने और दूसरे उपायों से किसी प्रकार अज की मूर्छा तो दूर हो गई; पर रानी इन्दुमती ज्यों की त्यों पड़ी रही; क्योंकि औषधि तो तभी काम करती है जब आयु शेष हो।।40।। तब उस अत्यन्त प्यारे राजा ने अपनी मृत पत्नी को अपनी गोद में उठाकर उसी प्रकार रख लिया जैसे स्वर मिलाने के समय वीणा रख ली जाती है।।41।। प्राण निकल जाने से इन्दुमती के शरीर का रंग पीला पड़ गया था। उसे गोदी में लिटाये हुए राजा उस प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान दिखाई दे रहे थे, जिसकी गोद में धुँधली मृग की छाया हो।।42।। उनका स्वाभाविक धैर्य जाता रहा, गला भर आया और वे विलाप करके रोने लगे, क्योंकि तपने पर लोहा भी नरम हो जाता है फिर देहधारियों की तो बात ही क्या है।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यता विधेः।। 44।।
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।। 45।।
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।। 46।।
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा।
यददेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता।। 47।।
कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि।
कथमेकपदे निरासगं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे।। 48।।
ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव।
परलोकमसंनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः।। 49।।
दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना।
सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्कृतेन वेदनाम्।। 50।।
सुरतश्रमसंभृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम्।। 51।।

[ये रोते हुए कहते जा रहे थे]—हाय! जब फूल भी शरीर को छूकर प्राण ले सकते हैं [तब तो दैव चाहे जिस वस्तु से किसी को भी मार सकता है।।44।। या संभवतः कोमल वस्तु को मारने के लिये दैव कोमल वस्तु का ही प्रयोग करता हो, क्योंकि मैंने पहले ही देख लिया है कि नलिनी को नष्ट करने के लिये पाला ही बहुत होता है।।45।। और यदि इस माला में ही प्राण हरने की शक्ति है, तो मैं भी इसे छाती पर रखे लेता हूँ, पर यह मुझे क्यों नहीं मार डालती है? यह ईश्वर की इच्छा ही तो है, कहीं विष भी अमृत हो जाता है और कहीं अमृत भी विष हो जाता है।।46।। या यह मेरा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि विधाता ने इस माला को ऐसी बिजली बनाकर गिराया है, जिसने पेड़ को तो छोड़ दिया, पर उसके साथ लिपटी हुई लता को जला दिया।।47।। हे इन्दुमती! मैंने बहुत अपराध किए, पर तुमने कभी मेरा तिरस्कार नहीं किया फिर आज एकाएक बिना अपराध के ही तुम मुझे बात करने के योग्य भी क्यों नहीं समझ रही हो।।48।। हे मधुर हँसी हँसनेवाली! तुमने सचमुच यह समझा है कि मैं तुमसे झूठा प्रेम करता हूँ; इसीलिये तो मुझसे बिना पूछे तुम सदा के लिये परलोक को चल दी।।49।। मेरे ये नीच प्राण जब प्रिया के साथ-साथ एक बार चले गए थे, तब ये लौट क्यों आए? जब इनकी करनी ही ऐसी है तब ये दुःख भोगें। मैं क्या कर सकता हूँ।।50।। अभीं तुम्हारे मुँह पर से सम्भोग की थकावट के पसीने की बूँदें भी नहीं सूखीं और तुम चल बसीं। धिक्कार है मनुष्य की इस नश्वरता को।।51।। मैंने कभी मन से भी तुम्हारी बुराई नहीं की, फिर तुम मुझे क्यों छोड़े जा रही हो। [सत्य पूछो तो] मैं पृथ्वी का पति तो नाम भर को हूँ; मेरा सच्चा प्रेम तो केवल तुमसे ही है।।52।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम्।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः।।52।।
कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान्।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशङ्कि मे मनः।।53।।
तदपोहितुमर्हसि प्रिये प्रतिबोधेन विषादमाशु मे।
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः।।54।।
इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्।।55।।
शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम्।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः।।56।।
नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम्।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम्।।57।।
इयमप्रतिबोधशायिनीं रशना त्वां प्रथमा रहःसखी।
गतिविभ्रमसादनीरवा न शुचा नानुमृतेव लक्ष्यते।।58।।
कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः।।59।।

हे सुन्दर जाँघोंवाली! फूलों से गुँथी और भौंरों के समान काली तुम्हारी लटें जब वायु से हिलती हैं, तब मेरे मन में यही आशा होने लगती है कि तुम अवश्य जी उठोगी।।53।। इसलिये हे प्रिये! जैसे रात में चमकनेवाली बूटियाँ अपने प्रकाश से हिमालय की अँधेरी गुफा में भी चाँदनी कर देती हैं, वैसे ही तुम भी फिर से जागकर मेरा दुःख मिटाओ।।54।। मौन भौरों से भरे हुए और रात में मुँदे अकेले कमल जैसा लगनेवाला तुम्हारा बिखरी अलकों से ढका मौन मुख देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।।55।। देखो चन्द्रमा की रात्रि फिर मिल जाती है, चकवे की चकवी भी प्रातः मिल ही जाती है, इसलिये उन्हें बिछोह का दुःख थोड़ी ही देर तक रहता है, पर तुम तो सदा के लिये चली जा रही हो, फिर बताओ मैं विरह की आग में जलकर क्यों न भस्म हो जाऊँ।।56।। कोमल पल्लवों का बिछौना भी जिसके शरीर में चुभता था, हे सुन्दर जंघावाली! बताओ वही शरीर चिता पर कैसे चढ़ सकेगा।।57।। क्या तुम नहीं देख रही हो कि तुम्हारी हाव-भरी चाल के बन्द हो जाने से तुम्हारी एकान्त सखी यह मेखला भी तुम्हें सदा के लिये सोती देखकर तुम्हारे शोक में मरी सी दिखाई दे रही है।।58।। तुम्हारी मीठी बोली कोयलों ने ले-ली, तुम्हारा धीरे-धीरे चलना कलहंसिनियों ने लिया, तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों को मिल गई और तुम्हारा चुलबुलापन वायु से हिलती हुई लताओं में पहुँच गया है।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः।। 60।।
मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ।
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम्।। 61।
कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति।
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम्।। 62।।
स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम्।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे।। 63।।
तव निःश्वासितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते।। 64।।
सदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः।। 65।।
धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे।। 66।।

अपने स्वर्ग जाने की उतावली में यद्यपि तुमने मुझे बहलाने के लिये अपने गुण यहीं छोड़ दिए हैं, पर तुम्हारे बिछोह से तो मैं इतना अधीर हो गया हूँ कि इन सबसे मेरे हृदय को किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं मिल रहा है।।60।। प्रिये! तुमने उस आम और प्रियंगुलता का विवाह करना पक्का किया था। इन दोनों का विवाह किए बिना तुम्हारा जाना ठीक नहीं।।61।। देखो! जिस अशोक को तुमने अपने चरणों की ठोकर लगाई थी, वह जब आगे चलकर फूलेगा, तब तुम्हारे केशों को सजानेवाले उनके फूलों को मैं जलदान की अञ्जलि में कैसे ले सकूँगा।।62।। हे सुन्दरी! तुम्हारे झुनझुनाते बिछुओंवाले चरणों की ठोकर किसी को नहीं मिलती, पर तुमने बड़ी कृपा करके उस अशोक को ठोकर लगाई थी। अब उन तुम्हारे चरणों की कृपा को स्मरण करके ही यह अशोक वृक्ष फूलों के आँसू बरसाकर तुम्हारे लिए रो रहा है।।63।। हे मधुरभाषिणी! अपने श्वास के समान सुगन्ध वाले मौलसिरी के फूलों की जो सुन्दर माला तुम मेरे साथ गूँथ रही थीं, उसे अधगुँथी ही छोड़कर क्यों सो रही हो।।64।। तुम्हारे सुख-दुःख की साथिन ये सखियाँ खड़ी हैं, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान प्रसन्न मुखवाला तुम्हारा पुत्र भी यही है और तुम्हारा यह अनन्य प्रेमी मैं भी तुम्हारे पास हूँ, फिर हम लोगों को छोड़कर चले जाने की जो तुमने ठान ली है, तुम्हारी बड़ी कठोरता है।।65।। आज मेरा धीरज छूट गया, आनन्द जाता रहा, गाना-बजाना दूर चला गया, ऋतुएँ फीकी पड़ गईं, पहनना-ओढ़ना बेकाम हो गया और शय्या भी सूनी हो गई।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।। 67।।
मदिराक्षि मदाननार्पितं मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे।
अनुपास्यसि वाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम्।। 68।।
विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम्।।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः।। 69।।
विलपन्निति कोशलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान्।। 70।।
अथ तस्य कथंचिदङ्कतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।
विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे।। 71।।
प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात्।
न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया।। 72।।
अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम्।
विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः।। 73।।
स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु।। 74।।

तुम्हीं मेरी स्त्री थी, सम्मति देनेवाली मित्र थी, एकान्त की सखी थी और गान-विद्या आदि कलाओं के ललित में शिष्या थी। तुम्हीं बताओ तुम्हें मुझसे छीनकर निर्दयी विधाता ने मेरा क्या नहीं छीन लिया।।67।। हे मदभरे नयनोंवाली! तुमने मेरे मुँह से छूटे हुए स्वादिष्ट आसव को पीया है, अब तुम आँसुओं के जल से मिली हुई गँदली जलाञ्जलि को परलोक में कैसे पी सकोगी।।68।। इतना ऐश्वर्य होने पर भी तुम्हारे बिना अज का सारा सुख मिट्टी हो गया है; क्योंकि मुझे और किसी वस्तु से तो प्रेम है नहीं, मेरे तो सब सुखों का केन्द्र तुम्हीं थीं।।69।। जब कौशलनरेश अज अपनी प्रिया के लिये इस प्रकार शोक करके रो रहे थे उस समय उन्हें देखकर वृक्ष भी मानो अपनी शाखाओं से रस बहाकर रोने लगे।।70।। कुटुम्बियों ने अज की गोदी से ज्यों-त्यों करके इन्दुमती का शरीर हटाया और उसी पुष्पमाला से उसका शृङ्गार करके अगर और चन्दन की लकड़ियों से उसका दाह-संस्कार किया।।71।। अपनी पत्नी के वियोग में राजा अज इतने व्याकुल हो गए कि उन्हें जीने की इच्छा जाती रही; किन्तु वे इन्दुमती के साथ इसलिये चिता पर नहीं चढ़े कि कहीं लोग यह न कहने लगें कि राजा अज ने विद्वान् होकर भी अपनी स्त्री के पीछे प्राण दे दिए।।72।। जिस इन्दुमती के केवल गुण भर बचे रह गए थे, उस प्रिया के सब क्रिया-कर्म शास्त्र जाननेवाले अज ने दस दिन बीत जाने पर उसी उपवन में बड़े धूम-धाम से पूरे किए।।73।। इन्दुमती के वियोग में अज ऐसे उदास लगने लगे जैसे रात बीत जाने पर चन्द्रमा मन्द पड़ जाता है। जब वे नगर में घुसे तब उन्हें देखकर नगर भर की स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं, मानो अज का शोक इनकी आँखों से बह निकला हो।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रणिधानाद् गुरुराश्रमस्थितः।
अभिषङ्गजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत्।। 75।।
असमाप्तविधिर्यतो मुनिस्तव विद्वानपि तापकारणम्।
न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम्।। 76।।
मयि तस्य सुवृत्त वर्तते लघुसंदेशपदा सरस्वती।
शृणु विश्रुतसत्त्वसार तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि।। 77।।
पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति।। 78।।
चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिन्दोः परिशङ्कितः पुरा।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम्।। 79।।
स तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम्।
अशपद्भव मानुषीति तां शमवेलाप्रलयोर्मिणा भुवि।। 80।।
भगवन्परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवानासुरपुष्पदर्शनात्।। 81।।
क्रथकैशिकवंशसंभवा तव भूत्वा महिषी चिराय सा।
उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम्।। 82।।

उन दिनों वशिष्ठजी यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने आश्रम में ही योगबल से राजा के शोक का कारण जान लिया और एक शिष्य से अज के पास सन्देश भेजा। शिष्य ने अज से आकर कहा–।।75।। 'वशिष्ठ मुनि का यज्ञ समाप्त नहीं हुआ है; इसलिये आपके दुःख को जानते हुए भी न तो वे आ ही सके और न आपको इस शोक में धीरज ही बँधा सके।।76।। हे सच्चरित्र राजा! मैं उनका एक छोटा-सा सन्देश लाया हूँ, उसे आप धीरज रखकर सुनिए और समझिए।।77।। वे अपने ज्ञान के नेत्रों से तीनों लोकों की बीती हुई, होती हुई और होनेवाली सभी बातें जानते हैं।।78।। एक बार तृणबिन्दु नामक ऋषि तप कर रहे थे। उनकी तपस्या से डरकर इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिये हरिणी नाम की अप्सरा भेजी।।79।। जैसे प्रलयकाल की लहर समुद्र तट को ढहा देती है, वैसे ही ऋषि का तप डिगाने के लिये वह अप्सरा भी वहाँ पहुँची। अप्सरा को देखते ही मुनि ने क्रोधित होकर शाप दिया कि जा तू संसार में मनुष्य की स्त्री हो।।80।। शाप सुनते ही अप्सरा घबरा उठी। वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर बोली–हे भगवन्! मैंने दूसरों के कहने से यह काम किया है, मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं है, मुझे क्षमा कीजिये। इस पर ऋषि ने कहा–जब तक तुम्हें स्वर्गीय पुष्प नहीं दिखाई पड़ेंगे, तब तक तुम्हें पृथ्वी पर रहना ही पड़ेगा।।81।। वही अप्सरा क्रथकैशिक (विदर्भ) वंश में जन्म लेकर तुम्हारी रानी हुई और इतने दिनों बाद जैसे ही उसे स्वर्गीय पुष्प दिखाई पड़े, वैसे ही वह शाप-मुक्त होकर, शरीर छोड़कर चली गई।।82।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदलं तदपायचिन्तया विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता।
वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः।।83।।

उदये मदवाच्यमुज्झता श्रुतमाविष्कृतमात्मवत्त्वया।
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम्।।84।।

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्।।85।।

अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।
स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते।।86।।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।।87।।

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम्।।88।।

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम्।।89।।

इसीलिए अब आप उसकी मृत्यु का शोक न कीजिए, क्योंकि जो जन्म लेता है वह मरता ही है। इसलिये सब शोक छोड़कर सावधान होकर आप पृथ्वी का पालन कीजिए, क्योंकि राजाओं की सच्ची सहधर्मचारिणी तो पृथ्वी है।।83।। ऐश्वर्य पाकर राजा लोग मतवाले हो जाते हैं, किन्तु आप सुख के दिनों में भी इस अपयश से बचे रहे और अभिमान छोड़कर आपने अपने आत्मज्ञान का परिचय दिया। वैसे ही इस दुःख के समय में भी धीरज धरकर आप फिर उसी अध्यात्मज्ञान का प्रकाश कीजिए।।84।। रोने की तो बात ही क्या, यदि आप मर भी जायँ तब भी इन्दुमती आपको नहीं मिल सकती, क्योंकि मरने पर सब प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार अलग-अलग मार्ग से जाते हैं।।85।। अब आप सब शोक छोड़कर पिण्डदान आदि करके अपनी पत्नी का परलोक सुधारिए, क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि जब कुटुम्बी बहुत रोते हैं तब उससे प्रेतात्मा को बड़ा कष्ट होता है।।86।। देखिए, जिसने देह धारण की है उसका मरना तो स्वाभाविक है। विद्वानों का तो यह कहना है कि वास्तव में जीना ही बड़ा भारी विकार है। इसलिये प्राणी जितने क्षण जी जाये, उतने से ही उसे सन्तोष करना चाहिए।।87।। प्रियजन की मृत्यु को मूर्ख लोग वैसा ही कष्टकारक मानते हैं जैसे छाती में कील गड़ गई हो, पर विद्वान् लोग यह समझते हैं कि जो मर गया वह सब झंझटों से छूट गया। उनकी समझ में मृत्यु से वैसा ही सुख मिलता है, जैसे हृदय में गड़ी हुई कील निकालने से।।88।। आप ही बताइए कि जब शरीर और आत्मा भी आपस में बिछुड़ने वाले माने गए हैं, तब पुत्र, स्त्री आदि बाहरी सम्बन्धियों के बिछोह से विद्वानों को क्यों दुःख हो।।89।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि।
द्रुमसानुम्तां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः।। 90।।
स तथेति विनेतुरुदारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम्।
तदलब्धपदं हृदि शोकघने प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः। 91।।
तेनाष्टौ परिगमिता समाः कथंचिद्बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः।
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च।। 92।।
तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशंकुः प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद।
प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने।। 93।।
सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम्।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव।। 94।।
तीर्थेतोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः।
पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु।। 95।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अजविलापो नाम अष्टमः सर्गः।।

फिर आप तो जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप साधारण लोगों के समान शोक मत कीजिए। यदि पर्वत भी वृक्ष की भाँति आँधी से हिल उठेगा तो उन दोनों में अन्तर ही क्या रहा।।90।। विद्वान् शिक्षक गुरु वशिष्ठजी का उपदेश राजा ने स्वीकार किया और उनके शिष्य को इस प्रकार बिदा किया, मानो अपने शोक भरे हृदय में स्थान न दे सकने से उनका उपदेश ही लौटा दिया हो।।91।। प्रिय, सत्यभाषी अज ने अपने पुत्र के बचपन का ध्यान करके और प्रिया के चित्र को देख-देखकर तथा स्वप्न में प्रिया से क्षण भर के समागम का आनन्द लेकर किसी प्रकार आठ वर्ष काट दिए।।92।। कहा जाता है कि जैसे वट की जटाएँ भवन की तली को छेदकर नीचे घुस जाती है, वैसे ही शोक की बर्छी ने राजा के हृदय को बलपूर्वक आर-पार बेध दिया था; पर अपनी प्रिया के पीछे प्राण देने को वे इतने उतावले थे कि उन्होंने प्राण हर लेनेवाली और वैद्यों से अच्छी न होने वाली उस शोक की बर्छी को भी सहायक ही समझा।।93।। तब सुशिक्षित कवचधारी कुमार दशरथ को शास्त्र के अनुसार प्रजा का पालन करने का उपदेश देकर वे रोगी शरीर से छुटकारा पाने के लिये अनशन करने लगे।।94।। थोड़े दिनों में ही गंगा और सरयू के संगम पर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और तत्काल देवता बनकर पहले शरीर से भी अधिक सुन्दर शरीरवाली भार्या के साथ नन्दनवन के विलास-भवनों में विहार करने लगे।।95।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'अज-विलाप' नाम का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। नवमः सर्गः ।।

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः।
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः।।1।।
अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम्।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः।।2।।
उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृतकर्मणाम्।
बलनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम्।।3।।
जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः।
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे।।4।।
दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यदजेन ततः परम्।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीनमहीनपराक्रमम्।।5।।
समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा।।6।।

नवाँ सर्ग

संयम से अपनी इन्द्रियों को जीत लेनेवाले योगियों में और प्रजा का पालन करनेवाले राजाओं में सर्वश्रेष्ठ दशरथजी ने अपने पिता के बाद उत्तर कोशल का राज्य बड़ी योग्यता से सँभाला।।1।। क्रौञ्च-पर्वत में छिद्र बना देनेवाले कार्त्तिकेय के समान वे बलवान् थे। उन्होंने अपने पुरुखों से पाई हुई राजधानी और मण्डलों का ऐसे अच्छे ढंग से पालन किया कि सारी प्रजा उन्हें पहले के सभी राजाओं से बढ़कर मानने लगी।।2।। विद्वानों का कहना है कि संसार में दो ही ऐसे राजा हुए हैं, जिन्होंने कर्त्तव्य-पालन करनेवाले लोगों को उनके परिश्रम का ठीक-ठीक पुरस्कार दिया है। उनमें से एक तो इन्द्र हैं जिन्होंने समय पर वर्षा करके किसानों का परिश्रम सफल किया और दूसरे हैं मनुवंशी दशरथ, जिन्होंने सुकर्मियों को धन देकर उनका पालन-पोषण किया।।3।। दशरथजी देवताओं के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था। राज्य को हाथ में लेते ही उनका देश धन-धान्य से भर गया, रोग भी उनके राज्य की सीमा में पैर न रखे सके, फिर शत्रुओं के आक्रमण की तो संभावना ही कहाँ थी।।4।। जैसे दसों दिशाओं के जीतनेवाले रघु ने और उनके बाद उनके पुत्र अज ने पृथ्वी की शोभा बढ़ाई थी, उसी प्रकार शक्तिशाली महापराक्रमी दशरथ को पाकर पृथ्वी की शोभा न बढ़ी हो यह बात नहीं है।।5।। जैसे यम सबको एक समान समझते हैं, वैसे ही वे भी सबसे एक-सा व्यवहार करते थे, जैसे कुबेर धन बरसाते हैं, वैसे ही वे भी धन बाँटते थे, जैसे वरुण दुष्टों को दंड देते हैं वैसे ही वे भी दुष्टों को दंड देते थे, और जैसे सूर्य का बड़ा तेजस्वी है वैसे वे भी बहुत तेजस्वी थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्।।7।।
न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहासकथास्वपि।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता।।8।।
उदयमस्तमयं च रघूद्वहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः।
स हि निदेशमलङ्घयतामभूत्सुहृदयोहृदयः प्रतिगर्जताम्।।9।।
अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः।
जयमघोषयदस्य तु केवलं गजवती जवतीव्रहया चमूः।।10।।
अवनिमेकरथेन वरूथिना जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः।
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवा घनरवा नरवाहनसंपदः।।11।।
शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरंदरः।
सशरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः।।12।।
चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन्।
नृपतयः शतशो मरुतो यथा शतमखं तमखण्डितपौरुषम्।।13।।
निववृते स महार्णवरोधसः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन्।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमां पुरीम्।।14।।

सांसारिक ऐश्वर्य को बटोरने में ऐसे लगे हुए थे कि आखेट का व्यसन, जूए का खेल, चन्द्रमा की परछाईं पड़ी हुई मदिरा और नवयौवना पत्नी, कोई भी उन्हें न लुभा सका।।7।। वे इतने मनस्वी थे कि इन्द्र तक के आगे वे कभी नहीं गिड़गिड़ाए, हँसी में भी उन्होंने झूठ नहीं बोला और क्रोधित होने की तो बात ही दूर है, उन्होंने अपने शत्रु को भी कोई कठोर शब्द नहीं कहा।।8।। उन रघुकुल में श्रेष्ठ दशरथ के हाथों बहुत से राजा बने और बहुत से बिगड़े; क्योंकि जो उनका कहा मान लेते थे, उन्हें तो वे दया करके छोड़ देते थे, पर जो ऐंठकर उनसे टक्कर लेने आगे आते थे उन्हें वे मिटाकर ही छोड़ते थे।।9।। एक धनुष लेकर और अकेले एक रथ पर चढ़कर ही उन्होंने समुद्र तक फैली हुई सारी पृथ्वी जीत थी। वेग से चलनेवाले हाथी-घोड़ों की उनकी सेना तो केवल जय-जयकार भर करती थी।।10।। जिस समय अकेले सुरक्षित रथ पर चढ़े कुबेर के समान सम्पत्तिशाली धनुषधारी दशरथ जी पृथ्वी जीतते हुए चलते थे, उस समय बादल के समान गरजता हुआ समुद्र उनकी विजय-दुंदुभी बजाता था।।11।। जैसे इन्द्र ने अपने सौ नोकोंवाले वज्र से पर्वत के पंख काट दिये थे, वैसे ही ही नये कमल के समान सुन्दर मुखवाले दशरथ जी ने अपने बाण बरसानेवाले धनुष से शत्रुओं को मारकर बिछा दिया।।12।। जैसे देवता लोग इन्द्र के चरण छूते हैं, वैसे ही सैकड़ों राजाओं ने पराक्रमी दशरथ के चरणों पर अपने वे मुकुट वाले सिर रख दिए जिनके मणि दशरथजी के पैर के नखों की ललाई से दमक उठते थे।।13।। उन्होंने जिन-जिन देशों के राजाओं को मार डाला था, उनकी रानियाँ अपने पुत्रों को लेकर राजा दशरथ रथ के आगे आईं और उन देशों के मंत्रियों ने उन राजपुत्रों को दशरथ के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपगतोऽपि च मण्डलनाभितामनुदितान्यसितातपवारणः ।
श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ।। 15 ।।

तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मभवं च पतिव्रता ।
नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाधवमर्थिषु ।। 16 ।।

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागरमापगाः ।।
मगधकोशलकेकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम् ।। 17 ।।

प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ।
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ।। 18 ।।

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ।
स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधूतभयाः शरैः ।। 19 ।

क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः ।
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसा तमसासरयूतटाः ।। 20 ।।

हाथ जोड़कर खड़ा कर दिया। उन खुले केशवाली शत्रुओं की रानियों के साथ दशरथजी ने बड़ी दया का व्यवहार किया और उस महासमुद्र के तट से वे अपनी उस अयोध्या राजधानी को लौट आए जो कुबेर की राजधानी अलका से किसी प्रकार कम नहीं थी।।14।। चारों ओर के राजाओं का मण्डल उनके हाथ में आ गया, जिससे वे अग्नि और चन्द्रमा के समान तेजस्वी लगने लगे। उनका प्रताप इतना बढ़ गया कि उनके आगे कोई भी दूसरा राजा श्वेतछत्र नहीं लगा सकता था। चक्रवर्ती हो जाने पर भी आलस्य को वे अपने पास नहीं फटकने देते थे; क्योंकि वे जानते थे कि जहाँ एक भी दोष आया कि लक्ष्मी हमें छोड़कर भाग जाएँगी।।15।। और फिर भगवान् विष्णु और दशरथ को छोड़कर और दूसरा राजा ही कौन-सा था, जिसके यहाँ हाथ में कमल धारण करनेवाली पतिव्रता लक्ष्मी स्वयं जाकर रहतीं।।16।। जैसे पर्वतों से निकलनेवाली नदियाँ समुद्र को पा लेती हैं वैसे ही कोशल, मगध और केकय देश के राजाओं की कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी नाम की कन्याओं ने शत्रुओं पर बाण बरसानेवाले दशरथजी को पति के रूप में पा लिया।17।। शत्रुओं का नाश करनेवाले दशरथजी अपनी तीनों रानियों के साथ ऐसे जान पड़ते थे, मानो पृथ्वी पर राज्य करने के लिये स्वयं इन्द्र ही [प्रभाव, उत्साह और मंत्र नाम की] अपनी तीनों शक्तियों के साथ अवतार लेकर चले आये हों।।18।। कहा जाता है कि महारथी दशरथ ने युद्ध में इन्द्र की सहायता करके और अपने बाणों से उनके शत्रुओं का नाश करके देवताओं की स्त्रियों का सब डर दूर कर दिया और वे सब दशरथजी के बाहुबल के गीत गाने लगीं।।19।। उन्होंने अपने बाहुबल से चारों ओर का धन लाकर इकट्ठा किया था और उनमें नाम को भी तामसी भाव नहीं था। उन्हीं राजा दशरथ ने अपना मुकुट उतारकर अश्वमेधयज्ञ करते समय तमसा और सरयू के किनारे सोने के यज्ञ-स्तम्भ खड़े कर दिए।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृङ्गपरिग्रहाम्।
अधिवसँस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः।। 21।।

अवभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः।
नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नमुचेररये शिरः।। 22।।

असकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता।
दिनकराभिमुखा रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम्।। 23।।

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम्।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम्।। 24।।

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत्।। 25।।

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।। 26।।

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः।
अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः।। 27।।

जब वे मृगछाला पहनकर, हाथ में दण्ड लेकर, कुशा की मेखला बाँधकर चुपचाप हिरण की सींग लिए यज्ञ की दीक्षा लेकर बैठे, उस समय भगवान् अष्टमूर्ति महादेव उनके शरीर में प्रविष्ट गए जिससे उनकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई।।21।। यज्ञ समाप्त हो चुकने पर जब वे स्नान करके पवित्र हुए, तब देवताओं के साथ बैठने योग्य संयमी राजा दशरथ ने केवल नमुचि राक्षस के शत्रु तथा जल बरसानेवाले एक इन्द्र के आगे ही अपना ऊँचा मस्तक झुकाया।।22।। अकेले रथ पर चढ़कर युद्ध करनेवाले पराक्रमी, धनुर्द्धर और युद्ध में इन्द्र से भी आगे चलनेवाले दशरथ ने कई बार सूर्य पर छाई हुई युद्ध की धूल राक्षसों के रक्त से सींच-सींचकर दबाई।।23।। यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र के समान पराक्रमी उन एकच्छत्र राजा का अभिनंदन करने के लिए वसंत-ऋतु भी नये-नये फूलों की भेंट लेकर वहाँ आ पहुँची।।24।। सूर्य भी उत्तर की ओर घूम जाना चाहते थे; इसलिए उनके सारथी अरुण ने घोड़ों की रास उधर ही मोड़ दी। सर्दी दूर करके, प्रातःकाल पाला हटाकर उसे और भी अधिक चमकाते हुए सूर्य ने मलय पर्वत से बिदा ली।।25।। पहले फूल खिले, फिर नई कोंपले फूटीं, फिर भौंरे गूँजने लगे और कोयल की कूक भी सुनाई पड़ने लगी। इस क्रम से धीरे-धीरे वनस्थली में वसन्त ने पैर बढ़ाये।।26।। राजा दशरथ की चतुर नीति से उनके पास बहुत धन इकट्ठा हो गया था और उस धन से वे अपनी प्रजा का बहुत उपकार भी करते थे। इसलिये जैसे उनकी लक्ष्मी के आगे बहुत-से याचक हाथ फैलाया करते थे, वैसे ही वसंत की शोभा से लदी हुई सरोवर की कमलिनी के आसपास भौंरे और हंस भी मँडराने लगे।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम्।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः।। 28।।

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः।। 29।।

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपंक्तिभिः।। 30।।

उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया।। 31।।

व्रणगुरुप्रमदाधरदुसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलम्।
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम्।। 32।।

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि।। 33।।

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु।। 34।।

उन दिनों वसंत में फूले हुए अशोक के फूलों को देखकर ही कामोद्दीपन नहीं होता था, वरन् कामियों को मतवाले बनानेवाले जो कोमल कोंपलों के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिए थे, उन्हें देखकर भी मन हाथ से निकल जाता था।।28।। वन में खड़े हुए कुरबक के पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो वसंत में वनश्री के शरीर पर बेलबूटे बनाकर उसका शृङ्गार किया गया हो। उन पेड़ों से इतना मधु बह रहा था कि भौंरे मस्त होकर उन्हीं पर गुनागुना रहे थे।।29।। बबूल के जो वृक्ष सुन्दरी स्त्रियों के मुख की मदिरा के छींटे से फूल उठे थे और जिनमें उन्हीं स्त्रियों के समान गुण भी भरे थे, उनको झुण्ड में उड़ते हुए मधु के लोभी भौंरों ने बड़ा झकझोरा।।30।। वसंत के आने से पलास में फूल निकली हुई कलियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो काम के आवेश में लाज छोड़कर किसी कामिनी ने अपने प्रियतम के शरीर पर अनेक नख-क्षत कर डाले हों।।31।। अभी वह ठंड भली प्रकार दूर भी नहीं हुई थी जिसमें पतियों के दाँतों से घायल हुए स्त्रियों के होठ पीड़ा करते हैं और स्त्रियाँ अपनी कमर की करधनी भी ठण्डी होने के कारण उतार डालती हैं। पर हाँ, सूर्य ने कुछ जाड़ा कम अवश्य कर दिया था।।32।। नये बौरे हुए आम के वृक्षों की डालियाँ मलय के वायु से झूम उठीं मानो उन्होंने अभिनय सीखना प्रारंभ कर दिया हो। उन्हें देखकर रागद्वेष को जीतने वाले योगियों का मन भी मचल उठा।।33।। जिस समय मनहर सुगन्धवाली बन की लताओं पर बैठकर कोयल ने कूक सुनाई, तो ऐसा जान पड़ा मानो कहीं कोई मुग्धा नायिका ही बोल उठी हो।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। 35।।
ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्।। 36।।
शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहंगमाः।। 37।।
उपययौ तनुतां मखुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयानितया रजनीवधूः।। 38।।
अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः।
कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम्।। 39।।
हुतहुताशनदीप्तिवनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम्।। 40।।
अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः।
नखलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव। 41।।

वन के किनारे बढ़ी हुई लताएँ ऐसी सजीव-सी जान पड़ती थीं मानो कानों को सुख देनेवाली भौंरों की गुञ्जार ही उनके गीत हों, खिले हुए कोमल फूल ही उनकी हँसी के दाँत हों और वायु से हिली हुई शाखाओं वाले हाथों से वे अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा रही हों।।35।। चितवन आदि मधुर हाव-भाव कराने को उकसानेवाले और बकुल को भी अपनी गन्ध से हरानेवाले कामदेव के साथी मद्य को स्त्रियों ने अपने पति के प्रेम में बिना बाधा दिए ही पी लिया।।36।। लोगों के घरों के भीतर बनी हुई बावलियों में जो कमल खिले हुए थे और वहाँ मधुर शब्द करते हुए जो जल-पक्षी तैर रहे थे, उनसे वे बावलियाँ ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं, मानो उनमें मुसकराती हुई सुन्दर मुखवाली और ढीली होने के कारण बजती हुई करधनी वाली स्त्रियाँ विहार कर रही हों।।37।। जैसे अपने प्रियतम से समागम न होने के कारण खंडिता नायिका सूखती जाती है, वैसे ही रात्रि-रूपी नायिका भी वसन्त के आने से छोटी होती चली गई और उसका चन्द्रमा वाला मुख भी पीला पड़ता गया।।38।। पाला दूर हो जाने से चन्द्रमा निर्मल हो गया। संभोग की थकावट को दूर करनेवाली उसकी ठंडी किरणों से कामदेव के फूलों के धनुष को मानो और भी अधिक बल मिल गया हो।।39।। हवन की अग्नि के समान चमकते हुए कनैर के फूल वनलक्ष्मी के कानों के कर्णफूल जैसे जान पड़ते थे। अपने प्रियतमों के हाथों से जूड़ों में लगाये गये वे सुन्दर पंखुड़ी और परागवाले फूल स्त्रियों के केशों में बड़े सुन्दर लग रहे थे।।40।। तिलक के वृक्ष ने भी वनस्थली की कम शोभा नहीं बढ़ाई। जैसे किसी युवती के शृंगार के लिये उसका मुँह सजाता जाता है वैसे ही उस तिलकवृक्ष के फूलों पर मँडराते हुए काजल की बुंदियों के समान सुन्दर भौंरे ऐसे जान पड़ते थे मानो वनस्थलियों का मुख भी सजा दिया गया हो।।41।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः।
कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी।।42।।
अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवांकुरैः।
परभृताविरुतैश्च बिलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः।।43।।
उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी।
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः।।44।।
ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः।।45।।
अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया।।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः।।46।।
त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः।।47।।
अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः।
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं स मधुमन्मधुमन्मथसंनिभः।।48।।

वहाँ वृक्षों की सुन्दरी नायिका नवमल्लिका लता भी थी। वह अपने मकरन्द-रूपी मद्य की गन्ध से भरी लाल-लाल पत्तों के होठों पर फूलों की मुसकान लेकर देखने वालों को भी पागल बना रही थी।।42।। प्रातःकाल की लालिमा से भी अधिक लाल वस्त्रों ने, कान पर रखे हुए जौ के अंकुरों ने और कोयल की कूकों की सेना लेकर चलनेवाले कामदेव ने ऐसा जाल बिछाया कि सभी विलासी पुरुष, युवती स्त्रियों के प्रेम में सुध-बुध खो बैठे।।43।। उजले पराग से भरे तिलक के फूलों के गुच्छे बढ़ चुके थे। उन पर मँडराते हुए भौंरों के झुण्ड के कारण वे ऐसे सुन्दर लगने लगे जैसे किसी स्त्री ने अपने सिर पर मोतियों की जाली पहन ली हो।।44।। उपवन के फूलों का पराग जब वायु ने उड़ाया, तो भौंरों के झुण्ड भी उनके पीछे-पीछे उड़ चले। वह उड़ता हुआ पराग ऐसा जान पड़ता था मानो धनुषधारी कामदेव का झण्डा हो या बसंतश्री के मुख पर लगाने का शृङ्गार-चूर्ण हो।।45।। जो स्त्रियाँ वसन्तोत्सव में नये झूलों पर सावधान होकर झूल रही थीं, वे भी अपने हाथ से पकड़ी हुई रस्सी को इसलिये ढीला छोड़ देती थीं कि हाथ छूटने पर हमारे प्रियतम हमें थाम ही लेंगे और इस प्रकार हम उनके गले से भी लग जायँगी।।46।। उन दिनों कोयल की कूक मानो कामदेव का यह आदेश सुना रही थी कि हे स्त्रियो! रूठना छोड़ दो, लड़ाई-झगड़ा छोड़ो, बीता हुआ यौवन फिर हाथ नहीं आता। यह सुन-सुनकर सभी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ फिर रमण करने लगीं।।47।। विष्णु के समान पराक्रमी, वसंत ऋतु के समान प्रसन्न और कामदेव के समान सुन्दर दशरथजी ने भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ बसंत ऋतु का आनन्द लिया और फिर उनके मन में आखेट करने की इच्छा होने लगी।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम्।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ।।49।।
मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत्।।50।।
ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः।
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु।।51।
तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोशलम्।।52।।
श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः।
स्थिरतुरंगमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम्।।53।।
अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गततडिद्गुणसंयुतम्।
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोषितकेसरी।।54।।
तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैर्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्।।55।।

आखेट से बड़े लाभ भी होते हैं। पहली बात तो यह है कि उसे चलते हुए लक्ष्य को बेधने का अभ्यास हो जाता है। फिर उससे जीवों के भय और क्रोध आदि भावों की पहचान हो जाती है और परिश्रम करने से शरीर भी भली प्रकार सुगठित हो जाता है। इसलिये मंत्रियों से सम्मति लेकर वे आखेट के लिये निकल पड़े।।49।। जब शिकारी का वेष बनाकर, अपने ऊँचे कन्धे पर धनुष टाँगे, तेजस्वी राजा दशरथ घोड़े पर चढ़कर चले तब उनके घोड़ों की टापों से इतनी धूल उठी कि आकाश में चँदोवा सा तन गया।।50।। उनके केशों में वनमाला गुँथी हुई थी। वे वृक्ष के पत्तों के समान गहरे रंग का कवच पहने हुए थे और घोड़े के वेग से चलने के कारण उनके कानों के कुण्डल भी हिल रहे थे। इस वेष में चलते-चलते वे उस जंगल में जा पहुँचे, जहाँ रुरु जाति के हिरण बहुत घूमा करते हैं।।51।। कोमल लताओं का रूप धारण करके भौंरों की आँखों से वनदेवता भी उन सुन्दर नेत्रवाले और कोशल की प्रजा को सदा सुख पहुँचानेवाले राजा दशरथ को देखने के लिये वहाँ पहुँच गए।।52।। तब वे उस जंगल में पहुँचे जहाँ पहले से ही जाल और शिकारी कुत्ते लेकर उनके सेवक पहुँच चुके थे। वहाँ न तो अग्नि का भय था न चोरों का। वहाँ की पृथ्वी घोड़ों के लिये पक्की थी। वहाँ बहुत से सरोवर थे, जिनके चारों ओर बहुत से हिरण, पक्षी और नीलगायें गाएँ घूमा करती थीं।।53।। तब उस सुन्दर स्वस्थ राजा ने अपना वह चढ़ा हुआ धनुष उठाया जिसकी टंकार सुनकर सिंह भी गरज उठे। उस समय वे उस भादों के महीने के समान लग रहे थे जिसमें इन्द्रधनुष निकला हुआ हो और जिसमें सोने के रंग की पीली बिजली की डोरी बँधी हो।।54।। उन्होंने देखा कि आगे हरिणों का झुण्ड चला जा रहा है, जिसमें बहुत-सी हरिणियाँ भी हैं जो अपने उन छौनों के कारण रुकती चलती हैं, जो कुश चबाते-चबाते अपनी माँ के स्तनों से दूध पीने के लिये बीच-बीच में खड़े हो जाते हैं। इस झुण्ड के आगे-आगे एक गर्वीला काला हिरण भी चला जा रहा था।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपङ्क्ति।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैर्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः।। 56।।

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार।। 57।।

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः कर्णान्तमेत्य बिभिदे निविडोऽपि मुष्टिः।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरयत्सु नैत्रेः प्रौढप्रियाऩयनविभ्रमचेष्टितानि।। 58।।

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्यान्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्यमार्ग सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः।। 59।।

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीषद्विध्यन्तमुद्धतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा वृक्षेषु बिद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु।। 60।।

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री वनस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्खस्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्।। 61।।

राजा ने ज्यों ही अपने तीव्रगामी घोड़े पर चढ़कर और अपने तूणीर में से बाण निकालकर उनका पीछा किया कि वह झुण्ड तितर-बितर हो गया और उनकी घबराई हुई आँखों से भरा हुआ वह सारा जंगल ऐसा लगने लगा, मानो वायु ने नीले कमलों की पंखुड़ियाँ लाकर वहाँ बिखेर दी हों।।56।। इन्द्र के समान शक्तिशाली चतुर धनुषधारी राजा दशरथ ने देखा कि वे जिस हिरण को मारना चाहते थे, उसकी हिरणी बीच में आकर खड़ी हो गई। वे स्वयं भी प्रेमी थे। अपने हिरण के लिए हरिणी का यह प्रेम देखकर उनका हृदय भी दया से भर आया और उन्होंने कान तक खींचा हुआ भी अपना बाण उतार लिया।।57।। वे दूसरे हरिणों पर बाण चलाना चाहते थे और उन्होंने बाण की चुटकी कान तक खींच भी ली थी; पर जब उन्होंने उन हरिणों की डरी हुई आँखों को देखा, तो उन्हें अपनी युवती प्रियतमा के चंचल नेत्रों का स्मरण हो आया और उनके हाथ ढीले पड़ गए।।58।। उन्हें छोड़कर दशरथजी उधर घूम पड़े, जिधर आधे बचे हुए मोथ की घास के मुट्ठे स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े थे और पैर की गीली छापों की पाँत को देखकर जान पड़ता था कि तालाबों के कीचड़ से निकल-निकलकर जंगली सुअरों का झुण्ड उधर को भागा है।।59।। ज्यों ही उन्होंने घोड़े पर चढ़े हुए अपने शरीर को आगे झुकाकर उन सूअरों पर बाण चलाए, त्यों ही वे भी अपने कड़े बाल खड़े के राजा दशरथ पर झपट पड़े, किन्तु उन्होंने तत्काल ऐसे कसकर बाण मारे कि सूअरों को जान ही नहीं पड़ा कि वे उन पेड़ों में बाण के साथ कब चिपक गए जिनके सहारे वे खड़े थे।।60।। इतने में ही उन्होंने देखा कि एक जंगली भैंसा उनकी ओर झपटा चला आ रहा है। उन्होंने उसकी आँख में ऐसा बाण मारा कि वह भैंसे के शरीर में से इतनी फुर्ती से पार हो गया कि बाण के पंख में तनिक-सा भी रक्त नहीं लगा और विशेषता यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान्खङ्गाँश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।
शृङ्गं सदृप्तविनयाधिकृतः परेषामत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः।।62।।
व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान्।
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्धान।।63।।
निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाज्जिघांसुर्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामाससिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्वीर्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु।।64।।
तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान्।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं गतमिव मार्गणैरमँस्त।।65।।
चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी।
नृपतीनिव तान्वियोज्य सद्यः सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम्।।66।।
अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णेरतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः।।67।।

थी कि बाण तो देर से गिरा; किन्तु भैंसा पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ा।।61।। इतने में उन्हें बारहसिंहों का झुण्ड दिखाई दिया। राजा दशरथ ने अर्द्धचन्द्र बाणों से उनके सींग काटकर उनके सिर का बोझ हलका कर दिया। वे सिर उठाकर चलने वालों का दमन अवश्य करते थे; इसलिये उन्होंने ऐंठकर चलने के साधन सींगों को काट डाला। यद्यपि राजा को उनके प्राणों से कोई बैर नहीं था।।62।। जब सिंह अपनी गुफाओं में से निकलकर उनकी ओर झपटे, तब निर्भय राजा दशरथ ने इतनी शीघ्रता से उन पर बाण चलाए कि उन सिंहों के खुले हुए मुँह उनके बाणों के तूणीर बन गए और वे ऐसे जान पड़ने लगे, जैसे आँधी से उखड़े हुए फूल आसन के पेड़ की कलियाँ हों।।63।। झाड़ियों में लेटे हुए सिंहों को मारने के लिये पहले उन्होंने आँधी के समान भयंकर शब्द करनेवाली अपनी धनुष की डोरी से टंकार की, जिसे सुनते ही सिंह भड़क उठे। बात यह थी कि राजा दशरथ को उन अत्यन्त शक्तिशाली सिंहों की इस बात से चिढ़ हो रही थी कि वे जीवों के राजा क्यों कहलाते हैं।।64।। बस, उन्होंने हाथियों से बैर रखनेवाले उन सिंहों को मार डाला, जिनके नोकीले अगले पंजों में अब तक गज-मुक्ताएँ उलझी हुई थीं। इस प्रकार ककुत्स्थ-वंशी राजा दशरथ ने मानो अपने बाणों से उन हाथियों का ऋण चुका दिया जो युद्ध में उनकी सेना में काम आ रहे थे।।65।। चामर मृगों के चारों ओर अपना घोड़ा दौड़ाते हुए भाले की नोंकवाले बाण बरसाकर उन्होंने उन मृगों की चँवरवाली पूँछें काट डालीं। इससे उन्हें ऐसा सन्तोष हुआ मानो चँवरधारी राजाओं के चँवर ही उन्होंने छीन लिए हों।।66।। कभी-कभी उनके पास से सुन्दर चमकीली पूँछोंवाले मोर भी उड़ जाते थे। पर वे उन पर बाण नहीं चलाते थे; क्योंकि उन्हें देखकर दशरथजी को रंग-विरंगी मालाओं से गूँथे हुए और संभोग के कारण खुले हुए अपनी प्रिया के केशों का स्मरण हो जाता था।।67।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य कर्कशविहारसंभवं स्वेदमाननविलग्नजालकम्।
आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः।।68।।
इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवावलम्बितधुरं धराधिपम्।
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृगया जहार चतुरेव कामिनी।।69।।
स ललितकुसुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम्।
नरपतिरतिवाहयांबभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम्।।70।।
उषसि स गजयूथकर्णतालैः पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः।
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि।।71।।
अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण।।72।।
कुम्भपूरणभवः पटुरुच्चैरुच्चचारं निनदोऽम्भसि तस्याः।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज।।73।।
नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः।।74।।
हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णस्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि।।75।।

कठिन परिश्रम से उनके मुँह पर जो पसीना छा गया था, उसे वन के उस वायु ने सुखा दिया, जो जल के कणों से शीतल होकर पत्तों और कलियों को गिराता चल रहा था।।68।। इस प्रकार अपना सब काम भूले हुए और राज्य का भार मंत्रियों पर छोड़कर वन में आए हुए, राजा दशरथ का मन आखेट के व्यसन ने उसी प्रकार लुभा लिया, जैसे कोई स्त्री अपने पति की सेवा करके उसे अपने वश में कर लेती है।।69।। यह आखेट का व्यसन उन्हें ऐसा लगा कि कभी-कभी उन्हें सारी रात फूल-पत्तों की शैय्या पर, रात को चमकनेवाली बूटियों के प्रकाश के सहारे, बिना किसी सेवक के अकेले ही काटनी पड़ती थी।।70।। और प्रातःकाल जब नगाड़ों के समान शब्द करनेवाले हाथियों के कानों की फटफट होती थी तब उनकी आँखें खुलतीं थी, और उस समय वन के पक्षी चारणों के समान जो मङ्गलगीत गाते थे, उन्हें सुनकर ही वे मगन हो जाते थे।।71।। एक दिन जंगल में रुरु मृग का पीछा करते हुए वे अपने साथियों से बहुत दूर भटक गए। थकावट के कारण उनका घोड़ा मुँह से झाग फेंकने लगा, पर उसी पर चढ़े हुए वे तमसा नदी के उस तट पर निकल गए, जहाँ बहुत से तपस्वियों के आश्रम बने हुए थे।।72।। वहाँ जल में कोई घड़ा भर रहा था, इन्होंने समझा कि यह कोई हाथी है। बाण निकाला और शब्द पर लक्ष्य करके उन्होंने झट शब्दवेधी बाण चला दिया।।73।। हाथी को मारना शास्त्र के विरुद्ध है। इसलिये दशरथ ने जो किया वह राजा के लिये ठीक नहीं था पर कभी-कभी विद्वान् लोग भी जब आवेश से अंधे हो जाते हैं तब वे भी उलटा काम कर ही बैठते हैं।74।। सहसा कोई चिल्लाया—हाय पिता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिषण्णदेहः।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्खलद्भिरात्मानमक्षरपदैः कथयांबभूव।।76।।
तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय।
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्रमज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस।।77।।
तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः।
सोऽभूत्परासुरथ भूमिपतिं शशाप हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः।।78।।
दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजंग प्रोवाच कोशलपतिः प्रथमापराद्धः।।79।।
शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो वीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति।।80।।
इत्थंगते गतघृणः किमयं विधत्तां वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन।।
एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः।।81।।

यह सुनकर इनका माथा ठनका और ये झट उसे ढूँढ़ने बढ़े चले। आगे बढ़ते ही देखते क्या हैं कि नरकट की झाड़ियों में बाण से बिंधा हुआ, घड़े पर झुका हुआ किसी मुनि का पुत्र पड़ा है। उसे देखकर उनको ऐसा कष्ट हुआ मानो इन्हें भी बाण लग गया हो।।75।। जब श्रेष्ठ वंश वाले राजा दशरथ ने घड़े पर झुके हुए मुनि-पुत्र से उसका वंश-परिचय पूछा, तब उसने लड़खड़ाती बाणी से बताया कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मेरे पिता वैश्य हैं और मेरी माता शूद्रा हैं।।76।। उसने राजा दशरथ से कहा कि मुझे मेरे अँधे माता-पिता के पास ले चलो। राजा दशरथ ने उस बाण से बिंधे मुनि-पुत्र को उठाया और उनके माता-पिता के पास ले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे सब कथा बता दी कि भूल से मैंने आपके एकलौते पुत्र पर किस प्रकार बाण चला दिया है।।77।। यह सुनते ही वे दोनों तो चिल्लाकर रोने लगे और उन्होंने अपने पुत्र के हत्यारे को आज्ञा दी कि मेरे पुत्र की छाती में से बाण निकाल लो। बाण निकालते ही मुनि-कुमार के प्राण भी निकल गए। इस पर बूढ़े तपस्वी ने अपने आँसुओं से अपनी अंजली भरकर राजा को शाप दिया–।।78।। 'हे राजा! जाओ तुम भी हमारे ही समान बुढ़ापे में पुत्र-शोक से प्राण छोड़ोगे।' पैर से दबने पर सर्प जैसे विष उगलकर शान्त हो जाता है, वैसे ही शाप देकर जब वे बूढ़े मुनि शान्त हो गए, तब पहले-पहल अपराध करनेवाले राजा दशरथ उनसे बोले–।।79।। 'हे मुनि? मुझे आज तक पुत्र के मुख-कमल का दर्शन-तक नहीं हुआ है, इसलिये मैं आपके श्राप को वरदान ही समझता हूँ; क्योंकि इसी बहाने मुझे पुत्र तो प्राप्त होगा। जंगल की लकड़ी की आग चाहे एक बार पृथ्वी को भले ही जला दे; किन्तु वह पृथ्वी को इतनी उपजाऊ बना देती है कि आगे उसमें बड़ी अच्छी उपज होती है।।80।। यह कहकर राजा ने फिर उनसे कहा–'मैं तो इसी योग्य हूँ कि आप मेरा वध करें। अब मुझ नीच के लिये आपकी क्या आज्ञा होती है।' यह सुनकर उस मुनि ने कहा कि 'हम और हमारी स्त्री अब अपने पुत्र के समान ही शरीर छोड़ देंगे। इसलिये अब हमारे लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्यराजा संपाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः।। 82।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
मृगयावर्णनो नाम नवमः सर्गः।।

ईंधन और अग्नि जुटाओ।।81।। राजा दशरथ के अनुचर भी तब तक पहुँच गए थे। तत्काल ईंधन और अग्नि जुटा दी गई। जैसे समुद्र के हृदय में बड़वानल जला करता है वैसें ही, अपने पाप से अधीर हृदय में मुनि के शाप की ज्वाला की आग लिए हुए वे [किसी प्रकार] घर लौटे।।82।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'आखेट-वर्णन' नामक नवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। दशमः सर्गः ।।

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः।
किंचिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ।। 1 ।।
न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम्।
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ।। 2 ।।
अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरंनृपः।
प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः । 3 ।।
ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः संतानकाङ्क्षिणः।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ।। 4 ।।
तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम्।
अभिजग्मुर्निदाघार्ताश्छायावृक्षमिवाध्वगाः ।। 5 ।।
ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः।
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ।। 6 ।।
भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः।
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ।। 7 ।।
श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले।
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ।। 8 ।।

दसवाँ सर्ग

अपार धनवाले और इन्द्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ को पृथ्वी पर राज करते-करते लगभग दस सहस्र शरद् बीत गए।।1।। पर तब भी पितरों के ऋण से छुटकारा दिलानेवाली और शोक के अँधेरे को दूर करनेवाली वह ज्योति उन्हें नहीं मिल सकी जिसे पुत्र कहते हैं।।2।। जैसे समुद्र को रत्न उत्पन्न करने के लिये मथे जाने तक ठहरना पड़ा था, वैसे ही संतान के लिये उपाय होने तक राजा दशरथ को भी ठहरना पड़ा।।3।। तब ऋष्यशृङ्ग आदि जितेन्द्रिय और सन्त यज्ञ करनेवाले ऋषियों ने संतान चाहनेवाले राजा दशरथ के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना प्रारंभ किया।।4।। ठीक उसी समय रावण के अत्याचारों से घबराकर देवता लोग उसी प्रकार विष्णु की शरण में गए, जैसे धूप से व्याकुल पथिक छायावाले वृक्ष के नीचे पहुँच जाते हैं।।5।। ज्यों ही देवता लोग क्षीरसागर में पहुँचे, त्यों ही विष्णु भगवान् भी योग-निद्रा से जाग उठे। काम में देर न होना ही उसके पूरे होने का सबसे बड़ा लक्षण है।।6।। देवताओं ने देखा कि विष्णु भगवान् शेष-शय्या पर लेटे हुए हैं और शेष के फणों की मणियों से उनका शरीर और भी अधिक चमक उठा है।।7।। उन्हीं के पास कमल पर लक्ष्मी बैठी हुई थीं, जिनकी कमर में रेशमी वस्त्र पड़ा हुआ था और जो विष्णु भगवान् के चरण अपनी गोद में लेकर पलोट रही थीं।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम्।
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम्।।9।।
प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्।
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा।।10।।
बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः।
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम्।।11।।
दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः।
हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम्।।12।।
मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा।
उपस्थितं प्राञ्जलिना विनीतेन गरुत्मता।।13।।
योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः।
भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन्।।14।।
प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्।।15।।

जैसे खिले हुए कमलों से और कन्या राशि के सूर्य से शरद् ऋतु के प्रारंभिक दिन बड़े सुहावने लगते हैं, वैसे ही खिले हुए कमल जैसी आँखो वाले, प्रातःकाल की धूप के समान सुनहले वस्त्र पहने और ध्यानमग्न योगियों को सरलता से दर्शन देनेवाले, विष्णु भी बड़े सुन्द लग रहे थे।।9।। उनके चौड़े वक्षस्थल पर वह कौस्तुभमणि चमक रहा था, जिसमें लक्ष्मी जी शृङ्गार के समय अथवा हाव-भाव करते हुए अपना मुँह देखा करती हैं और जिसकी चमक से भृगु के चरण के प्रहार से बना हुआ श्रीवत्स चिह्न भी चमक उठता था।।10।। आभूषणों से सजी हुई उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ वृक्ष की शाखाओं के समान थीं और उनसे वे ऐसे लगते थे, मानो समुद्र में दूसरा कल्पवृक्ष निकल आया हो।।11।। असुरों को माकर उनकी स्त्रियों के गालों से मद की लाली मिटानेवाले उनके चक्र, गदा आदि अस्त्र सजीव होकर उनकी जयजयकार कर रहे थे।।12।। शेषनाग से स्वाभाविक विरोध छोड़कर इन्द्र के वज्र की चोट का चिह्न धारण किए हुए गरुड़जी बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर उनकी सेवा में खड़े थे।।13।। वे लोग निद्रा से उठकर अपनी स्वच्छ और पवित्र चितवन से उन भृगु आदि ऋषियों को अनुगृहीत कर रहे थे, जो उनसे पूछ रहे थे–'भगवन् आप सुख से तो सोए हैं।।14।। तब देवता लोग दैत्यों के नाश करनेवाले विष्णु भगवान् को प्रणाम करके उन प्रशंसनीय विष्णु की स्तुति करने लगे जिन तक न तो वाणी ही पहुँचती है और न तो मन ही पहुँच सकता है। वे बोले–।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने।। 16।।
रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते।
देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः। 17।।
अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम्।। 18।।
हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम्।
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः।। 19।।
सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक्।। 20।।
सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम्।
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम्।। 21।।
चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः।
चतुर्वर्णमयोलोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात्।। 22।।

विश्व को बनाने, पालन करने और अंत में उसका संहार करनेवाले तीनों रूप आप अपने में धारण करते हैं। आपको प्रणाम है।।16।। जैसे एक स्वादवाला वर्षा का जल अलग-अलग देशों में बरसकर अलग-अलग स्वादवाला हो जाता है, वैसे ही आप सब प्रकार के विकारों से दूर होते हुए भी सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के प्रभाव से बहुत से रूप धारण कर लेते हैं।।17।। हे भगवन्! आप कितने बड़े हैं, यह तो कोई नहीं माप सकता, पर आपने सब लोक माप डाले हैं।। आपकी स्वयं कोई इच्छा नहीं है पर आप सबकी इच्छाएँ पूरी करते हैं। आपको कोई नहीं जीत सकता परन्तु आपने सबको जीत लिया है। आप किसी को नहीं दिखाई देते; पर आपने ही इस दिखाई देनेवाले संसार को उत्पन्न किया है।।18।। हे भगवन्! विद्वानों का कहना है कि आप सबके हृदय में रहते हुए भी दूर हैं। आप कोई इच्छा नहीं करते, फिर भी [नर-नारायण के रूप में बदरिकाश्रम में] तपस्या करते हैं। आप दयालु हैं; पर आपको पुण्य नहीं छूता। आपको लोग पुराण [अर्थात् पुरातन पुरुष] कहते हैं पर आप कभी बूढ़े नहीं होते।।19।। आप सबको जानते हैं; पर आपको कोई नहीं जानता।। आपने सारी सृष्टि उत्पन्न की है, आपको किसी ने उत्पन्न नहीं किया है। आप सबके स्वामी हैं, आपका कोई स्वामी नहीं है और एक रूप होते हुए भी आप संसार के सब रूप धारण किए हुए हैं।।20।। विद्वानों का कहना है कि सामवेद के सातों प्रकार के गीतों में आपके ही गुणों के गीत हैं।। आप ही सातों समुद्रों के जल में निवास करते हैं। सातों प्रकार की अग्नि आपके ही मुख हैं और सातों लोकों के आप ही एक सहारे हैं।।21।। आपके ही चारों मुखों से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल देनेवाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों में बँटा हुआ समय भी आपने ही उत्पन्न किया है और चार वर्णोंवाला यह संसार भी आपका ही बनाया हुआ है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम्।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये।। 23।।
अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव।। 24।।
शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम्।। 25।।
बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानःसिद्धहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे।। 26।।
त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये।। 27।।
प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा।। 28।।
केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः।
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि।। 29।।

योगी लोग सदा प्राणायाम आदि से मन को वश में करके मुक्ति पाने के लिये अपने हृदयों में बैठे हुए आपके ही ज्योतिस्वरूप की खोज किया करते हैं।।23।। हे भगवन्! आप अजन्मा कहलाकर भी जन्म लेते हैं और कर्म-रहित होकर भी शत्रुओं का संहार करते हैं। योग-निद्रा में सोते हुए भी आप जागते ही रहते हैं, फिर बताइए, आपका सच्चा भेद कौन जान सकता है।।24।। आप [कृष्ण आदि रूप में] शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध आदि का भोग करते हैं। [नर-नारायण रूप से] कठोर तपस्या करते हैं। [राम आदि रूप धारण करके] प्रजा का पालन करते हैं और [बुद्ध आदि] शान्तरूप धारण करके उदासीन भी बन जाते हैं।।25।। जैसे गंगाजी की सभी धाराएँ समुद्र में ही गिरती हैं, उसी प्रकार परमानन्द पाने के जितने मार्ग बताए गए हैं, वे अलग-अलग शास्त्रों में अलग-अलग रूप से बताए जाने पर भी सब आप ही तक पहुँचते हैं।।26।। जो योगी लोग सदा आपका ही ध्यान करते हैं, जिन्होंने अपने सब कर्म आपको ही समर्पित कर दिए हैं और जो लोग द्वेष से दूर हैं उन योगियों को तो आप ही जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा देते हैं।।27।। यद्यपि पृथ्वी आदि को देखने से आपकी महिमा प्रकट हो जाती है; पर उतने से ही ठीक-ठीक आपका परिचय नहीं हो पाता। फिर भला वेदों के वर्णन से और अनुमान से आपका कैसे ज्ञान हो सकता है।।28।। आपके स्मरणमात्र से ही लोग पवित्र हो जाते हैं। फिर यदि उन्हें आपका दर्शन हो जाय, वे आपका चरण छू सकें और आपकी वाणी सुन सकें तो उससे जितना पुण्य होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः।
स्तुतिभ्योव्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते।।30।।
अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः।।31।।
महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया।।32।।
इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम्।
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः।।33।।
तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीयते सुराः।
भयमप्रलयोद्वेलादाचख्युर्नैऋतोदधेः।।34।।
अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना।।
स्वरेणोवाच भगवान्परिभूतार्णवध्वनिः।।35।।
पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता।
वभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती।।36।।
बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता।
निर्यातशेषा चरणाद्गङ्गेवोर्ध्वप्रवर्तिनी।।37।।

जैसे समुद्र के रत्न औरं सूर्य की किरणें गिनी नहीं जा सकतीं वैसे ही स्तुति करके आपके पूरे चरित्र का वर्णन नहीं हो सकता।।30।। संसार में प्राप्त करने योग्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो आपके हाथ में न हो। फिर भी आप जो जन्म लेते हैं और कर्म करते हैं उसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि आप संसार पर अनुग्रह करना चाहते हैं।।31।। आपकी महत्ता की प्रशंसा करके जो हम चुप हो रहे हैं, इसका यह कारण नहीं है कि हमने आपके सब गुणों का वर्णन कर डाले, वरन् इसका कारण यही है कि हम थक गए हैं और आगे बोलने की शक्ति हममें नहीं रह गई है।।32।। जो भगवान् किसी भी इन्द्रिय से प्राप्त नहीं होते हैं, उनकी स्तुति करके देवताओं ने उन्हें प्रसन्न कर लिया। वह स्तुति भी उनकी झूठी प्रशंसा नहीं थी अपितु सब बातें सच्ची ही थीं।।33।। विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर उनसे कुशल-मंगल पूछा, जिसके उत्तर में देवताओं ने कहा कि आजकल ऐसे राक्षस उत्पन्न हो गए हैं, जिन्होंने बिना प्रलय काल आए ही सारे संसार की मर्यादा भंग करके चारों ओर हाहाकार मचा दिया है।।34।। यह सुनकर समुद्र से भी बढ़कर गंभीर ध्वनि में जब भगवान् उत्तर देने लगे तब क्षीरसागर के तट पर खड़े हुए पहाड़ों की गुफाओं में उनके शब्द गूँज उठे।।35।। विष्णु भगवान् तो सबसे पुराने कवि हैं; इसलिए जब उनके मुख के भीतर कण्ठ, तालु, दाँत, ओठ आदि उच्चारण के स्थानों से भली-भाँति वाणी निकली तब मानो सरस्वती ने अपने जन्म लेने का फल पा लिया।।36।। उनके दाँतों की चमक से जगमगाती हुई उनकी वाणी मुख से निकलती हुई ऐसी शोभा देने लगी मानो उनके चरणों से निकलकर गंगाजी ऊपर को जा रही हों।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने वो रक्षसाक्रान्तावनुभावपराक्रमौ।
अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ।। 38।।
विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्।
अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा।। 39।।
कार्येषु चैककार्यत्वादभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा।
स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते।। 40।।
स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे।
स्थापितो दशमो मूर्धा लभ्यांश इव रक्षसा।। 41।।
स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः।
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः।। 42।।
धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः।
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः।। 43।।
सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम्।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरः कमलोच्चयम्।। 44।
अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः।
मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः।। 45।।

विष्णु भगवान् बोले—हे देवताओ! जैसे संसार के जीवों के सत्त्वगुण और रजोगुण को उनका तमोगुण दबा लेता है, वैसे ही आपके तेज और बल को रावण दबा बैठा है।।38।। मैं यह भी जानता हूँ कि जैसे अनजान में किए हुए पाप से सज्जन का मन घबरा जाता है, वैसे ही सारा संसार रावण के अत्याचार से घबरा उठा है।।39।। इसलिए रावण को मिटा डालने का काम जैसा इन्द्र का है, वैसा ही मेरा भी है। इसके लिये इन्द्र ने जो मेरी प्रार्थना की है, उसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता हूँ; क्योंकि आग की सहायता के लिये वायु से कहना नहीं पड़ता, वह तो स्वयं आग को सहायता देता है।।40।। शिवजी को प्रसन्न करने के लिये रावण ने अपने नौ सिर काटकर चढ़ा दिए थे। अब जान पड़ता है कि उस राक्षस ने अपना दसवाँ सिर मेरे चक्र से काटे जाने के लिये रख छोड़ा है।।41।। ब्रह्माजी ने जो उसे वरदान दे दिया है, उसीसे मैंने उस दुष्ट का दिन-दिन ऊपर चढ़ना, उसी प्रकार सहा है, जैसे अपने ऊपर चढ़ते हुए साँप को चन्दन का पेड़ सह लेता है।।42।। जब ब्रह्माजी उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए, तब उसने यही वरदान माँगा कि मैं देवताओं के हाथ से मारा न जा सकूँ; क्योंकि मनुष्यों को तो वह कुछ समझता ही नहीं है।।43।। इसलिये मैं राजा दशरथ के यहाँ जन्म लेकर अपने तीखे बाणों से उसके सिरों को कमल के समान उतारकर रणभूमि को भेंट चढ़ाऊँगा।।44।। हे देवताओ! यजमान लोग जो विधि से दिया हुआ यज्ञ का भाग तुम्हें दे देंगे उसे अब राक्षस लोग छीनकर नहीं खा सकेंगे। वह अब आप लोगों को ही मिलेगा।। 45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यजन्तु मरुतां पथि।
पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः।। 46।।
मोक्षध्वे स्वर्गवन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान्।
शापयन्त्रित-पौलस्त्यबलात्कार-कचग्रहैः।। 47।।
रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे।। 48।।
पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः।
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः।। 49।।
अथ तस्य विशांपत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः।
पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्त्विजाम्।। 50।।
हेमपात्रगतं दोर्भ्यामादधानः पयश्चरुम्।
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम्।। 51।।
प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः।
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता।। 52।।
अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः।
प्रसूतिं चक्रमे तस्मिंस्त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत्।। 53।।

अब आप लोग निडर होकर अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में घूमिए और रावण के पुष्पक विमान को देखकर और उससे डरकर बादलों में छिपना छोड़ दीजिए।।46।। रावण ने स्वर्ग की जिन स्त्रियों को अपने यहाँ बन्दी किया है, उनके जूड़ों को नलकूबर के शाप के डर से उसने हाथ नहीं लगाया है। अब आप लोग ही उन बन्दी स्त्रियों के जूड़े अपने हाथों से खोलेंगे।।47।। जैसे सूखे के दिनों में धान के खेत पर कोई बादल जल बरसाकर निकल जाय, वैसे ही रावण के डर से सूखे हुए देवताओं पर अपने मधुर वचन बरसाकर विष्णु भगवान् भी अन्तर्धान हो गए।।48।। जैसे वायु के चलने पर वन के वृक्ष स्वयं उसके पीछे न जाकर अपने फूल उसके साथ भेज देते हैं, वैसे ही जब भगवान् विष्णु देवताओं का कार्य करने के लिये चले तब इन्द्र आदि देवताओं ने भी अपने-अपने अंश उनके साथ भेज दिए।।49।। इधर ज्यों ही राजा दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ समाप्त हुआ त्यों ही यज्ञ की अग्नि में से एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसे देखकर यज्ञ करनेवाले सभी ऋषि बड़े आश्चर्य में पड़ गए।।50।। उस पुरुष के हाथ में खीर से भरा हुआ सोने का कटोरा था। उस खीर में सारे ब्रह्माण्ड को सँभालनेवाले विष्णु भगवान् प्रविष्ट हुए थे; इसलिये वह दिव्य पुरुष भी उस कटोरे को बड़ी कठिनाई से सँभाल पा रहा था।।51।। जैसे इन्द्र ने समुद्रों में से निकले हुए अमृत के कलश को थाम लिया था, वैसे ही राजा दशरथ ने भी उस दिव्य पुरुष के हाथ से वह खीर ले ली।।52।। उस दिव्य पुरुष ने राजा दशरथ के असाधारण गुणों की इतनी प्रशंसा की कि विष्णु भगवान् को भी उनके यहाँ जन्म लेने की इच्छा होने लगी।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्।।54।।
अर्चिता तस्य कौशल्या प्रिया केकयवंशजा।
अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः।।55।।
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे।।56।।
सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः।।57।।
ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रेदेवांशसंभवः।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः।।58।।
सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः।
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव संपदः।।59।।
गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः।
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः।।60।।
हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता।
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा।।61।।

जैसे सूर्य अपनी नई धूप पृथ्वी और आकाश दोनों में बाँट देता है, वैसे ही खीर के रूप में पाये हुए विष्णु के तेज को राजा ने कौशल्या और कैकेयी में बराबर बाँट दिया।।54।। कौशल्या उनकी बड़ी रानी थी और कैकेयी उनकी प्यारी रानी थी; इसलिये वे चाहते थे कि वे दोनों रानियाँ ही अपने-अपने भाग में से स्वयं कुछ भाग देकर सुमित्रा का सम्मान करें।।55।। सब कुछ जाननेवाले राजा दशरथ की उन दोनों रानियों ने अपनी-अपनी खीर का आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे दिया।।56।। जैसे हाथी के दोनों कपोलों से निकलनेवाली मद की दोनों धाराओं से भौंरी बराबर प्रेम करती है वैसे ही सुमित्रा भी अपनी सौतों से बराबर प्रेम करती थीं।।57।। जैसे अमृत नाम की जल बरसानेवाली सूर्य की किरणें संसार के कल्याण के लिये जल लिए रहती हैं, वैसे ही उन तीनों रानियों ने लोक के कल्याण के लिये विष्णु के अंश से भरा गर्भ धारण किया।।58।। एक साथ गर्भ धारण करनेवाली रानियाँ गर्भ से पीली पड़ने के कारण अनाज की उन बालों के समान पीली लगती थीं, जिनमें दाने पड़ गए हों।।59।। उन्हें यह स्वप्न दिखाई देता था कि कमल, तलवार, गदा, शार्ङ्ग धनुष और चक्र लिए हुए कोई बौना-सा पुरुष बराबर हमारी रक्षा कर रहा है।।60।। और अपने सोने के पंखों से प्रकाश फैलता हुआ अपने वेग के कारण अपने साथ बादलों को भी खींचकर ले जाता हुआ गरुड़ हमें आकाश में उड़ाकर ले जा रहा है।।61।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम्।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया।।62।।
कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे।।63।।
ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः।
मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः।।64।।
विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव।।65।।
अथाग्र्यमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः।।66।।
राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम्।।67।।
रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन्।।68।।
शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा।।69।।

वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि पहने हुए लक्ष्मी भी हाथ में कमल का पंखा लेकर हमारी सेवा कर रही है।।62।। इतना ही नहीं, आकाशगङ्गा में स्नान करके सप्तर्षि भी वेद-पाठ करते हुए हमारी उपासना कर रहे हैं।।63।। जब रानियों ने राजा को अपने ये स्वप्न सुनाए, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया कि अब संसार में मुझसे बढ़कर कोई नहीं है; क्योंकि मैं संसार के गुरु विष्णुजी का भी पिता बन रहा हूँ।।64।। यद्यपि विष्णु का एक ही रूप है; पर जैसे निर्मल जल में चन्द्रमा के बहुत से प्रतिबिम्ब पड़ जाते हैं; वैसे ही वे भी तीनों रानियों के गर्भों में अलग-अलग निवास कर रहे थे।।65।। जैसे पर्वत की बहुत-सी बूटियों में रात को अँधेरा दूर करनेवाला प्रकाश आ जाता है, वैसे ही राजा की पटरानी कौशल्या ने तमोगुण में रात को अँधेरा दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया।।66।। उस बालक का मनोहर शरीर देखकर वशिष्ठजी ने उनका संसार में सबसे अधिक मङ्गलकारी नाम 'राम' रख दिया।।67।। रघुवंश को उजागर करनेवाले उस बालक का इतना तेज था कि सारे घर के सब दीपकों की ज्योति उसके आगे मन्द पड़ गई।।68।। प्रसव से दुबली माता कौशल्या, नन्हें से राम को लिए हुए पलंग पर लेटी हुई ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं, जैसे शरद् ऋतु में पतली धारवाली गङ्गाजी के तट पर किसी का चढ़ाया हुआ नीला कमल रखा हुआ हो।।69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान्।
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम्।। 70।।

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव।। 71।।

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत्।
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम्।। 72।।

तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः।।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव।। 73।।

कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः।
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव।। 74।।

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः।। 75।।

पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि।। 76।।

संतानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी।
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाभवत्।। 77।।

कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। उन्हें पाकर वे ऐसी शोभा दे रही थीं जैसे संपत्ति के साथ आदर शोभा देता है।।70।। जैसे अभ्यास से पाई हुई विद्या से ज्ञान और विनय दोनों मिल जाते हैं वैसे ही सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए।।71।। उस समय संसार से सारे दोष भाग गए और चारों ओर गुण ही गुण फैल गए, मानो विष्णु भगवान् के साथ-साथ स्वर्ग भी पृथ्वी पर उतर आया हो।।72।। दशों दिशाओं में बिना धूल की जो स्वच्छ वायु चलने लगी, वह ऐसी लगती थी मानो रावण से डरे हुए कुबेर आदि दिग्पालों ने पृथ्वी पर चार रूपों में आये हुए भगवान् को पाकर सन्तोष की साँस ली हो।।73।। रावण से पीड़ा पाये हुए अग्निदेव का धुआँ निकल गया और सूर्य भी निर्मल हो गए, मानो दोनों का शोक दूर हो गया हो।।74।। उसी समय रावण के मुकुट के कुछ मणि पृथ्वी पर गिर पड़े, मानो राक्षसों की लक्ष्मी के आँसू ही ढुलक पड़े हों।।75।। पुत्रवान् राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-जन्म के समय, नगाड़े आदि बाजे पीछे बजे, पहले देवताओं ने ही स्वर्ग में बधाई की दुन्दुभी बजाई।।76।। और उनके राजभवन पर आकाश से कल्पवृक्ष के फूलों की जो वर्षा हुई उसी से उनके माङ्गलिक संस्कारों का आरंभ हुआ।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः।
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः।।78।।

स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा।
मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम्।।79।।

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम्।
अलमुद्द्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्तवः।।80।।

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः।।81।।

तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः।।82।।

ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव।।83।।

स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्।।84।।

गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः।
तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः।।85।।

जातकर्म और संस्कार हो चुकने पर धाय का दूध पी-पीकर जैसे-जैसे राजकुमार बढ़ने लगे वैसे-वैसे राजा दशरथ का आनन्द भी बढ़ने लगा, मानो यह आनन्द उन चारों राजकुमारों का जेठा भाई हो।।78।। जैसे घी आदि पड़ने से हवन की अग्नि का स्वाभाविक तेज बढ़ जाता है, वैसे ही शिक्षा पाने से उन चारों राजुकमारों की स्वाभाविक नम्रता और भी अधिक बढ़ गई।।79।। जैसे ऋतुएँ नन्दनवन को चमका देती हैं, वैसे ही परस्पर प्रेम से उन चारों कुमारों ने पवित्र रघुकुल को उजागर कर दिया।।80।। यद्यपि चारों में परस्पर बहुत प्रेम था, फिर भी विशेष प्रेम के कारण जैसे राम और लक्ष्मण की एक जोड़ी हो गई, वैसे ही भरत और शत्रुघ्न की भी जोड़ी हो गई।।81।। जैसे वायु और अग्नि का तथा चन्द्रमा और समुद्र का जोड़ा कभी अलग नहीं होता, वैसे ही राम और लक्ष्मण का तथा भरत और शत्रुघ्न का साथ कभी नहीं छूटा।।82।। सब प्रजा के स्वामी राजकुमारों ने अपने तेज और नम्र व्यवहार से अपनी प्रजा का मन उसी प्रकार हर लिया, जैसे गर्मी के अंत में काले बादल लोगों के मन को आकृष्ट कर लेते हैं।।83।। राजा की चारों संतानें ऐसी शोभा दे रही थीं, मानो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ने अवतार ले लिया हो।।84।। चारों पितृभक्त राजकुमारों ने राजा दशरथ को अपने गुणों से उसी प्रकार प्रसन्न कर लिया, जैसे चारों समुद्रों ने रत्न देकर चारों दिशाओं के स्वामी राजा दशरथ को प्रसन्न कर लिया था।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैर्नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः।।86।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रामावतारो नाम दशमः सर्गः।।

जैसे असुरों की तलवारों की धार कुंठित करनेवाले अपने चार दाँतों से ऐरावत शोभा देता है, जैसे साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों से राजनीति शोभा देती है और जैसे रथ के जुए के समान अपनी लम्बी-लम्बी चार भुजाओं से विष्णु भगवान् शोभा देते हैं, वैसे ही राजा दशरथ भी अपने चार सुयोग्य पुत्रों से सुशोभित हुए।।86।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'रामावतार' नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। एकादशः सर्गः ।।

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।।1।।
कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम्।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता।।2।।
यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम्।
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः।।3।।
तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः।
भूपतेरपिं तयोः प्रवत्स्यतोर्नम्रयोरुपरि वाष्पबिन्दवः।।4।।
तौ पितुर्नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखण्डकावुभौ।
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ।।5।।
लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदृषिरित्यसौ नृपः।।
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं सा हि रक्षणविधौ तयोः क्षमा।।6।।
मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः।
रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव।।7।।

ग्यारहवाँ सर्ग

एक दिन विश्वामित्रजी राजा दशरथ के पास आए और उन्होंने कहा कि मेरे यज्ञ की रक्षा के लिये काकपक्ष-धारी राम को हमारे साथ भेज दीजिए। ठीक ही है, जो तेजस्वी होते हैं, उनके लिये यह नहीं विचार किया जाता है कि वे छोटे हैं या बड़े।।1।। यद्यपि दशरथजी ने राम और लक्ष्मण को बड़ी तपस्या से पाया था; पर वे विद्वानों के इतने भक्त थे कि उन्होंने तत्काल राम-लक्ष्मणों को मुनि के साथ भेज दिया; क्योंकि रघुकुल की सदा से यह रीति रही है कि यदि कोई प्राण भी माँगे तो उसे विमुख नहीं लौटाते।।2।। अभी राजा दशरथ उनकी विदाई के लिये सड़क सजाने की आज्ञा अपने सेवकों को दे ही रहे थे कि इतने में वायु ने फूल और बादलों ने जल लाकर सड़कों पर बरसा ही दिया।।3।। पिता की आज्ञा पालन करने को प्रस्तुत होकर दोनों राजकुमार अपने पिता के चरणों में प्रणाम करने को झुके ही थे कि दशरथजी की आँखों से उन दोनों पर आँसू टपक पड़े।।4।। और उन आँसुओं से दोनों राजकुमारों की चोटियाँ भीग गईं। जिस समय धनुष लेकर दोनों राजकुमार विश्वामित्रजी के पीछे-पीछे चले जा रहे थे, उस समय उन्हें देखते हुए पुरवासियों की आँखें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो नेत्रों की बंदनवारें बाँध दी गई हों।।5।। विश्वामित्रजी केवल राम और लक्ष्मण को ही ले जाना चाहते थे। अतः राजा ने उनकी सहायता के लिये अपना आशीर्वाद ही दिया, सेना नहीं; क्योंकि उनका आशीर्वाद ही उनकी रक्षा के लिए पर्याप्त था।।6।। माताओं के चरण छूकर दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं शैशवाच्चपलमत्यशोभत।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोर्नामधेयसदृशं विचेष्टितम्।।8।।
तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः।
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव।।9।।
पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः।
उह्यमान इव वाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत्।।10।।
तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्त्रिणः।
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे।।11।।
नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम्।
दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः।।12।।
स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा।।13।।
तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि।
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलयैव धनुषी अधिज्यताम्।।14।।

राजकुमार उन तेजस्वी मुनि के पीछे चलते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानो सूर्य के पीछे-पीछे चैत्र और वैशाख मास चले जा रहे हों।।7।। बचपन के कारण लहरों के समान चंचल बाँहोंवाले राजकुमारों का चुलबुलापन ऐसा सुन्दर लग रहा था, मानो वर्षा-ऋतु में दोनों उद्ध्य और भिद्य नदियाँ लहराती एवं तटों को ढाती हुई चली जा रही हों।।8।। [आज तक उन बालकों ने घर से बाहर तो पैर रखा ही न था, इसलिये] मार्ग में ही विश्वामित्र ने उन्हें बला और अतिबला नामक की दोनों विद्याएँ सिखा दीं, जिससे ऊबड़-खाबड़ वन के मार्ग में चलते हुए उन्हें थकान नहीं हो रही थी और वैसा ही सुख हो रहा था, जैसे वे मणियों से जड़े हुए अपने भवनों में अपनी माता के आसपास घूम रहे हों।।9।। जो राम और लक्ष्मण सदा दिव्य रथों पर चढ़कर चलते थे, उन्हें तनिक भी थकावट नहीं हुई; क्योंकि उनके पिता के मित्र विश्वामित्रजी उन्हें मार्ग में पुरानी कथाएँ सुनाते चले जा रहे थे।।10।। सरोवरों ने अपना मीठा जल पिलाकर, पक्षियों ने मधुर गीत सुनाकर, वायु ने सुगन्धित पराग फैलाकर और बादलों ने शीतल छाया देकर मार्ग में उन दोनों की बड़ी सेवा की।।11।। कमलों से भरे हुए सरोवरों तथा थकावट हरनेवाले वृक्षों की छाया को देखकर भी आश्रम के तपस्वी उतने प्रसन्न कभी नहीं हुए थे, जितने इन दोनों राजकुमारों को देखकर प्रसन्न हुए।।12।। जिस तपोवन में शिवजी ने कामदेव को भस्म किया था, वहाँ जब सुन्दर शरीरवाले राम धनुष उठाए हुए पहुँचे, तब जान पड़ा मानो वे वहाँ कामदेव की सुन्दरता के प्रतिनिधि बनकर आए हों, उसके कार्यों के नहीं।।13।। वहीं मार्ग में उन्हें वह सुकेतु की कन्या ताड़का राक्षसी मिली जिसने सारे मार्ग को उजाड़ दिया था और जिसके शाप की कथा महर्षि विश्वामित्र ने पहले ही राम को सुना दी थी। उसे देखते ही उन दोनों भाइयों ने अपने धनुषों को पृथ्वी पर टेककर डोरियाँ चढ़ा लीं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः।
ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेव निविडा बलाकिनी।। 15।।
तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया।
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया।। 16।।
उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः।। 17।।
यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स रामसायकः।
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत्।। 18।।
बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा स्वकाननभुवं न केवलाम्।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत्।। 18।।
राममन्थशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा।।20।।
नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः।। 21।।
वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः।। 22।।

उनके धनुष के डोरी की टंकार सुनते ही, कानों में लटकी हुई मनुष्य की खोपड़ियों का कुण्डल हिलाती हुई, अमावस्या की रात्रि के समान काली-कलूटी ताड़का उनके आगे आकर इस प्रकार खड़ी हो गई, मानो बगुलों की पाँतों से भरी काली बदली हो।।15।। बड़े वेग से मार्ग के वृक्षों को ढाती हुई, प्रेतों के वस्त्र पहने हुई और भयंकर गरजनेवाली तथा श्मशान से उठे हुए बवंडर के समान आकृति वाली ताड़का, राम के ऊपर टूट पड़ी।।16।। वृक्ष की शाखा के समान अपनी बाँह उठाती हुई और कमर में आँतों की करधन पहने हुई उस ताड़का को देखकर राम ने स्त्री को मारने की घृणा और बाण दोनों एक साथ छोड़े।।17।। राम के उस बाण ने पत्थर की चट्टान के समान कठोर ताड़का की छाती में जो छेद किया, वह मानो राक्षसों के उस देश में यमराज के प्रवेश करने के लिये द्वार खोल दिया हो, जहाँ अभी तक वह जा नहीं पाया था।।18।। राम के बाण से ताड़का की छाती फट गई और वह नीचे गिरी, तब उसके गिरने से वह जङ्गल ही नहीं वरन् तीनों लोकों को जीतने से पाई हुई रावण की राजलक्ष्मी भी काँप उठी।।19।। राम के बाण से विंधकर दुर्गन्ध भरे रुधिर से लिपटी हुई ताड़का इस प्रकार सीधे यमलोक चली गई मानो काम के बाण से घायल हुई कोई अभिसारिका चन्द्रमा का लेप करके अपने प्रिय के घर जा रही हो।।20।। जैसे सूर्य, लकड़ी जलाने का तेज सूर्यकान्त मणि को दे देता है, वैसे ही ताड़का के मरने से महर्षि विश्वामित्र इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने राम को राक्षसों का संहार करनेवाला दिव्य अस्त्र मंत्र-सहित दे दिया।।21।। वहाँ से रामचन्द्रजी वामन के उस पवित्र आश्रम में गए जिसके विषय में विश्वामित्रजी ने उन्हें सब बता दिया था। वहाँ अपने पूर्व जन्म के वामनावतार की लीलाओं का ठीक-ठीक स्मरण न होने पर भी वे कुछ उत्कंठित से हो गए।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम्।। 23।।

तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः।
लोकमन्धतमसात्क्रमोदितौ रश्मिभिः शशिदिवाकराविव।। 24।।

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तबिन्दुभिर्बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम्।
संभ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम्।। 25।।

उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन्।
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम्।। 26।।

तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान्।
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते।। 27।।

सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः संदधे धनुषि वायुदैवतम्।
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पांडुपत्रमित्र ताडकासुतम्।। 28।।

सः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया।
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्त्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः।। 29।।

वहाँ से मुनि अपने उस आश्रम पर पहुँचे, जहाँ शिष्यों ने पूजा की सब सामग्री इकट्ठी कर रखी थी, जहाँ वृक्ष भी अपने पत्तों की अञ्जलि बाँधे खड़े थे और जहाँ मृग भी बड़ी उत्सुकता से इन लोगों को देख रहे थे।।23।। जैसे सूर्य और चन्द्रमा बारी-बारी से अपनी किरणों से पृथ्वी का अँधेरा दूर करते हैं, वैसे ही आश्रम में बारी-बारी से राम और लक्ष्मण यज्ञ करनेवाले ऋषियों के विघ्न दूर कर रहे थे।।24।। इतने में ही यज्ञ की वेदी पर बन्धुजीव (दुपहरिया) के फूल के समान बड़ी-बड़ी रक्त की बूँदें देखकर ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने यज्ञ करना बन्द करके अपने-अपने खैर के स्रुवे रख दिए।।25।। उसी समय राम ने अपने तूणीर से बाण निकाले और ऊपर मुँह करके आकाश की ओर देखा कि गिद्ध के पंखों के समान हिलती हुई ध्वजाओं वाली राक्षसों की सेना खड़ी है।।26।। राम ने और सबको छोड़कर उन्हीं दो राक्षसों को बाण मारे, जो उस सेना के सेनानायक थे और जो यज्ञ से घृणा करते थे; क्योंकि भला बड़े-बड़े सर्पों पर आक्रमण करनेवाला गरुड़ क्या कभी जल के छोटे-छोटे साँपों पर आक्रमण किया करता है।।27।। दिव्य अस्त्र चलाने में राम का हाथ ऐसा सधा हुआ था कि उन्होंने झट अपने धनुष पर वायव्य-अस्त्र चढ़ाया और पर्वत से भी बड़े ताड़का के पुत्र मारीच को उस बाण से उड़ाकर वैसे ही दूर फेंक दिया, जैसे कोई सूखा पत्ता उड़ा दिया हो।।28।। सुबाहु नाम का जो दूसरा राक्षस अपनी माया से इधर-उधर घूम रहा था, उसे भी राम ने अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके आश्रम के बाहर मार गिराया, जिसे पक्षियों ने क्षण भर में बाँट खाया।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम्।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः।। 30।।

तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ भ्रातराववभृथाप्लुतो मुनिः।
आशिषामनुपदं समस्पृशद्दर्भपाटिततलेन पाणिना।। 31।।

त न्यमन्त्रयत संभृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम्।। 32।।

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ।। 33।।

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः।। 34।।

राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः।
अर्थकामसहितं सपर्यया देहबद्धमिव धर्ममभ्यगात्।। 35।।

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू।
मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः।। 36।।

जब यज्ञ करनेवाले ऋषियों ने देखा कि थोड़े ही समय में राम ने सब विघ्न दूर कर दिए तो उन्होंने राम और लक्ष्मण के पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की और मौन धारण किए विश्वामित्रजी ने विधि के साथ अपना यज्ञ पूरा कर लिया।।30।। यज्ञ पूर्ण होने पर, स्नान करके महर्षि विश्वामित्र ने उन राम और लक्ष्मण को बड़ा आर्शीवाद दिया, जिनकी लटें प्रणाम करते समय झूल रही थीं। ऋषि ने कुशा से छिली हुई अपनी हथेली उनके सिर पर रखकर उन पर अपना बड़ा स्नेह दिखाया।।31।। उन्हीं दिनों राजा जनक ने धनुष-यज्ञ ठान रखा था, जिसमें उन्होंने मुनियों को भी निमंत्रण दिया था। धनुषयज्ञ की बात सुनकर दोनों राजकुमारों को बड़ा कुतूहल हुआ, इसलिये विश्वामित्र जी उन दोनों को साथ लेकर मिथिलापुरी की ओर चल दिये।।32। वे कुछ दूर चले होंगे कि शाम हो गई और वे उस आश्रम के सुन्दर वृक्षों के तले टिक गए, जहाँ महातपस्वी गौतम की स्त्री अहिल्या थोड़ी देर के लिये इन्द्र की पत्नी बन गई थीं।।33।। राम के चरणों की धूल सब पापों को हरनेवाली थी इसलिये उसके छूते ही पति के शाप से पत्थर बनी हुई अहल्या को फिर इतने दिनों के बाद वही पहलेवाला सुन्दर शरीर मिल गया।।34।। जब राजा जनकजी को यह समाचार मिला कि विश्वामित्रजी के साथ राम और लक्ष्मण भी आये हुए है, तब वे पूजा की सामग्री लेकर उनकी अगवानी के लिये मिलने चले। जनकजी को वे ऐसे लगे मानो धर्म के साथ अर्थ और काम ही चले आए हों।।35। वे दोनों राजकुमार ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो दो पुनर्वसु नक्षत्र ही पृथ्वी पर उतर आये हों। जनकपुर के निवासी ऐसे मगन आँखों से उनका रूप पी रहे थे कि पलकों का गिरना भी उन्हें बड़ा दुःख दे रहा था।। 36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्द्धनः।
राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव सः।। 37।।
तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया।।। 38।।
अंब्रवीच्च भगवन्मतङ्गजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम्।। 39।।
हेपिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात धनुषा धनुर्भृतः।
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे।। 40।।
प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम्।
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव।। 41।।
एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि।। 42।।
व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः।
तैजस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः।। 43।।
तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः।
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन बाणमसृजद्वृषध्वजः।। 44।।

जब धनुष की सब क्रियाएँ समाप्त हो गईं, तब ठीक अवसर समझकर विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा कि राम भी वह धनुष देखना चाहते हैं। ।37।। जब जनकजी ने एक ओर प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए बालक राम के कोमल शरीर को देखा और दूसरी ओर अपने उस कठोर धनुष पर दृष्टि डाली, जिसे बड़े-बड़े वीर भी नहीं झुका सके, तब उन्हें इस बात का बड़ा पछतावा हुआ कि मैंने अपनी कन्या के विवाह के लिये यह धनुष तोड़ने की शर्त क्यों लगा दी। ।38।। वे विश्वामित्रजी जी से बोले—'हे भगवन्! जो काम बड़े-बड़े मतवाले हाथी नहीं कर सकते, उसे हाथी के बच्चे से कराना व्यर्थ का खेलवाड़ है। इसलिए मेरा मन तो नहीं चाहता कि इनसे धनुष उठवाया जाये। ।39।। इस धनुषके उठाने में बड़े-बड़े धनुषधारी राजा अपना-सा मुँह लेकर रह गए और अपनी उन भुजाओं को धिक्कारते हुए चले गये, जिन पर धनुष की डोरी की फटकार से बड़े-बड़े घट्टे पड़े हुए थे। ।40।। यह सुनकर मुनि बोले—'राजन्! इनकी शक्ति मैं आपको बतलाता हूँ। पर कहने से होता क्या है? जैसे वज्र की शक्ति की परीक्षा पहाड़ पर होती है, वैसे ही इनकी शक्ति की परीक्षा धनुष पर ही हो जायेगी, ।।41।। मुनि के कहने से जनकजी को कुछ-कुछ विश्वास होने लगा कि जैसे बीरबहूटी के बराबर नन्हीं-सी चिनगारी में भी जलाने की शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही काकपक्षधारी राम में भी धनुष उठाने की शक्ति अवश्य होगी। ।422।। इसलिए जनकजी ने अपने सेवकों को उसी प्रकार धनुष लाने की आज्ञा दी जैसे इन्द्र भगवान् बादलों को अपना धनुष प्रकट करने की आज्ञा दे देते हैं। ।43।। धनुष जब लाया गया; तब वह ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बड़ा भारी अजगर सोया हो। राम ने देखते-देखते शङ्करजी के उस धनुष को उठा लिया, जिसे हाथ में लेकर शङ्करजी ने मृग के रूप में दौड़नेवाले यज्ञदेवता के ऊपर बाण छोड़े थे। ।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः।
शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः।। 45।।

भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्त्रमुद्यतमिव न्यवेदयत्।। 46।।

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत्।। 47।।

मैथिलः सपदि सत्यसङ्गरो राघवाय तनयामयोनिजाम्।
संनिधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान्।। 48।।

प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः कोशलाधिपतये पुरोधसम्।
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहाद्दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति।। 49।।

अन्वियेष सदृशीं स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः।
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्।। 50।।

तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः।
उच्चचाल बलभित्सखो वशी सैन्यरेणुमुषातार्कदीधितिः।। 51।।

यह देखकर सब सभासदों को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब राम ने उस पर्वत के समान भारी धनुष पर वैसी ही सरलता से डोरी चढ़ा दी, जैसे कामदेव अपने फूलों के धनुष पर डोरी चढ़ाता है।।45।। राम ने धनुष को इतना तान लिया कि वह बज्र के समान भयङ्कर शब्द करके इस प्रकार कड़कड़ाता हुआ टूट गया, मानो उसने महाक्रोधी परशुराम को सूचना दे दी हो कि क्षत्रियों ने अब फिर सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया है।46।। राजा जनक ने जब देखा कि धनुष तोड़कर राम ने अपना पराक्रम दिखा दिया है, तब उन्होंने राम का बड़ा आदर किया और पृथ्वी से उत्पन्न हुई अपनी कन्या जानकी उसी प्रकार राम के हाथ सौंप दी मानो साक्षात् अपनी लक्ष्मी ही उन्हें दे डाली हो।।47।। सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले जनक ने विश्वामित्रजी को ही विवाह का साक्षी अग्नि समझ लिया और तत्काल उन्हीं के आगे राम को सीता समर्पित कर दी।।48।। तब महातेजस्वी राजा जनक ने अपने पूज्य पुरोहित से दशरथजी के पास कहला भेजा कि मेरी पुत्री सीता को स्वीकार करके इस निमि-कुल पर वैसी ही कृपा कीजिए, जैसी आप अपने सेवकों पर करते हैं।।49।। उधर दशरथ यह विचार कर ही रहे थे कि योग्य पतोहू घर में आये कि इतने में जनकजी के पुरोहित भी राजा दशरथजी की इच्छा पूरी होने का समाचार लेकर आ ही पहुँचे।। ठीक भी है, पुण्यवानों की अभिलाषा कल्पवृक्ष के समान तत्काल फल देनेवाली होती भी हैं।।50।। इन्द्र के मित्र, जितेन्द्रिय दशरथ ने पुरोहितजी का बड़ा सत्कार किया। उनकी बातें सुनकर वे इतनी सेना लेकर चले कि उससे उठी हुई धूल से सूर्य भी ढक गया।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः।
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम्।। 52।।
तौ समेत्य समये स्थितावुभौ भूपती वरुणवासवोपमौ।
कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः।। 53।।
पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहो लक्ष्मणस्तदनुजामयोर्मिलाम्।
यौ तयोरवरजौ वरोजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे।। 54।।
ते चतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनवो नववधूपरिग्रहाः।
सामदानविधिभेदनिग्रहाः सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः।। 55।।
ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च ताभिरगमन्कृतार्थताम्।
सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः।। 56।।
एवमात्तरतिरात्मसंभवाँस्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः।
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत।। 57।।
तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः।
चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम्।। 58।।
लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्बद्धभीमपरिवेषमण्डलः।
वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः।। 59।।

वे इस ठाठ-बाट से मिथिला पहुँचे मानो उसे घेरते हुए आये हों। बाहर मिथिला के उपवन को तो उनकी सेना ने रौंद ही डाला। पर इस प्रेम के घेरे को उस नगरी ने उसी प्रकार सहन किया जैसे कोई स्त्री अपने प्रियतम के कठोर संभोग को सहन करती है।52।। वरुण और इन्द्र के समान उन दोनों प्रतापी राजाओं ने मिलकर शास्त्र की विधि से अपने ऐश्वर्य के अनुकूल अपने पुत्रों और कन्याओं का विवाह कर दिया।।53।। राम का सीता से और लक्ष्मण का सीताजी की छोटी बहन उर्मिला से विवाह हुआ। भरत और शत्रुघ्न का विवाह जनकजी के छोटे भाई कुशध्वज की माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नाम की कन्याओं से हुआ।।54।। वे चारों भाई नई बहुओं के साथ ऐसे सुशोभित हुए, मानो राजा दशरथ के साम, दाम, दण्ड और भेद, इन चारों उपायों को सिद्धियाँ मिल गई हों।।55।। उन चारों राजकुमारों को पाकर राजकन्याएँ और राजकन्याओं को पाकर राजकुमार कृतकृत्य हो गए। वह वर और बधुओं का मिलन ऐसा हुआ जैसे शब्द के मूल रूपों में प्रत्यय जुड़ गए हों।।56।। इस प्रकार दशरथ ने चारों पुत्रों का विवाह करके तीन पड़ाव पहुँचकर वहाँ से जनकजी को लौटा दिया और स्वयं बड़े प्रसन्न मन से अयोध्या की ओर बढ़े।।57।। जैसे बढ़ी हुई नदी की धारा आस-पास की भूमि को उजाड़ देती है, वैसे ही एक दिन मार्ग में सेना के ध्वजारूपी वृक्षों को झकझोरने वाले वायु ने सारी सेना को व्याकुल कर दिया।।58।। उससे सूर्य के चारों ओर एक बड़ा भारी मण्डल बन गया और वह ऐसा लगने लगा जैसे गरुड से मारा हुआ कोई साँप अपने सिर से गिरी हुई मणि के चारों ओर कुण्डली मारे पड़ा हुआ हो।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः।
अङ्गना इव रजस्वला दिशो नो बभूवुरवलोकनक्षमाः।। 60।।
भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववासिरे।
क्षत्त्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः।। 61।।
तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित्।
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम्।। 62।।
तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास किल वाहिनीमुखे।
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात्।। 63।।
पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत्।
सः ससोम इव घर्मदीधितिः स द्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः।। 64।।
येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा।
वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो मही।। 65।।
अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः।
क्षत्त्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन्।। 66।।

जैसे रूखे, मैले बालोंवाली तथा रक्त से लाल कपड़ोंवाली रजस्वला स्त्री देखने में अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार उस समय चारों ओर की वे दिशाएँ भी आँखों को अच्छी नहीं लग रही थीं, जिनमें मटमैले बाजों के पंख इधर-उधर उड़ रहे थे और सन्ध्या के लाल बादल छाए हुए थे।।60।। जिधर सूर्य था उधर की सियारिनियाँ भयानक रूप से रोने लगीं, मानो क्षत्रियों के रक्त से अपने पिता का तर्पण करनेवाले परशुराम को वे पुकार-पुकारकर बुला रही हों।।61।। विरोधी पवन के चलने आदि अशकुन होते देखकर उसकी शांति के लिये दशरथ ने अपने गुरु से पूछा कि अब क्या करना चाहिए? इस पर गुरुजी ने कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं है। इसका फल अच्छा ही होगा। यह सुनकर दशरथजी के मन में कुछ ढाढस बँधा।।62।। इसी बीच अचानक एक ऐसा प्रकाश-पुंज सेना के आगे उठता दिखाई दिया, जिसे देखकर सब सैनिकों की आँखें चौंधिया गईं। आँखें मलकर देखने पर वह प्रकाश का पुञ्ज साक्षात् पुरुष के रूप में दिखाई देने लगा।।63।। उस तेजस्वी पुरुष के शरीर पर ब्राह्मण पिता के अंश का सूचक यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था और कन्धे पर क्षत्रिय माता का अंश सूचित करनेवाला धनुष लटक रहा था। इस वेश में वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा हो या चन्दन के पेड़ से साँप लिपटे हों।।64। उन्होंने जिस समय क्रोध से कठोर हृदयवाले और उचित-अनुचित का विचार छोड़ देनेवाले अपने पिता की आज्ञा मानकर अपनी काँपती हुई माता का सिर काट लिया था उस समय उन्होंने पहले तो घृणा को जीत लिया और फिर पृथ्वी को जीत लिया था।।65।। उनके दाएँ कान पर इक्कीस दाने की रुद्राक्ष की माला लटक रही थी मानो वह इक्कीस बार क्षत्रियों के नाश करने की गिनती करने के लिये ही उन्होंने पहन रखी हो।।66।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितम्।
बालसूनुरवलोक्य भार्गवं स्वां दशां च विषसाद पार्थिवः।। 67।।
नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे।
हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः।। 68।।
अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः।
क्षत्त्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम्।। 69।।
तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः।
अङ्गुलीविवरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना।। 70।।
क्षत्त्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात्।। 71।।
मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणोः।
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मनः।।72।।
अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात्।
व्रीडमावहति मे स संप्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि।। 73।।
बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ।
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्त्तिमपहर्त्तुमुद्यतः।। 74।।

जब दशरथजी ने उन परशुराम को देखा, जिन्होंने अपने पिता के मारे जाने पर क्रोध से क्षत्रियों का नाश करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तब दशरथजी को अपनी दशा देखकर बड़ी चिन्ता हुई; क्योंकि उनके पुत्र अभी बच्चे ही थे।।67।। उनके पुत्र और परशुराम दोनों में राम नाम था। इसलिये जैसे गले के हार और सर्प दोनों में रहनेवाली मणि आनन्द भी देती है और भय भी, वैसे ही अपने पुत्र और परशुराम दोनों में आए हुए रामनाम से उन्हें भय भी हुआ और आनन्द भी।।68।। दशरथजी अभी कहते ही रह गए कि आपके सत्कार के लिये यह अर्घ्य है; वह अर्घ्य है किन्तु परशुरामजी ने उधर ध्यान भी न देकर क्षत्रियों को जलानेवाली अपनी टेढ़ी चितवन से राम को देखा।।69।। युद्ध के लिए उद्यत और मुट्ठी में धनुष पकड़कर उँगलियों से बाण चढ़ाते हुए परशुरामजी ने अपने आगे निडर खड़े हुए राम से कहा।।70।। मेरे पिता का वध करके क्षत्रियों ने मुझसे शत्रुता मोल ले-ली है। उन्हें बहुत बार मारकर मुझे कुछ शान्ति मिली थी। पर जैसे डंडे से छेड़ देने पर साँप फुफकार उठता है, वैसे ही तुम्हारा पराक्रम सुनकर मेरे शरीर में भी आग लग गई है।।71।। जनकजी के जिस धनुष को कोई राजा झुका भी न सका उसी को तुमने तोड़ दिया है। यह सुनकर मैंने यही समझा है कि आज तक जो मैं सबसे बढ़कर बलवान् समझा जाता था वह यश मानो आज नष्ट हो गया हो।।72।। पहले संसार में राम कहने से लोग मुझे ही समझते थे पर ज्यों-ज्यों तुम ऊँचे चढ़ते चले जा रहे हो त्यों-त्यों वह अर्थ तुम्हारे नाम के साथ लगता जा रहा है। यह सब देखकर मुझे लज्जा होने लगी है।।73।। जिस परशुराम के अस्त्र पहाड़ों से टकराकर भी कुण्ठित नहीं होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः।।75।।
विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वरं धनुरभाजि यत्त्वया।
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्।।76।।
तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया सङ्गमय्य सशरं विकृष्यताम्।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया।।77।।
कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम।
ज्यानिघातकठिनांगुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलिः।।78।।
एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः।
तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम्।।79।।
पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः।।80।।
तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च बलिनाधिरोपितम्।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां धूमशेष इव धूमकेतनः।।81।।

उसके दो ही शत्रु आज तक समान अपराध करनेवाले हुए हैं, उनमें पहला तो था सहस्रबाहु जो मेरे पिता से कामधेनु का बछड़ा छीनकर ले गया था और दूसरे हो तुम, जो मेरी कीर्ति छीनने पर तुले बैठे हो।।74।। इसलिये क्षत्रियों का नाश करनेवाला मेरा पराक्रम तब तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा, जब तक मैं तुम्हें जीत न लूँ; क्योंकि अग्नि का प्रताप तभी सराहनीय होता है, जब वह समुद्र में भी वैसे ही भड़कर जले जैसे सूखी घास के ढेर में।।75।। तुम्हें यह समझ रखनी चाहिए कि शिवजी के जिस धनुष को तोड़कर तुम ऐंठ रहे हो, उसकी कठोरता तो विष्णुजी ने पहले ही हर ली थी। इसलिए उसे तोड़कर तुमने कोई वीरता का काम नहीं किया है, क्योंकि जिस वृक्ष की जड़ें नदी की प्रचण्ड धारा ने पहले ही खोखली कर दी हों, उसे वायु के तनिक से झोंके में ही ढह जाने में क्या देर लगती है।।76।। देखो राम! युद्ध तो पीछे होगा, पहले तुम मेरे इस धनुष पर डोरी चढ़ाकर इसे बाण के साथ खींचो। यदि तुम इतना भी कर लोगे, तो मैं समझूँगा कि तुम मेरे ही समान बलवान् हो और मैं इतने से ही हार मानकर लौट जाऊँगा।।77।। और यदि तुम मेरे फरसे की चमकती हुई धार को देखकर डर गए हो, तो अपने उन हाथों को जोड़कर अभय की भिक्षा माँगो जिनकी उँगलियों में धनुष की डोरी की फटकार से व्यर्थ ही घट्टे पड़ गए हैं।।78।। भयङ्कर वेशधारी परशुरामजी ने जब यह कहा तो राम ने हँसते-हँसते इस प्रकार वह धनुष हाथ में ले लिया मानो परशुरामजी के वचनों का वही ठीक उत्तर हो।।79।। जैसे ही उन्होंने अपने पिछले जन्मवाला वह धनुष हाथ में लिया वैसे ही उनकी शोभा और भी बढ़ गई, क्योंकि एक तो नया बादल यों ही सुन्दर लगता है, फिर यदि उसमें इन्द्र धनुष भी बन जाये तो उसकी शोभा का कहना ही क्या।।80।। पराक्रमी राम ने उस धनुष की एक छोर पृथ्वी पर टेककर जैसे ही उस पर डोरी चढ़ाई, वैसे ही क्षत्रियों के शत्रु परशुरामजी उसी अग्नि के समान निस्तेज हो गए जिसमें केवल धुआँ भर रह गया हो।।81।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावुभावपि परस्परस्थितौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकराविव।। 82।।

तं कुमामृदुरवेक्ष्य भार्गवं राघवः स्खलितवीर्यमात्मनि।
स्वं च संहितममोघमाशुगं व्याजहार हरसूनसंनिभः।। 83।।

न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि।
शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम्।। 84।।

प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम्।
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यासि मया दिदृक्षुणा।। 85।।

भस्मसात्कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधां ससागराम्।
आहितो जयविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया।। 86।।

तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे।
पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम्।। 87।।

प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम्।
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः।। 88।।

आमने-साामने खड़े हुए राम और परशुराम में से एक का तेज बढ़ गया और दूसरे का घट गया और इस प्रकार वे दोनों ऐसे जान पड़ने लगे जैसे वे सन्ध्या समय के चन्द्रमा और सूर्य हों।।82।। कार्तिकेय के समान तेजस्वी दयालु रामचन्द्रजी ने एक बार निस्तेज परशुरामजी को और फि धनुष पर चढ़े हुए अपने अचूक बाण को देखा और बोले।।83।। —यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है, पर आप ब्राह्मण हैं, इसलिये मैं निर्दय होकर आपको मारूँगा नहीं। पर यह बताइए कि अब इस बाण से मैं आपकी गति रोकूँ या आपका उन दिव्य लोकों की प्राप्ति को नष्ट कर दूँ, जो आपने यज्ञ करके प्राप्त किए हैं।।84।। यह सुनकर परशुरामजी बोले—'यह बात नहीं है कि आपको देखते ही मैं पहचान नहीं पाया हूँ कि आप ही साक्षात् पुरातन पुरुष हैं, किन्तु मैंने यह जानने के लिए आपको कष्ट दिया था कि देखूँ आप विष्णु का कितना तेज लेकर पृथ्वी पर उतरे हैं।।85।। पिता के शत्रुओं का नाश करनेवाले और सागर तक फैली हुई पृथ्वी ब्राह्मणों को दान देनेवाले मुझ परशुराम के लिए आप परम पुरुष के हाथों हारना भी गौरव की ही बात है।।86।। इसलिये आप मेरी गति न रोकिए जिससे मैं पवित्र तीर्थों में आ-जा सकूँ। मुझे भोग की तो इच्छा है नहीं; इसलिये यदि मुझे स्वर्ग न भी मिले तो कुछ दुःख नहीं होगा।।87।। राम ने परशुरामजी का कहना मान लिया और पूरब की ओर मुँह करके बाण छोड़ दिया। यद्यपि परशुरामजी ने बहुत पुण्य किए थे; किन्तु वह बाण सदा के लिये परशुरामजी के स्वर्ग का मार्ग रोककर खड़ा हो गया।।88।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत्।
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये।।89।।
राजसत्त्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः।।90।।
साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे।।91।
तस्मिन्गते विजयिनं परिरभ्य रामं स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम्।
तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः।।92।।
अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्ये कतिचिदवनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शिनीनां कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम्।। 93।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये।
सीता-विवाहवर्णनो नामैकादशः सर्गः।।

तब राम ने परशुरामजी से क्षमा माँगते हुए उनके चरणों में प्रणाम किया; क्योंकि जब कोई पराक्रमी अपने बल से अपने शत्रु को जीत लेता है, तब यदि वह नम्रता भी दिखाये तो उसकी कीर्ति ही बढ़ती है।।89।। परशुरामजी बोले—'आपने मुझे यह दण्ड देकर मेरा बड़ा भारी उपकार किया है। इससे मेरा बड़ा भारी लाभ तो यह हुआ कि आपने क्षत्रिय माता से पाए हुए मेरे रजोगुण को दूर करके मुझे पिता का सत्वगुण प्रदान कर दिया।।90।। मैं अब जाता हूँ। आप देवताओं का जो कार्य करने के लिए आए हैं, वह बिना विघ्न के पूरा हो। राम और लक्ष्मण से यह कहकर परशुरामजी अन्तर्धान हो गए।।91।। उनके चले जाने पर विजयी राम को दशरथजी ने गले से लगा लिया और वे स्नेह में भरकर यह समझने लगे कि राम का दूसरा जन्म हुआ है। इस थोड़ी देर के दुःख के पश्चात् उन्हें ऐसा संतोष मिला, जैसे जंगल की आग से झुलसे पेड़ को वर्षा का जल मिल जाय।।92।। तब शिव के समान राजा दशरथ ने कुछ रातें तो उस मार्ग में बिताई, जहाँ उनके लिए सुन्दर डेरे तने हुए थे। फिर वे उस अयोध्या नगरी में पहुँचे जहाँ सीताजी को देखने के लिए उत्सुक, नगर की सुन्दर स्त्रियों की आँखें झरोखों में कमल के समान उलझी दिखाई पड़ रही थीं।।93।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'सीताजी के विवाह का वर्णन' नाम का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वादशः सर्गः ।।

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान्।
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ।। 1 ।।
तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ।। 2 ।।
सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः।
प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ।। 3 ।।
तस्याभिषेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ।। 4 ।।
सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ।। 5 ।।
तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत्समाः।
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ।। 6 ।।
पित्रा दत्तं रुदन्रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ।। 7 ।।

बारहवाँ सर्ग

राजा दशरथ ने संसार के सब सुख भोग लिए और बूढ़े हो चले। अब उनकी दशा प्रातःकाल के उस दीपक जैसी हो गई थी, जिसका तेल सूख गया हो और वह बुझने ही वाला हो।।1।। उनकी कनपटी के पास बाल पक गए थे, मानो बुढ़ापा भी कैकेयी से शंकित होकर राजा के कान में आकर यह कह रहा हो कि अब राम को राज्य सौंप ही देना चाहिए।।2।। जैसे पानी से सिंचकर पूरे उद्यान के वृक्ष हरे-भरे हो जाते हैं, वैसे ही राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर अयोध्या के लोग फूले नहीं समाए।।3।। पर निष्ठुर कैकेयी ने ऐसा चक्र चलाया कि राज्याभिषेक का सारा उत्सव शोक से तपे हुए राजा दशरथ के आँसुओं से लिप गया।।4।। जब राजा दशरथ ने उस कठोर स्वभावशाली कैकेयी को बहुत मनाया, तब उसने वे दो वर माँगे जिनके लिये राजा दशरथ पहले से ही वचन दे चुके थे। ये दो वर ऐसे ही थे जैसे वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी के छेदों में से दो साँप निकल पड़े हों।।5।। कैकेयी ने एक वर तो यह माँगा कि चौदह वर्ष के लिये राम वन में चले जाएँ और दूसरा यह कि मेरे बेटे भरत को राज्य मिले। पर इस वर माँगने का एकमात्र फल यही निकला कि कैकेयी विधवा हो गई।।6।। जब दशरथजी राम को राजगद्दी दे रहे थे, उस समय राम ने आँखों में आँसू भरकर उसे स्वीकार किया था और जब उनसे कहा गया कि वन चले जाओ, तब राम ने इस आज्ञा को हँसते-हँसते सिर माथे चढ़ा लिया।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।।8।।
स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन्।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः।।9।।
राजाऽपि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम्।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत।।10।।
विप्रोषितकुमारं तद्राज्यमस्तमितेश्वरम्।
रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ।।11।।
अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम्।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः।।12।।
श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः।
मातुर्न केवलं स्वस्या श्रियोऽप्यासीत्पराङ्मुखः।।13।।
ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः।
तस्य पश्यन्ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान्।।14।।
चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः।
लक्ष्म्या निमत्रयांचक्रे तमनुच्छिष्टसंपदा।।15।।

यह देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि राम के मुँह का भाव जैसा राज्याभिषेक के रेशमी वस्त्र पहनते समय था ठीक वैसा ही वन जाने के लिये पेड़ की छाल के वस्त्र पहनते समय भी था।।8।। अपने पिता के वचन सत्य करने के लिए वे सीता और लक्ष्मण के साथ केवल दण्डक-वन में ही नहीं पैठे, वरन् अपने इस सत्यव्यवहार से उन्होंने सज्जनों के मन में भी घर कर लिया।।9।। उनके वियोग में राजा दशरथ को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें मुनि का शाप स्मरण हो आया और उन्होंने समझ लिया कि अब प्राण देकर ही मेरी शुद्धि होगी।।10।। दशरथजी के शत्रु तो ऐसे अवसर की ताक में ही थे। जब उन्होंने देखा कि अयोध्या के राजा स्वर्ग चले गए और राजकुमार भी राज्य छोड़कर चले दिए, तो उन्होंने झट अयोध्या पर धावा बोल दिया।।11।। यह देखकर अयोध्या की अनाथ प्रजा ने उन कुल-मन्त्रियों को भेजकर भरत को उनकी ननिहाल से बुलाया, जिन्होंने अपने आँसू निकलने नहीं दिए थे।।12।। जब भरतजी को अपने पिता की मृत्यु का सब समाचार मिला, तब वे केवल अपनी माँ से ही नहीं वरन् अयोध्या की राज-लक्ष्मी से भी चिढ़ गए।।13।। उन्होंने अपने साथ सेना ली और राम को ढूँढ़ने निकल पड़े। जब मार्ग के आश्रमवासियों ने उन्हें वे वृक्ष दिखाए जिनके तले राम और लक्ष्मण जाते हुए टिके थे, तो उनकी आँखों में आँसू छलक आए।।14।। उन दिनों राम चित्रकूट वन में रहते थे। वहाँ जाकर भरतजी ने उन्हें दशरथजी की मृत्यु का समाचार सुनाया और कहा कि अयोध्या की राजलक्ष्मीजी को मैंने छुआ भी नहीं है, आप ही उसे चलकर सँभालिए।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः।।16।।

तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिणः पितुः।
ययाचे पादुके पश्चात् कर्तुं राज्याधिदेवते।।17।।

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत्पुरीम्।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक्।।18।।

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्।।19।।

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्तयन्।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा।।20।।

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम्।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात्।।21।।

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन्।।22।।

क्योंकि जिस राज्य को बड़े भाई ने स्वीकार नहीं किया, उसे लेना मैं उतना ही बड़ा पाप समझता हूँ जितना बड़े भाई के अविवाहित रहने पर छोटे भाई का विवाह कर लेना।।16।। किन्तु राम अपने स्वर्गीय पिता की आज्ञा से तनिक भी टस से मस नहीं हुए। तब भरतजी ने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे अपनी खड़ाऊँ दे दीजिए जिन्हें मैं आपके स्थान पर रखकर राज्य का काम चलाऊँ।।17।। राम ने अपनी खड़ाऊँ दे दीं। उसे लेकर भरतजी लौटे, तो सही पर अयोध्या में नहीं आए। उन्होंने नन्दिग्राम में डेरा डाला और वहीं से अयोध्या के राज्य की उसी प्रकार रक्षा की मानो अपने भाई की धरोहर सँभाल रहें हों।।18।। इस प्रकार अपने बड़े भाई में भक्ति निभाकर और राजपद को ठुकराकर मानो भरतजी ने अपनी माता के पाप का प्रायश्चित कर डाला।।19।। उधर राम भी सीता और लक्ष्मण के साथ कन्दमूल फल खाते हुए युवावस्था में ही वह व्रत करने लगे जो इक्ष्वाकु वंशवाले बुढ़ापे में किया करते हैं।।20।। एक बार वे थके हुए सीताजी की गोदी में सिर रखे एक ऐसे वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे, जिसकी छाया उन्होंने अपने अलौकिक प्रभाव से बाँध दी थी।।21।। इसी बीच इन्द्र का पुत्र जयन्त कौवा बनकर आया और उसने अपने नखों से सीताजी के स्तनों पर प्रहार किया मानो वह सीताजी के स्तनों पर राम के हाथ से बने हुए नखक्षतों को प्रकट कर अपनी यह बात बता रहा हो कि मेरा काम ही दूसरों का दोष ढूँढ़ना है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः।।23।।
रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भरतागमनं पुनः।
आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ।।24।।
प्रययावातिथेयेषु वसन् ऋषिकुलेषु सः।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः।।25।।
बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता।
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी।।26।।
अनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम्।
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम्।।27।।
संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः।।28।।
स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे।।29।।
तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम्।
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः।।30।।

झट सीताजी ने राम को जगाया। तत्काल राम ने उस पर सींक का बाण छोड़ा। उससे बचने के लिये वह कौवा बहुत इधर-उधर चक्कर काटता रहा, पर जब तक उसने अपनी एक आँख नहीं दे दी तब तक उसे छुटकारा नहीं मिला।।23।। थोड़े दिनों के बाद राम ने चित्रकूट का वह आश्रम छोड़ दिया जहाँ के हरिण उनसे इतने हिलमिल किए थे कि दिन-रात उन्हें ही देखते रहते थे। राम ने इस डर से चित्रकूट छोड़ा कि अयोध्या पास में ही है, ऐसा न हो कि भरत फिर यहाँ पहुँच जाएँ।।24।। जैसे वर्षा के दस नक्षत्रों में ठहरता हुआ सूर्य दक्षिण को घूम जाता है, वैसे ही अतिथि-सत्कार करनेवाले ऋषियों के आश्रमों में टिकते हुए राम भी दक्षिण की ओर बढ़ चले।।25।। यद्यपि कैकेयी ने राम को राजलक्ष्मी से हटा दिया था फिर भी उनके पीछे-पीछे चलनेवाली सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो गुणों के पीछे चलनेवाली साक्षात् लक्ष्मी ही हों।।26।। अत्रि ऋषि के आश्रम में जब वे पहुँचे तब उनकी पत्नी अनसूयाजी ने सीताजी के शरीर में ऐसा सुगन्धित अङ्गराग लगाया कि उसकी पवित्र गन्ध पाकर भौंरे भी जंगली फूलों से उड़-उड़कर उधर ही टूट पड़े।।27।। जैसे चन्द्रमा का मार्ग राहु रोक लेता है, वैसे ही सन्ध्या के बादल के समान लाल रंगवाला विराध राक्षस भी राम का मार्ग रोककर खड़ा हो गया।।28।। जैसे कोई खोटा ग्रह सावन और भादों के महीनों के बीच से वर्षा को ले बीतता है, वैसे ही उस राक्षस ने राम और लक्ष्मण के बीच से सीताजी को हर लिया।।29।। पर राम-लक्ष्मण ने उसे तत्काल मार डाला और यह सोचकर उसे पृथ्वी में गाड़ दिया कि कहीं इसके शरीर की दुर्गन्धि इस देश में न फैल जाय।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव।। 31।।

रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा।
अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम्।। 32।।

सा सीतासंनिधावेव तं वव्रे कथितान्वया।
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः।। 33।।

कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम्।। 34।।

ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिता।
साभूद्रामाश्रयाभूयो नदीवोभयकूलभाक्।। 35।।

संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम्।
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः।। 36।।

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम्।
मृग्या परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहित्वया कृतम्।। 37।।

जैसे अगस्त्यजी की आज्ञा से विन्ध्याचल अपनी मर्यादा में ही रह गया था, वैसे ही राम भी मर्यादापूर्वक पञ्चवटी में रहने लगे।।31।। जैसे धूप से घबराकर कोई नागिन चन्दन के पेड़ के पास पहुँच गई हो, वैसे ही काम से पीड़ित रावण की छोटी बहन शूर्पणखा राम के पास जा पहुँची।।32।। पहले तो उसने अपने कुल का परिचय दिया और फिर सीताजी के सामने ही राम से कहने लगी कि मैं तुम्हें अपना पति मानती हूँ; क्योंकि स्त्रियाँ जब बहुत अधिक कामासक्त हो जाती हैं, तब उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहता कि हमें किस समय क्या करना चाहिए? क्या न करना चाहिए।।33।। कामासक्त शूर्पणखा की यह बात सुनकर साँड़ के समान ऊँचे कन्धोंवाले राम बोले—बाले! मेरा तो विवाह हो चुका है। तुम मेरे छोटे भाई के पास जाओ।।34।। वह झट लक्ष्मण के पास पहुँची। लक्ष्मण ने उससे कहा—तू पहले मेरे बड़े भाई के पास विवाह की इच्छा से जा चुकी है; इसलिये तू मेरी माता के समान है। मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। यह सुनकर वह फिर राम के पास पहुँची। राम और लक्ष्मण के पास आते-जाते उसकी दशा उस नदी के समान हो गई जो बारी-बारी से अपने दोनों तटों को छूती हुई बह रही हो।।35।। जैसे वायु के रुके रहने से शान्त समुद्र का तट चन्द्रमा के निकलने पर हिलोरें लेने लगता है, वैसे ही सीताजी को हँसते देखकर क्षण-भर के लिये सुन्दर रूप धारण करनेवाली वह कुरूपा शूर्पणखा भी एकदम बिगड़ खड़ी हुई।।36।। और बोली—'अच्छा! तुम्हें इस हँसी का फल अभी चखाती हूँ। तुमने वैसे ही मेरा अपमान किया है, जैसे कोई हरिणी किसी बाघिन का अपमान करे। समझी!।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्केनिविशतीं भयात्।
रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत।।38।।
लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम्।
शिवाघोरस्वनां पश्चाद्बुबुधे विकृतेति ताम्।।39।।
पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत्।।40।।
सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया।
अङ्कुशाकारयाङ्गुल्या तावतर्जयदम्बरे।।41।।
प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम्।
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम्।।42।।
मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः।
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम्।।43।।
उदायुधानापततस्तान्दृप्तान्प्रेक्ष्य राघवः।
निदधे विजयाशंसां चापे सीतां न लक्ष्मणे।।44।।
एको दाशरथिः कामं यातुधाना सहस्रशः।
ते तु यावन्त एवाजौ तावाँच ददृशे स तैः।।45।।

सीताजी तो यह सुनते ही डर के मारे राम की ओट में जा छिपीं और शूर्पणखा ने अपने नाम के अनुसार [सूप के समान बड़े-बड़े नखवाला] अपना भयङ्कर रूप प्रकट कर दिखाया।।38।। जब लक्ष्मण ने देखा कि अभी तो यह कोयल के समान मधुर वाणी बोल रही थी और अब सियारिन के समान हुआ-हुआँ कर रही है, तब उन्होंने समझ लिया कि यह स्त्री बड़ी खोटी है।।39।। और यह समझते ही वे झट अपनी कुटिया में गए और वहाँ से तलवार लाकर उन्होंने शूर्पणखा के नाक-कान काट लिए। नाक-कान कट जाने पर वह और भी अधिक कुरूप दिखाई देने लगी।।40।। नकटी-बूची होकर वह आकाश में उड़ी और अंकुश जैसी टेढ़े-मेढ़े नखोंवाली और बाँस जैसे भद्दे पोरोंवाली अपनी उँगलियाँ चमका-चमकाकर राम-लक्ष्मण को धमकाने लगी।।41।। वहाँ से चलकर वह तत्काल जनस्थान में पहुँची और खर आदि राक्षसों को उभाड़ा कि आज पहली बार राम ने इस प्रकार राक्षसों का अपमान किया है।।42।। आगे-आगे नकटी-बूची शूर्पणखा और उसके पीछे-पीछे वे सब राक्षस लड़ने निकल पड़े; पर इस नकटी को आगे करके उन लोगों ने पहले ही अपना शकुन बिगाड़ लिया।।43।। राम ने दूर से देखा कि हाथ में शस्त्र उठाये घमण्डी राक्षस आगे बढ़े चले आ रहे हैं, तो उन्हें विश्वास हो गया कि इन्हें तो हम अकेले अपने धनुष से ही जीत लेंगे।। इसलिये उन्होंने सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंप दिया।।44।। राम अकेले थे और राक्षस सहस्त्रों थे, पर राम इस प्रकार लड़ रहे थे कि वहाँ जितने राक्षस थे, उन्हें उतने ही राम दिखाई पड़ रहे थे।।45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम्।
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः।। 46।।
तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः।
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोद्ययुः।। 47।।
तैस्त्रयाणां शितैर्बाणैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः।
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरं तु पतत्त्रिभिः।। 48।।
तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम्।
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कवन्धेभ्यो न किंचन।। 49।।
सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम्।।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी।। 50।।
राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम्।
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत्।। 51।।
निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः।
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु।। 52।।
रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ।
जहार सीतां पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः।। 53।।

जिस प्रकार सदाचारी पुरुष अपने ऊपर नीच पुरुषों द्वारा लगाया हुआ दूषण या कलङ्क नहीं सह सकते, वैसे ही राम भी युद्ध में दूषण राक्षस का आना नहीं सह सके।।46।। उन्होंने दूषण, खर और त्रिशिरा पर यद्यपि एक-एक करके बाण चलाए तथापि अत्यन्त शीघ्रता से चलाए जाने के कारण वे बाण ऐसे जान पड़ते थे मानो वे एक साथ धनुष से छूटे हों।।47।। वे बाण उनके शरीर को छेद कर इतने वेग से बाहर निकल गए कि उनमें रक्त भी नहीं लग सका, क्योंकि बाण तो उनकी आयु पीने के लिये गये थे, उनका रक्त तो पिया पक्षियों ने।।48।। राम ने अपने बाणों से राक्षसों की पूरी सेना को इस प्रकार काट डाला कि युद्ध-भूमि में राक्षसों के धड़ों को छोड़कर और कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था।।49।। बाण बरसानेवाले राम से लड़कर वह राक्षसों की सेना तो गिद्धों के पंखों की छाया में सदा के लिए सो गई।।50। राम के अस्त्र से मारे हुए उन राक्षसों की मृत्यु का समाचार रावण के पास पहुँचाने के लिये अकेली शूर्पणखा ही बची रही।।51।। बहन का अपमान और खर-दूषण आदि अपने सम्बन्धियों का वध, रावण को इतना अपमानजनक जान पड़ा, मानो राम ने उसके दसों सिरों पर पैर रख दिया हो।।52।। तब उसने मारीच को माया-मृग बनाया और राम-लक्ष्मण को धोखा देकर सीताजी को चुराकर लङ्का में ले गया। मार्ग में गृद्धराज जटायु उससे लड़ा भी पर वह कुछ कर न सका।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथप्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः।।54।।
स रावणहृतां ताभ्यां वचसाचष्ट मैथिलीम्।
आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः।।55।।
तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः।
पितरीवाग्निसंस्कारात्परा ववृतिरे क्रियाः।।56।।
वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः।
मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ।।57।।
स हत्वा बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्।।58।।
इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः।
कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः।।59।।
प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात।
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः।।60।।

राम और लक्ष्मण अब सीता को ढूँढ़ने निकले।। उन्होंने मार्ग में जटायु को पड़े देखा जिसके पंख कट गए थे और जिसके प्राण कण्ठ तक आ गए थे, पर उसने सीता के चुरा ले जाने वाले रावण से लड़कर अपने मित्र दशरथ का ऋण चुका दिया था।।54।। वह राम-लक्ष्मण से बोला कि सीमाजी को रावण ले गया है। जटायु के घावों को ही देखकर यह स्पष्ट था कि वह कितने जी-जान से रावण से लड़ा था।।55।। केवल इतना ही कहकर जटायु बेचारा चल बसा। उसके मरने से राम-लक्ष्मण को उतना ही शोक हुआ जितना उन्हें अपने पिता के मरने पर हुआ था। उसका विधिवत् दाह-संस्कार करके उन्होंने उसका श्राद्ध आदि किया।।56।। वहाँ से वे आगे बढ़े तो उन्हें कबन्ध मिला, जो किसी ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। राम ने उसकी बाँहें काट डालीं जिससे उसका शाप छूट गया और वह फिर देवता हो गया। उसने प्रसन्न होकर सुग्रीव का ठिकाना बताया। इस सुग्रीव के राज्य और उसकी स्त्री को उसका बड़ा भाई छीन ले गया था, इसलिये उसने स्त्री से बिछुड़े हुए राम से शीघ्र ही मित्रता कर ली।।57।। पराक्रमी राम ने बालि को मारकर उसके सिंहासन पर सुग्रीव को वैसे ही बैठा दिया, जैसे कोई वैयाकरण, लिट्र-लुट् आदि लकारों में अस् धातु के बदले भू धातु को बैठा देता है।।58।। सुग्रीव ने जानकारों को आज्ञा दी कि जाओ और जाकर सीताजी की खोज लगाओ। जैसे विरही राम का मन सीताजी की खोज में इधर-उधर भटकता था, वैसे ही वानर भी इधर-उधर घूमकर सीताजी की खोज करने लगे।।59।। मार्ग में जटायु के भाई सम्पाती से उनकी भेंट हुई। उसने बताया कि समुद्र पार लङ्काद्वीप का राजा रावण सीताजी को हर ले गया है। यह सुनकर हनुमानजी उसी प्रकार समुद्र को लाँघ गए, जैसे निर्मोही पुरुष संसार-सागर को पार कर जाता है।।60।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः।। 61।।
तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः।।
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः। 62।।
निर्वाप्य प्रियसंदेशैः सीतामक्षवधोद्धतः।
स ददाह पूरीं लङ्कां क्षणसोढारिनिग्रहः।। 63।।
प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती।
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत्।। 64।।
स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम्।। 65।।
श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्सङ्गमोत्सुकः।
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम्।। 66।।
स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः।
न केवलं भुवः पृष्ठे व्योम्नि संबाधवर्त्मभिः।। 67।।
निविष्टमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः।
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमादिश्य चोदितः।। 68।।

लङ्का में पहुँचकर ढूँढते-ढाढते उन्होंने एक स्थान पर सीता जी को देखा। चारों ओर राक्षसियोंसे घिरी हुई वे ऐसी लग रही थीं, जैसे विषकी लताओं के बीच में संजीवनी बूटी हो।।61।। उनके पास जाकर हनुमान जी ने राम की अँगूठी उन्हें दे-दी, जिसका स्वागत सीता जी ने आनन्द के ठण्डे आँसुओं से किया।।62।। पहले तो उन्होंने रामचन्द्र जी का प्यार-भरा सन्देश सुनाकर सीता जी को ढाढस बँधाया फिर रावण के पुत्र अक्षय को मार डाला और थोड़ी देर तक शत्रुओं के हाथ बन्दी रहकर उन्होंने लङ्का में आग लगा दी।।63।। फिर सीता जी से मिलने की पहचान के लिए उनसे चूड़ामणि लेकर वे राम के पास लौट आए, वह मणि पाकर राम को वैसा ही आनन्द हुआ, मानो साक्षात् सीता जी का हृदय ही स्वयं चला आया हो।।64।। उस मणि को हृदय से लगाकर वे सुध-बुध भूलकर मग्न हो गए। उन्हें उस समय वैसी ही प्रसन्नता हो रही थी मानो स्तन के स्पर्श को छोड़कर सीता जी ही हृदय आ लगी हों।।65।। प्रिया का सन्देश सुनकर राम उनसे मिलने के लिए उतावले हो गए। इस उत्साह में उन्हें लङ्का के चारों ओर का चौड़ा और गहरा समुद्र खाई से भी कम चौड़ा जान पड़ने लगा।।66।। वे वानरों की अपार सेना लेकर शत्रु का संहार करने चल दिये। वह सेना इतनी अधिक थी की पृथ्वी की कौन कहे, आकाश में भी बड़ी कठिनाई से चल पाती थी।।67।। जब राम समुद्र के तटपर पहुँचे तो रावण का भाई विभीषण उनसे मिलने आया, मानो राक्षसों की राजलक्ष्मी ने उसकी बुद्धि में पैठकर यह समझा दिया हो कि अब राम की शरण में जाने पर ही तुम्हारा कल्याण होगा।।68।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः।
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः।। 69।।

स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः।। 70।।

तेनोतीर्य पथा लंकां रोधयामास पिंगलैः।
द्वितीयं हेम प्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः।। 71।।

रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम्।
दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः।। 72।।

पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः।
अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतंगजः।। 73।।

अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्।
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत्।। 74।।

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता।। 75।।

राम ने भी उससे यह प्रतिज्ञा कर ली कि हम तुम्हें राक्षसों का राजा बना देंगे। ठीक भी है; समय पर काम में लाई हुई कूटनीति आगे चलकर अवश्य ही फल देती है।।69।। राम ने वानरों को लगाकर समुद्र पर जो पत्थरों का पुल बँधवाया वह ऐसा जाना पड़ता था, मानो विष्णु को अपने ऊपर सुलाने के लिए शेषनाग ही उतर आए हों।।70।। उस पुल से समुद्र पार करके पीले-पीले वानरों में लंका को चारों ओर से घेर लिया। उनसे घिरी हुई लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो लंका के चारों ओर सोने का एक दूसरा परकोटा बन गया हो।।71।। वहाँ वानरों और राक्षसों में ऐसा भयङ्कर युद्ध होने लगा कि राम और रावण की जय-जयकारों से दिशाएँ फटी जा रही थीं।।72।। उस युद्ध में वानर पेड़ों से मार-मारकर राक्षसों की लोहे की गदाएँ तोड़ रहे थे, पत्थर बरसाकर उनके मुद्गर पीसे डाल रहे थे, अपने नखों से ऐसे भयंकर घाव कर रहे थे कि शस्त्रों से भी वैसे घाव नहीं हो सकते थे और लड़ाकू हाथियों के सिरों पर बड़ी चट्टानें पटक-पटकर उनका कचूमर निकाल देते थे।।73।। उसी समय एक राक्षस ने माया से राम का सिर बनाकर सीता जी के आगे ला पटका। उसे देखते ही सीता जी मूर्छित होकर गिर पड़ी। पर जब त्रिजटा ने उन्हें समझाया कि यह सब राक्षसी माया है तब सीता जी की जान में जान आई।।74।। यह जानकर उनका शोक तो छूट गया कि मेरे पतिदेव जीवित हैं पर उन्हें इस बात की बड़ी लज्जा हुई कि पति के मारे जाने का समाचार सुनकर भी मैं जीवित रह गई, मरी नहीं।।75।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ।
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत्।।76।।
ततो विभेद पौलस्त्यःशक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम्।
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णधिहृदयः शुचा।।77।।
स मारुतिसमानीतमहौषधिहृतव्यथः
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः।।78।।
स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम्।
मेघस्येव शरत्कालो न किंचित्पर्यशेषयत्।।79।।
कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः।
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनःशिलः।।80।।
अकालेबोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां वेशितः।।81।।
इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु।
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव।।82।।
निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात्।
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः।।83।।

उसी समय मेघनाद ने राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लिया, पर तभी गरुड़ ने आकर वह फंदा काट दिया, पाश में बँधने का वह क्षण भरकर क्लेश भी उन दोनों भाइयों को ऐसा जान पड़ा मानो स्वप्न में हुआ हो।।76।। तब मेघनाद ने खींचकर लक्ष्मण की छाती में शक्ति-बाण मारा। लक्ष्मण गिर गए और उन्हें देखकर राम का हृदय शोक से फटने से लगा।।77।। हनुमान जी तत्काल हिमालय पर जाकर संजीवनी बूटी ले आए, जिसके पिलाते ही लक्ष्मण की सारी पीड़ा जाती रही और फिर उठकर उन्होंने अपने बाणों से अनगिनत राक्षसों को मारकर लंका में कुहराम मचा दिया।।78।। जैसे शरद् ऋतु के आने पर न तो बादल का गर्जन रह पाता है न इन्द्रधनुष ही दिखाई देता है, वैसे ही लक्ष्मण भी मेघनाद के गर्जन को और इन्द्रधनुष के समान उसके धनुष को क्षण भर में ले बीते।।79।। उधर सुग्रीव ने कुम्भकरण की नाक-काटकर उसे शूर्पणखा के समान बना दिया था और वह राम का मार्ग रोककर उसी प्रकार खड़ा हो गया जैसे कोई मैनसिल की चट्टान आ गिरी हो।।80।। राम के बाणों से घायल होकर वह गिरकर मर गया, मानो राम के बाणों ने उसे यह कहकर गहरी नींद में सुला दिया हो कि तुमको नींद बड़ी प्यारी है, तुम्हारे भाई ने व्यर्थ ही तुम्हें असमय में जगा दिया।।81।। और भी बहुत से राक्षस करोड़ों वानरों की सेना के बीच में इस प्रकार गिर रहे थे, मानो राक्षसों के रक्त की नदी में रणक्षेत्र से उठी हुई धूल उड़ रही हो।।82।। जब रावण ने सब काण्ड सुना तो वह अपने राजभवन से निकलकर रण-भूमि में चला आया। उसने मन में ठान लिया था कि आज संसार में या तो रावण नहीं रहेगा या राम ही नहीं रहेंगे।।83।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च वरूथिनम्।
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरंदरः।।84।।

तमाधूतध्वजपटं व्योमगंगोर्मि वायुभिः।
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः।।85।।

मातलिस्तस्य माहेन्द्रमामुमोच तनुच्छदम्।
यत्रोत्पलदलक्लैव्यमस्त्राणयापुः सुरद्विषाम्।।86।।

अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं चिरात्।
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत्।।87।।

भुजमूर्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः।
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः।।88।।

जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम्।
रामस्तुलितकैलासमरातिं वह्वमन्यत।।89।।

तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासंगमशंसिनि।
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे।।90।।

रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः।
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम्।।91।।

रावण को रथपर और राम को पैदल देखकर इन्द्र ने अपना वह रथ भेजा जिसमें पीले रंग के घोड़े जुते हुए थे।।84।। उस रथ की ध्वजा आकाश-गंगा की लहरों के पवन से फड़फड़ाती चल रही थी, इन्द्र के सारथी मातलिका हाथ थामकर रामचन्द्र जी भी उस पर चढ़ गए।।85।। मातलि ने उन्हें इन्द्र का वह कवच भी पहना दिया, जिस पर राक्षसों के अस्त्र ऐसे लगते थे मानो वे अस्त्र न हों वरन् कमल के फूल हों।।86।। आज बहुत दिनों पर राम और रावण ने एक-दूसरे को देखा। आज उन दोनों को अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिला और इस प्रकार तीनों लोकों में जो राम-रावण युद्ध प्रसिद्ध था वह आज सफल हो गया।।87।। राक्षसों के मारे जाने के कारण रावण अकेला रह गया था, फिर भी अपनी बहुत-सी बाहों और बहुत-से मुखों के कारण वह ऐसा जान पड़ता था मानो उसके साथ बहुत-से राक्षस हों।।88।। जिस रावण ने इन्द्र आदि लोकपालों को जीत लिया था, जिसने अपने सिर काट-काटकर शिवजी को चढ़ा दिए थे और जिसने कैलास पर्वत को उँगलियों पर टाँग लिया था, उसे देखकर राम ने समझ लिया कि वह कुछ कम पराक्रमी नहीं है।।89।। रावण ने बड़ा क्रोध करके राम की उस दाहिनी भुजा में बाण मारा जो फड़कती हुई शुभ सूचना दे रही थी कि अब सीता के प्राप्त होने में देर नहीं है।।90।। राम ने जो बाण छोड़ा वह रावण की छाती को छेदकर पाताल को चला गया मानो पाताला-वासियों को रावण के मरने की शुभ सूचना देने पहुँच गया हो।।91।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचसैव तयोर्वाक्यमस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः।
अन्योन्यजयसंरम्भो ववृधे वादिनोरिव।। 92।।

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याभूद्द्वयोरपि।
जयश्रीरन्तरा वेदिर्मत्तवारणयोरिव।। 93।।

कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयोर्मुक्तां सुरासुरैः।
परस्परशरव्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे।। 94।।

अयःशंकुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे।
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमक्षिपत्।। 95।।

राघवो रथमप्राप्तां तामाशां च सुरद्विषाम्।
अर्द्धचन्द्रमुखैर्बाणैश्चिच्छेद कदलीसुखम्।। 96।।

अमोघं संदधे चास्मै धनुष्येकधनुर्धरः।
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम्।। 97।।

तद्व्योम्नि शतधा भिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम्।
वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम्।। 98।।

वे दोनों क्रोध करके एक दूसरे को ललकराते हुए और अस्त्र को शस्त्र से काटते हुए लड़ रहे थे। उनका क्रोध उसी प्रकार बढ़ता जा रहा था, जैसे विजय के लिए शास्त्रार्थ करने वालों का क्रोध बढ़ता चलता है। ।92।। कभी राम अधिक पराक्रम दिखाते थे और कभी रावण। इसलिये वियजश्री कभी राम के पास जाती थी तो कभी रावण के पास। उसकी दशा वैसे ही हो गई, जैसे लड़ते हुए मतवाले हाथियों के बीच की दीवार की हो। ।93।। जब राम बाण चलाते या रावण का वार रोकते तब देवता उनके ऊपर फूल बरसाने लगते और जब राम पर रावण प्रहार करता या उनका वार रोकता तब असुर उस पर फूल बरसाने लगते। पर राम के अस्त्र रावण के ऊपर बरसते हुए फूलों को ऊपर ही तितर-बितर कर देते और रावण के बाण राम पर बरसने वाले फूलों को आकाश में ही छितरा देते थे। ।94।। रावण ने लोहे की कीलों से जुड़ी हुई वह शतघ्नी रामपर चलाई जो यमराज के अस्त्र कूटशाल्मली के समान भयंकर थी। ।95।। उस समय राक्षसों को पूरी आशा हो गई कि इस अस्त्र से तो राम अवश्य ही समाप्त हो जाएँगे। पर राम ने उस शतघ्नी को रथ तक पहुँचने के पहले ही तिरछी नोकवाले बाणों से ऐसी सरलता से टुकड़े-टुकड़े कर डाला मानो केला छील रहे हों। यह देखकर राक्षसों की रही-सही आशा भी भंग हो गई। ।96।। राम कोई साधारण धनुषधारी नहीं थे। उन्होंने रावण को मारने के लिए वह बाह्मास्त्र चलाया जो कभी व्यर्थ ही नहीं जाता। वह ऐसा था मानो सीता के शोक रूपी काँटों को निकालने की अचूक औषधि हो। ।97।। वह ब्रह्मरस्त्र आकाश में जाते ही दस भागों में फट गया और उसमें से जो आग निकली वह ऐसी थी मानो फणों का चमकीला मण्डल लिए हुए शेषनाग ही उतर आए हों। ।98।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धादपातयत्।
स रावणशिरः पङ्क्तिमज्ञातव्रणवेदनाम्।। 99।।
बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः।
रराज रक्षःकायस्य कणठच्छेदपरम्परा।। 100।।
मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि।
मनो नातिविशश्वास पुनः संधानशङ्किनाम्।। 101।।
अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपानामनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय।
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात।। 102।।
यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्यामापृच्छ्य राघवमनुष्ठितदेवकार्यम्।
नामाङ्करावणशराङ्कितकेतुयष्टिमूर्ध्वं रथं हरिसहस्त्रयुजं निनाय।। 103।।
रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरुढःप्रतस्थे पुरीम्।। 104।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंश महाकाव्ये
रावणवधो नाम द्वादशः सर्गः।।

मन्त्र से चलाए हुए उस ब्रह्मास्त्र से राम ने रावण के दसों सिरों को आधे पल में काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया, जिससे रावण को तनिक भी कष्ट न हुआ।।99।। रावण के सिर कटकर गिरते हुए ऐसे अच्छे लगते थे जैसे चंचल लहरों में प्रातःकाल के सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभा देता है।।100।। रावण के कटे हुए सिरों को देखकर भी देवताओं को विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं ये फिर न जुड़ जाएँ।।101।। जिस राम पर राज्याभिषेक का जल छिड़का जाने वाला था, उन्हीं के सिर पर देवताओं ने वे फूल बरसाए, जिनकी सुगन्ध पाकर मद से भीगी हुई पाँखों वाले भौंरे दिशाओं के हाथियों मद बहाने वाले कपोलों को छोड़कर रस लेने उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े।।102।। राम ने धनुंष की डोरी उतार दी; क्योंकि उन्होंने देवताओं का काम पूरा कर दिया था। इन्द्र के सारथी मातलि उनसे आज्ञा लेकर अपना सहस्त्रों घोड़ोंवाला रथ लेकर स्वर्ग में चला गया। उस रथ की ध्वजा पर अभी तक रावण के नाम खुदे हुए बाणों के चिह्न पड़े हुए थे।।103।। राम ने रावण की राज्यश्री विभीषण को सौंप दी और फिर सीता जी को अग्नि में शुद्ध करके सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण के साथ अपने बाहुबल से जीते हुए पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या की ओर लौट चले।।104।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रावण-वध' नाम का
बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। त्रयोदशः सर्गः ।।

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच।। 1 ।।
वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्।। 2 ।।
गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः।। 3 ।।
गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन।। 4 ।।
तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा।। 5 ।।
नाभिप्ररूढाम्बुरूहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते।। 6 ।।

तेरहवाँ सर्ग

जिसका गुण शब्द है, उस आकाश में विमान पर चढ़े जाते हुए गुणी तथा राम कहलाने वाले विष्णु भगवान्, समुद्र को देखकर सीता जी से एकान्त में बोले।।1।। हे सीते! इस फेनसे भरे हुए समुद्र को तो देखो, जिसे मेरे बनाए हुए पुलने मलय पर्वत तक दो भागों में वैसे ही बाँट दिया है जैसे सुन्दर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाशगंगा दो भागों में बाँट देती है।।2।। [जानती हो समुद्र कैसे बना है!] जब हमारे पूर्वज महाराजा सगर अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे, तब कपिल जी उनका घोड़ा पाताल लोक में चुरा ले गए। उस समय सगरजी के पुत्रों ने घोड़े की खोज करने के लिए जो सारी पृथ्वी खोद डाली थी, उसी से यह इतना लम्बा-चौड़ा समुद्र बन गया है।।3।। [यह समुद्र है बड़े काम का।] देखो इसी में से सूर्य की किरणें जल खींचती हैं और [पृथ्वी पर बरसाती हैं।] इसी में रत्न बढ़ते हैं, अपने शत्रु बड़वानल को भी यह अपनी गोद में पालता है और सुखकारी प्रकाश वाला चन्द्रमा भी इसी में से उत्पन्न हुआ है।।4।। यह अपना रूप भी सदा बदलता रहता है और यह इतना बड़ा है कि दसों दिशाओं में दूर तक फैला हुआ है। इसलिये जैसे विष्णु भगवान् के विषय में नहीं कहा जा सकता कि वे कैसे और कितने बड़े हैं? वैसे ही इसके विषयों में भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह ऐसा है या इतना बड़ा है।।5।। जब आदिपुरुष विष्णु भगवान् तीनों लोकों का संहार कर चुकते हैं, तब यहीं पहुँचकर योगनिद्रा में सोते हैं और इनकी नाभि से निकले हुए कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी सदा इनके गुण गाया करते हैं।।6।। जैसे शत्रुओं के डर से राजा लोग किसी धर्मात्मा और तटस्थ राजा की शरण लेते हैं वैसे ही उन सैकड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते।।7।।
रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहुर्तवक्त्राभरणं वभूव।।8।।
मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृतिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः।।9।।
ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्धैरूर्ध्वं वितन्चन्ति जलप्रवाहान्।10।।
मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्र फेनान्।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्।।11।।
वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः।।12।।
तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्।।13।।
प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्त्तवेगाद्भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः।।14।।

पहाड़ों ने भी इसकी शरण ली थी जिनके पंख इन्द्र ने काट दिए थे और जिनका अभिमान इन्द्र ने चूर कर दिया था।।7।। सृष्टि के आरम्भ में जब वराह भगवान् पृथ्वी को पाताल ले जा रहे थे उस समय प्रलय से बढ़ा हुआ स्वच्छ जल क्षण भर के लिए उनका घूँघट बन गया था।।8।। देखो! दूसरे लोग केवल स्त्रियों का अधरपान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते। पर समुद्र इस बात में भी औरों से बढ़कर है क्योंकि जब नदियाँ ढीठ होकर चुम्बन के लिए अपना मुख इसके सामने बढ़ाती हैं तब यह बड़ी चतुराई से अपना तरंग-रूपी अधर उन्हें पिलाता और उनका अधर स्वयं पीता है।।9।। यह देखो ये बड़े-बड़े मगरमच्छ अपना मुँह खोलकर मछलियों को लिए-दिए समुद्र का जल पी जाते हैं और फिर मुँह बन्द करके अपने सिर के छेदों से पानी की जलधाराएँ छोड़ने लगते हैं।।10।। इन मगरमच्छों के अचानक उठने से समुद्र की फटी हुई फेन को तो देखो। इनके गलों पर क्षण भर के लिए लगी हुई यह फेन ऐसी दिखाई देती है मानो इनके कानों पर चँवर टँगे हुए हो।।11।। तट पर बड़ी-बड़ी लहरों जैसे दिखाई देने वाले ये साँप तट का वायु पीने के लिए बाहर निकल आए हैं। पर जब सूर्य की किरणों से इनके मणि चमक जाते हैं तब ये पहचान में आ जाते हैं।।12।। देखो, लहरों के झोंकों में तुम्हारे अधरों के समान लाल-लाल मूँगे की चट्टान से टकरा जाने से इन जीवित शंखों के मुँह छिद गए हैं और उस पीड़ा से ये बेचारे बड़ी कठिनाई से इधर-उधर चल पा रहे हैं।।13।। वह देखो! काले-काले बादल समुद्र का पानी लेने आए हैं और समुद्र की भँवर के साथ-साथ बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं। इस समय यह समुद्र ऐसा जान पड़ रहा है मानो मन्दराचल फिर इसे मथे डाल रहा हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा।। 15।।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि।
मामक्षमं भण्डानकालहानेर्वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णाम्।। 16।।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः।
प्राप्ता मुहूर्त्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम्।। 17।।

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः।। 18।।

क्वचित्पथा संचरते सुराणां कचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम्।। 19।।

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते।। 20।।

करेण वातायनलम्बितेनस्पृष्टस्त्वया तन्वि कुतूहलिन्या।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते।। 21।।

देखो! दूर होने से पहिए की हाल के समान बहुत पतला और ताड़ तथा तमाल आदि वृक्षों के कारण नीला दिखाई देने वाला समुद्र-तट ऐसा जान पड़ रहा है जैसे चक्र की धार पर जंग लग गया हो।।15।। हे सुलोचने! समुद्र तट का वायु तुम्हारे मुख पर केतकी का पराग छिड़क रहा है, मानो वह यह जान गया है कि मैं तुम्हारे अधरों को चूमने ही वाला हूँ और अब अधिक शृंगार की बाट नहीं देखूँगा।।16।। यह देखो हम लोग विमान के तीव्र चलने के कारण क्षण भर में ही समुद्र के उस तट पर पहुँच गए जहाँ बालू पर सीपों के फैल जाने से मोती बिखरे पड़े हैं और फलों के भार से सुपारी के पेड़ झुके खड़े हैं।।17।। हे कदली के समान जाँघों, वाली मृगनयनी! पीछे की ओर तो देखो! दूर निकल आने से यह जंगलों से भरी हुई भूमि ऐसी दिखाई पड़ रही है, मानो समुद्र में से अभी अचानक निकल पड़ी हो।।18।। देखो! मैं जिधर चाहता हूँ उधर ही यह विमान घूम जाता है। यह कभी तो देवताओं के मार्ग में उड़ता चलता है, कभी बादलों के मार्ग में पहुँच जाता है और कभी पक्षियों के मार्ग में उड़ने लगता है।।।19।। ऐरावत के मद की गन्ध में बसा हुआ और आकाशगंगा की लहरों से ठण्ढाया हुआ आकाश का वायु तुम्हारे मुख पर दोपहर की गर्मी से छाए हुई पसीने की बूँदों को पीता चल रहा है।।20।। हे चण्डी! जब तुम खेल-खेल में अपना हाथ विमान से बाहर निकाल कर बादल को छू लेती हो, तब तुम्हारे मणिबन्ध के चारों ओर बिजली कौंध जाती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो बादल तुम्हारे हाथ में दूसरा कंगन पहना रहे हो।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममणलानि।।22।।
सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्।।23।।
त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः।।24।।
मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समवोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।।25।।
एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्वरलेखि शृङ्गम्।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्।।26।।
गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमधर्मोद्गतकेसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे।।27।।
पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि।।28।।
आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः।।29।।

नीचे देखो! रावण आदि राक्षासों के मारे जाने की बात सुनकर इन चीरधारी तपस्वियों ने समझ लिया है कि अब कोई खटका नहीं रहा है इसलिये वे नई कुटिया बना-बनाकर, तोपवन में सुख से बसने लगे हैं।।22।। यह वही स्थान है जहाँ तुम्हें ढूँढते हुए मैंने पृथ्वी पर पड़ा हुआ तुम्हारा बिछुआ देखा था। चुपचाप पड़ा हुआ वह ऐसा लग रहा था मानो तुम्हारे चरणों से अलग हो जाने के दुःख से चुप हो गया हो।।23।। हे भीरु! रावण तुम्हें जिस मार्ग से ले गया था उस मार्ग की लताएँ मुझ पर कृपा करके तुम्हारे जाने के मार्ग बताना चाहती थीं पर बोल न सकने के कारण उन्होंने अपनी पत्तोंवाली डालियाँ ही उधर झुकाकर मुझे तुम्हारा ठिकाना दिया था।।24।। हरिणियों ने भी जब देखा कि मुझे तुम्हारे जाने के मार्ग का ज्ञान नहीं है तब वे अपनी उठी हुई पलकों वाली आँखें दक्षिण दिशा की ओर करके मुझे मार्ग समझाने लगी थीं।।25।। देखो! यह जो आगे माल्यवान् पर्वत की ऊँची चोटी दिखाई देती है, यहाँ जब बादलों ने नया जल बरसाना आरम्भ किया, उस समय तुम्हारे न रहने से मेरी आखें भी जल बरसाने लगी थीं।।26।। उस समय वर्षा के कारण सरोवरों में उठी हुई सोंधी गन्ध, अधखिली मञ्जरियों वाले कदम्बके फूल और भौरों के मनोहर स्वर तुम्हारे बिना मुझे बहुत कष्ट दे रहे थे।।27।। जब बादल गरजते थे और गुफाओं में उसकी प्रतिध्वनि होने लगती थी तब, मुझे वे दिन स्मरण हो आए जब बादलों के गर्जन से डरकर तुम मुझसे लिपट जाती थीं। तुम समझ नहीं सकतीं कि माल्यवान् पर्वत पर वे पावस के दिन मैंने कितने कष्ट से बिताए।।28।। वर्षा के कारण वहाँ की धरती से जो भाप, निकली, उससे कंदलियों की कलियाँ खिल उठीं और वैसी ही लाल-लाल हो गई जैसे विवाह के समय हवन का धुआँ लगने से तुम्हारी आँखें लाल हो गई थीं। अतः उन्हें देखकर तुम्हारा स्मरण हो आने से मैं बेचैन हो जाता था।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ।। 30 ।।
अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामामन्योन्दत्तोप्लकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ।। 31 ।।
इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिवुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ।। 32 ।।
अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम् ।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारपङ्क्तयस्त्वाम् ।। 33 ।।
एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ।। 34 ।।
अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगावतेन विनीतखेदः ।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ।। 35 ।।
भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ।। 36 ।।

देखो! बहुत ऊँचाई से देखने के कारण और बेंत के जंगलो से ढके होने के कारण पम्पासरोवर का जल ठीक-ठीक दिखाई नहीं दे रहा है। फिर भी जल पर तैरते हुए सारस कुछ-कुछ दिखाई पड़ जाते हैं। ।30।। हे प्रिये! यहाँ चकवा-चकवी के जोड़े एक दूसरे को प्रेमपूर्वक कमल का केसर दिया करते थे, तुमसे इतनी दूर होने के कारण उन्हें देख-देखकर मैं यही सोचा करता था कि मुझे भी ये दिन कब देखने को मिलेंगे। ।31।। तुम्हारे वियोग में मैं ऐसा पागल हो गया था कि एक दिन स्तन के समान गुच्छों वाली इस पतली अशोक लता को मैंने यह समझकर गले लगाना चाहा था कि तुम ही हो। जैसे ही मैं उसे गले लगाने चला तो मेरा यह पागलपन देखकर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे वहाँ से हटा लिया। ।32।। यह देखो! विमान के नीचे लटकती हुई सोने की किङ्किणियों का शब्द सुनकर गोदावरी नदी के सारसों की पाँतें ऊपर उड़ीं चली आ रही हैं मानो ये तुम्हारी अगवानी करने आ रही हों। ।33।। आज बहुत दिनों पर इस पंचवटी को देखकर मेरा जी खिल उठा है। वह देखो! वहाँ के मृग ऊपर सिर उठाकर विमान को देख रहे हैं। यहीं पर तो तुमने अपनी पतली कमर पर घड़े ले-लेकर आम के वृक्षों को खींचकर पाला-पोसा था। ।34।। मुझे वे दिन स्मरण हो रहे हैं, जब मैं यहाँ एकान्त में बेंत की झोंपड़ी में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का ठण्डा वायु मेरे आखेट की थकावट मिटाया करता था। ।35।। यह देखो! आगे ही उन तपस्वी अगस्त्य ऋषिका आश्रम है, जिन्होंने केवल भौंहे तानकर ही राजा नहुष को इन्द्र पद से नीचे ढकेल दिया था। ये ही जब उदय होते हैं तब वर्षा का सब गँदला जल स्वच्छ कर देते हैं। ।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेताग्निधूमाग्रमनिर्न्धकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा।।37।।
एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्।।38।।
पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्।।39।।
तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।।40।।
हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः।।41।।
अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि।।42।।
एषोऽक्षमालावयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते।।43।।
वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्त्रार्चिषि संनिधत्ते।।44।।

उसी यशस्वी ऋषिकी, गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों से हवन सामग्री की गन्ध से मिला हुआ वह धुआँ विमान के पास तक उठा चला आ रहा है, जिसे सूँघते ही मेरी आत्मा पवित्र हो गयी है।।37।। हे भामिनी! यह आगे शातकर्णी ऋषि का पञ्चाप्सर नाम का क्रीडा-सरोवर है जो चारों ओर काले-काले जङ्गलोंसे घिरा हुआ दूर से दिखाई पड़ रहा है मानो बादलों के बीच में कुछ-कुछ दिखाई देने वाले चन्द्रमा हों।।38।। पहले ये महर्षि तपस्या करते समय मृगों के साथ घास चरा करते थे। इनकी ऐसी तपस्या देखकर इन्द्र को यह भय हुआ कि कहीं ये हमारा इन्द्रासन न छीन लें, इसलिए इनका तप डिगाने के लिए इन्द्र ने एक साथ पाँच अप्सराओं का जाल इन पर फेंका और ये बेचारे फँस गए।।39।। यह जो नाच-गाना सुनाई दे रहा है, यह जल के भीतर बने हुए उन्हीं के भवन का है। वही के मृदङ्ग की ध्वनि आकाश में पुष्पक-विमान की छतरी से टकराकर गूँज रही है।।40।। यह जो चार अग्नियों के बीच में और ऊपर सूर्य की किरणों से तपते हए तपस्वी बैठे हैं इनका नाम तो सुतीक्ष्ण [अर्थात् बड़ा तीखा] है पर ये हैं बड़े सीधे।।41।। इनके तप से डरकर इन्द्र ने इनके पास भी अप्सराओं को भेजा। वे मुसकरा-मुसकराकर इन पर तिरछी चितवन चलाती थीं और किसी न किसी बहाने अपनी मेखला भी उघाड़कर इन्हें दिखा देती थीं, पर उनकी यह सब चटक-मटक इन्हें न लुभा सकी।।42।। देखो! वे मुझे देखकर रुद्राक्ष की माला बँधी हुई, मृगों को सहलाने वाली और कुश उखाड़ने वाली अपनी दाहिनी भुजा उठाकर मेरा स्वागत कर रहे हैं।।43।। ये मौन रहते हैं इसलिये केवल सिर हिलाकर ही इन्होंने मेरे प्रणाम को स्वीकार किया है। विमान के बीच में आ जाने से जो इनकी दृष्टि सूर्य से अलग हो गई थी वह फिर इन्होंने सूर्य में लगा ली है।।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।
चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्।। 45।।
छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्टसंभाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थित सुपुत्रेष्विव पादपेषु।। 46।।
धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः कुकुद्मानिव चित्रकूटः।। 47।।
एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः।। 48।।
अयं सुजातोऽनुगिरिं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते।। 49।।
अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम्।
वनं तपःसाधनमेतदत्रेराष्कृितोदग्रतरप्रभावम्।। 50।।
अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्।। 51।।

यह आगे शरणागत की रक्षा करने वाले अग्निहोत्री शरभङ्ग ऋषिका तपोवन है, जिन्होंने बहुत दिनों तक अग्नि को समिधा से तृप्त करके अन्त में अपना पवित्र शरीर भी उसमें हवन कर दिया था।।45।। जैसे सुपुत्र अपने पिता के धर्म का पालन करते हैं, वैसे ही अतिथि-सेवा का काम उनके बदले ये आश्रम के वृक्ष करते हैं जिनकी छाया में बैठकर पथिक अपनी थकावट दूर करते हैं और जिनमें बड़े मीठे-मीठे फल भी लगते हैं।।46।। हे सुन्दरी! मस्त साँड़ के समान यह चित्रकूट पर्वत मुझे बड़ा सुहावना लग रहा है। इसकी गुफा ही इसका मुख है, इससे निकलने वाली जल की धारा का शब्द ही साँड़ की डकार है, इसकी चोटी ही इसकी सींगे हैं और उस पर छाए हुए बादल ही मानो सींगों पर लगी हुई कीचड़ हैं।।47।। यह लो मन्दाकिनी आ गई। इसका जल कैसा स्वच्छ और धीरे-धीरे बह रहा है। दूर होने के कारण ये कितनी पतली दिखाई दे रही है। चित्रकूट पर्वत के नीचे बहती हुई ये ऐसी जान पड़ती है, मानो पृथ्वी-रूपी नायिका के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई हो।।48।। पहाड़ के ढाल पर जो तमाल का वृक्ष दिखाई दे रहा है, यह वही है जिसकी कोंपल का कर्णफूल बनाकर मैंने तुम्हारे कान में पहनाया था और जो तुम्हारे जौ के अंकुर के समान पीले गालों पर लटकता हुआ बड़ा सुन्दर लगता था।।49।। यह आगे अत्रि मुनिका तपोवन है, जहाँ के सिंह आदि पशु बिना मारे-पीटे ही ऐसे सीधे हो गए हैं किसी से कुछ बोलते ही नहीं। यह तपोवन इतना प्रभावशाली है कि यहाँ बिना फूल आए ही वृक्षों में फल लग जाते हैं।।50।। अत्रि की पत्नी अनसूया जी ऋषियों के स्नान के लिए उन त्रिपथगा गंगा जी को यहाँ ले आई हैं जिसमें से सप्तर्षिगण स्वर्ण कमल चुना करते हैं और जो शिवजी के सिर पर माला के समान सुन्दर लगती है।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणममी समध्यासितवेदिमध्याः ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ।। 52 ।।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ।। 53 ।।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ।। 54 ।।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिभुर्वश्चन्दनकल्पितेव ।। 55 ।।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ।। 56 ।।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ।। 57 ।।

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्यनुत्यजां नास्तिशरीरबन्धः ।। 58 ।।

इस आश्रम के वृक्षों के तले वेदियों पर तपस्वी लोग वीरासन लगा-लगाकर ध्यान करते हैं और यहाँ के वृक्ष भी वायु न चलने के कारण ऐसे स्थिर खड़े हैं मानो वे भी योग साध रहे हों। ।52।। यह काला-काला वही वट का पेड़ है, जिसकी तुमने मनौती मानी थी। इसमें जो लाल-लाल फली हैं उनसे यह पेड़ ऐसा लग रहा है जैसे नीलम के ढेर में बहुत से लाल भरे हों। ।53।। हे सुन्दरी! देखो यमुना की साँवली लहरों से मिली हुई, उजली लहरों वाली गंगा जी कैसी सुन्दर लग रही हैं? कहीं तो ये चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई माला-जैसी लगती हैं, कहीं, नीले और श्वेत कमलों की मिली हुई माला-जैसी दिखाई पड़ रही हैं। ।54।। कहीं साँवले रंग के हंसों से मिले हुए उजले रंग के राजहंसों की पाँत के समान शोभा दे रही है, कहीं श्वेत चन्दन से लिप्त हुई पृथ्वी पर बीच-बीच में काले अगर जैसी लग रही हैं। ।55।। कहीं-कहीं ये वृक्ष के नीचे की उस चाँदनी के समान लगती है, जिसके बीच-बीच में पत्तों की छाया पड़ी हो और कहीं-कहीं पर शरद् ऋतु के उन उजले बादलों के समान जान पड़ती है। जिनके बीच-बीच में नीला आकाश झाँक रहा हो। ।56।। और कहीं पर भस्म पुते हुए शिवजी के शरीर के समान दिखाई पड़ रही हैं जिस पर काले-काले सर्प लिपटे हुए हों। ।57।। समुद्र की इन दो पत्नियों अर्थात् गंगा-यमुना के संगम में जो स्नान करके पवित्र होते हैं, वे तत्वज्ञानी न होने पर भी संसार के बन्धनों से छूट जाते हैं। ।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति।। 59।।

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु, यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।। 60।।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि।। 61।।

यां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तरकोशलानाम्।। 62।।

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव।। 63।।

विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः।। 64।।

श्रद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे।। 65।।

यह आगे वही निषादराज गुह का नगर है, जहाँ मैंने मुकुटमणि उतारकर जटा बाँधी थी और जिसे देखकर सुमन्त्र यह कहकर रोने लगे थे कि हे कैकेयी! तेरी इच्छा सफल हो गई।।59।। जैसे ऋषि लोग कहते हैं कि अव्यक्त से [अर्थात् प्रकृति से] बुद्धि उत्पन्न हुई वैसे ही यह सरयू नदी भी उस मानसरोवर से निकली हैं, जिसके कमलों का पराग यक्षों की स्त्रियाँ अपने स्तनों में लगाती हैं।।60।। यह नदी इच्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी अयोध्या से लगी हुई बहती है। इसके तट पर जहाँ तहाँ यज्ञों के खम्भे गड़े हुए हैं जिनमें बाँधकर पशुओं की बलि दी जाती थी। अश्वमेघ करने के अन्त में सूर्यवंशी राजाओं ने इसमें स्नान किया जिससे इसका जल पवित्र हो गया है।।61।। मैं इस नदी का बड़ा आदर करता हूँ, क्योंकि यह उत्तर कोशल के राजाओं की धाय है। इसी के बालू में खेल-खेलकर वे सब पलते हैं और इसी का मीठा जल पीकर पुष्ट होते हैं।।62।। माननीय महाराज दशरथ से बिछुड़ी हुई मेरी माता के ही समान यह सरयू अपने ठंडे वायु वाले तरंग-रूपी हाथ उठा रही है, मानो इतने ऊँचे से ही मुझे गले लगाना चाहती हो।।63।। देखो! लाल सन्ध्या के समान जो धूल पृथ्वी से उठ रही है उससे जान पड़ता है कि हनुमान जी से मेरे आने का समाचार सुनकर भरत जी सेना लेकर मेरा स्वागत करने आ रहे हैं।।64।। खर-दूषण आदि राक्षसों को मारकर मैं जब लौटा था, उस समय जैसे लक्ष्मण ने तुम्हें मेरे हाथ में सुरक्षित रूप से सौंप दिया था, वैसे ही अब मैं अवधि पूरी करके जो लौटा हूँ, तो जान पड़ता है कि सज्जन भरत मुझे सुरक्षित राज्यलक्ष्मी सौंप देंगे।।65।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति।। 66।।
पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्।। 67।।
एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभिरुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः।। 68।।
तस्मात्पुरःसरविभीषणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः।
यानादवातरददूरमहीतलेन मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः।। 69।।
इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य स भ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके।। 70।।
श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्।
अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातैर्वार्तानियोगमधुराक्षरया च वाचा।। 71।।
दुर्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता।
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे।। 72।।

वल्कलवस्त्र पहने, पैदल चलते हुए हाथों में पूजा की सामग्री लिए मन्त्रियों के साथ भरत मेरे ही पास आ रहे हैं। देखो, इनके आगे-आगे वशिष्ठ जी चल रहे हैं और पीछे-पीछे सेना चली आ रही है।।66।। जैसे किसी युवा पुरुष की गोद में कोई सुन्दर स्त्री आकर बैठ जाय और वह उससे भोग न करके तलवार की धार पर चलने के समान कठोर, इन्द्रियों को वश में रखने का व्रत कर ले, वैसे ही भरत ने भी पिता की दी हुई राज्यलक्ष्मी को भोग करने की शक्ति रहते हुए भी मेरे कारण उसका भोग न करके कठिन असिधार व्रत का पालन किया।।67।। जब राम ऐसा कह रहे थे, उसी समय राम की इच्छा को ही विमान का चालक मानकर वह विमान आकाश से नीचे उतर आया और भरत जी के पीछे चलने वाली सारी जनता आँख फाड़-फाड़कर उन्हें देखने लगी।।68।। सेवा में चतुर सुग्रीव के हाथों के सहारे स्फटिक मणियों से जड़ी हुई सीढ़ी से रामचन्द्र जी विमान से उतरे और विभीषण आगे-आगे मार्ग दिखाते चले।।69।। विनीत राम ने पहले इक्ष्वाकुवंश के गुरु वशिष्ठ जी को प्रणाम किया। फिर अर्घ्य ग्रहण करके आँखों में आँसू भरकर उन्होंने पहले भरत जी को छाती से लगा लिया फिर उनके उस मस्तक को सूँघा, जिसने राम की भक्ति के कारण राज्याभिषेक को भी अस्वीकार कर दिया था।।70।। फिर उन वृद्ध मन्त्रियों से मिले जो मूँछ और डाढ़ी बढ़ जाने से ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे घने बरोह वाले वट के वृक्ष हों। राम ने प्रेम-भरी आँखों से मधुर भाषा में उनसे कृपा पूर्वक कुशल-मंगल पूछा।।71।। भरत जी से सुग्रीव का परिचय देते हुए राम ने कहा कि ये वानरों और भालुओं के सेनापति हैं और बड़े गाढ़े दिनों में हमारे काम आए हैं। फिर विभीषण का परिचय देते हुए कहा कि ये पुलस्य-कुल में उत्पन्न हुए विभीषण हैं। ये युद्ध के समय हमारे आगे बढ़-बढ़कर शत्रुओं पर प्रहार करते थे। यह सुनकर भरत जी ने लक्ष्मण को छोड़कर पहले उन्हीं दोनों का स्वागत किया।।72।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनमुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन।। 73।।

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान्।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते।। 74।।

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैर्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः।। 75।।

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताकमध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्यस्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम्।। 76।।

तत्रेश्वरेणा जगतां प्रलयादिवोर्वी वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धृतां धृतिमर्यीं भरतो ववन्दे।। 77।।

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य।। 78।।

तब भरत जी लक्ष्मण से मिले और प्रणाम के लिए झुका हुआ लक्ष्मण का सिर उठाकर मेघनाद के प्रहारों से कठोर हुई उनकी छाती को अपनी भुजाओं से दबाते हुए उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।।73।। राम के कहने से वानरों और भालुओं के सेनापति मनुष्यों का वेश बना-बनाकर हाथियों पर चढ़ गए। उन हाथियों के मस्तक से मद की धारा बह रही थी, इसलिये उन पर चढ़ते समय उनको वही आनन्द मिला मानो झरनों वाले पहाड़ों पर ही चढ़े हुए हों।।74।। राम की आज्ञा से विभीषण और उनके साथी भी रथों पर चढ़ गए। वे रथ यद्यपि मनुष्यों ने बनाए थे फिर भी वे इतने सुन्दर थे कि राक्षासों की माया से बनाए हुए रथ भी उनकी सुन्दरता के आगे फीके पड़ गये थे।।75।। जैसे बुध और बृहस्पति का साथ होने से विशेष दर्शनीय चन्द्रमा सन्ध्या को बिजली वाले बादलों पर बैठता है, वैसे ही राम जी भरत और लक्ष्मण के साथ पताकाओं से सजे हुए और इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान पर चढ़ गए।।76।। जैसे आदि वराहने प्रलय से पृथ्वी को उबार लिया था, जैसे वर्षा बीतने पर शरद ऋतु बादलों से चाँदनी छीन लेती है, वैसे ही राम ने रावण-रूपी संकट से जिसे उबार लिया था, उस विमान में बैठी हुई सीता जी को भरत जी ने जाकर प्रणाम किया।।77।। सीता जी के जिन पवित्र चरणों ने रावण की प्रणय-प्रार्थना को दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया था, उन पर जब भरत जी ने बड़े भाई की भक्ति के कारण बढ़ी हुई जटावाला अपना सिर रखा तो इन दोनों ने आपस में मिलकर एक-दूसरे को पवित्र कर दिया।।78।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवनमुदारमध्युवास।। 79।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघवंशे महाकाव्ये
दण्डकात्प्रत्यागनो नाम त्रयोदशः सर्गः।।

आगे-आगे अयोध्या की जनता चल रही थी और पीछे-पीछे वह पुष्पक विमान धीरे-धीरे चला जा रहा था, जिस पर राम बैठे हुए थे। इस प्रकार आधे कोस तक चलकर उन्होंने अयोध्या के उस सुन्दर उपवन में डेरा जमाया, जिसे पहले से ही शत्रुघ्न ने भली-भाँति सजा दिया था।।79।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'दण्डक वन से लौटना' नाम का तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्दशः सर्गः ।।

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने।
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ।। 1 ।।
उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ।
विस्पष्टमस्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ।। 2 ।।
आनन्दजः शोकजमश्रु-वाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो विभेद।
गङ्गसरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ।। 3 ।।
ते पुत्रयोर्नैऋतस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ।
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामतेयताम् ।। 4 ।।
क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ।। 5 ।।
उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्त्ता शुचिना तवैव।
कृच्छं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ।। 6 ।।
अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः।
निर्वर्तयामासुरमात्यवृद्धास्तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः ।। 7 ।।

चौदहवाँ सर्ग

उस उपवन में पहुँचकर राम अपनी माताओं से मिले, जो उसी प्रकार उदास लग रही थीं जैसे वृक्ष के कट जाने पर उसके सहारे चढ़ी हुई लताएँ मुरझा जाती है।।1।। पराक्रमी राम और लक्ष्मण ने बारी-बारी से कौशल्या और सुमित्रा को प्रणाम किया। अपने पुत्रों को देखते ही दोनों माताओं की आँखों में आँसू छलक आए इसलिये वे आँख भर उन्हें देख तो नहीं सकीं, पर पुत्रों को प्यार से पुचकारते समय उन्हें उनके स्पर्श पहचान गई।।2।। जैसे गर्मी के दिनों में हिमालय का शीतलजल गंगा और सरयू के गर्मजल को ठंडा कर देता है, वैसे ही उन दोनों नारियों की आँखों से बहे हुए आनन्द के ठंडे आँसुओं ने शोक के गरम आँसुओं को ठंडा कर दिया।।3।। पुत्रों के शरीर के जिन अंगों पर राक्षसों के शस्त्रों के घाव बने थे, वहाँ दोनों माताएँ इस प्रकार सहलाने लगीं मानो घाव अभी हरे ही हों। उस समय अपने पुत्रों की चोटें देखकर वे इतनी व्याकुल हो गईं कि उन्हें वीर पुत्र की माँ कहलाना भी अच्छा नहीं लगा।।4।। मैं ही पति को कष्ट देने वाली कुलक्षणा सीता हूँ, यह कहते हुए सीता जी ने एक-सी भक्ति से स्वर्गवासी ससुर की दोनों रानियों के चरण छुए।।5।। माताओं ने सीता जी को उठाते हुए बड़ी प्यारी और सच्ची बात कही—उठो बेटी! तेरे ही पतिव्रत के प्रभाव से राम और लक्ष्मण इस बड़े भारी संकट से पार हुए हैं।।6।। जिस राज्यभिषेक का आरम्भ माताओं के हर्ष-भरे आँसुओं से हुआ था, उस अभिषेक को सोने के घड़ों में भरे तीर्थों से लाए हुए जल से राम को नहलाकर बूढ़े मन्त्रियों ने पूरा कर दिया।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः।।8।।
तपस्विवेषक्रिययापि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव।
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदिताऽऽसीत्पुनरुक्तदोषा।।9।।
समौलरक्षोहरिभिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः।
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम्।।10।।
सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधूतबालव्यजनो रथस्थः।
धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायसंघात इव प्रवृद्धः।।11।।
प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे।।12।।
श्वश्रूजनानुनिष्ठतचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम्।
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः।।13।।
स्फुरत्प्रभामण्डलमानसूयं सा बिभ्रती शाश्वतमङ्गरागम्।
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्यै संदर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा।।14।।

राक्षसों और वानरों के नायकों ने नदियों, समुद्रों और तालों से जो जल लाकर दिया, वह अभिषेक के समय राम के सिर पर ही बरस रहा था जैसे विन्ध्याचल की चोटी पर बादलों का लाया हुआ जल बरसा करता है।।8।। जो राम तपस्वी के वेश में भी बहुत सुन्दर लगते थे, वे इस समय राजसी वस्त्र पहनकर और भी सुन्दर लगने लगे।।9।। वृद्ध मन्त्रियों, राक्षसों और वानरों को साथ लेकर राम ने अपनी सेना के साथ उस राजधानी अयोध्या में पैर रखा जो चारों ओर से बन्दनवारों से सजाई गई थी, जहाँ के श्वेत भवनों पर धान की खीलें बरस रही थीं और जहाँ के निवासी तुरही आदि बाजों को सुन-सुनकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे।।10।। लक्ष्मण और शत्रुघ्न राम पर चंवर डुला रहे थे और भरत हाथ में छत्र लिए हुए थे। इस प्रकार जब राम अपने भाइयों के साथ अयोध्या में प्रविष्ट हुए तब चारों भाई ऐसे जान पड़ रहे थे मानो साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों उपाय इकट्ठे हो गए हों।।11।। भवनों के ऊपर वायु से छितराया हुआ काले अगर का धुआँ ऐसा लग रहा था मानो वन से लौटकर राम ने अयोध्या पुरी का जूड़ा ही अपने हाथ से खोलकर छितरा दिया हो।।12।। भवनों के झरोखों में हाथ बाँधे दिखाई पड़ने वाली अयोध्या की महिलाओं ने हाथ जोड़कर उन सीता जी को प्रणाम किया, जो उस समय पालकी पर बैठी चल रही थीं और जिन्हें कौशल्या आदि सासों ने बड़े मनोहर ढंग से वस्त्र और आभूषणों से सजा रखा था।।13।। सीता जी के शरीर पर अब भी अमिट कान्ति वाला अंग राग लगा हुआ था जो अनसूया जी ने उनके शरीर में लगा दिया था। उससे अग्नि के समान प्रकाशमान उनका शरीर ऐसा दिखाई पड़ रहा था, मानो पुरवासियों को सीता जी की शुद्धता दिखाने के लिए राम ने उन्हें फिर अग्नि में बैठा दिया हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः।
बाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश।। 15।।
कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः।। 16।।
तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः।
संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन।। 17।।
सभाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत हतस्य शत्रोः।
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वविक्रमे गौरवमादधानम्।। 18।।
प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान्।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः।। 19।।
तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं हृतं सुरारेः सह जीवितेन।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमँस्त।। 20।।
पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः।
धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम्।। 21।।

मित्र-प्रेमी राम ने पहले तो सुग्रीव आदि मित्रों को सब प्रकार की सामग्री से युक्त भवनों में ठहराया और तब वे अपने पिताजी के पूजा घर में गए। वहाँ दशरथ जी का अकेला चित्र देखकर राम की आँखों में आँसू आ गए।।15।। कैकेयी वहाँ उदास बैठी हुई थीं। राम ने हाथ जोड़कर कैकेयी से कहा—माँ! तुम्हारे ही पुण्य के प्रताप से हमारे पिताजी उस सत्य से नहीं डिगे, जिससे स्वर्ग मिलता है। यदि तुम उनसे वरदान न माँगती, तो उन्होंने जो तुम्हें वरदान देने की प्रतिज्ञा की थी वह झूठी हो जाती। यह सुनकर कैकेयी के मन में जो आत्मग्लानि भरी हुई थी कि राम मेरे लिए न जाने क्या सोचते होंगे और मैं उन्हें कैसे मुँह दिखाऊँगी, वह सब जाती रही ।।16।। वहाँ से आकर उन्होंने सुग्रीव और विभीषण आदि मित्रों का भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया। उन लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम जो कुछ चाहते हैं वह झट बिना कहे ही मिल जाता है।।17।। तब राम ने उन अगस्त्य आदि ऋषियों का सत्कार किया, जो उन्हें बधाई देने आये थे। फिर उन ऋषियों से उन्होंने अपने शत्रु रावण के जन्म से मृत्यु तक का यह वृत्तान्त सुना जो उन्हीं का गौरव बढ़ाने वाला था।।18।। ऋषियों के चले जाने पर राम ने उन राक्षसों और वानर-सेनापतियों को विदा किया, जो अयोध्या में इतने आनन्द से रहे कि उन्हें यही न ज्ञात हो पाया कि आधा महीना कब बीत गया? चलते समय सीता जी ने स्वयं अपने हाथों से उनकी पूजा की।।19।। तब राम ने स्वर्ग के फूल के समान पुष्पक विमान को भी कुबेर के पास जाने की आज्ञा दे दी जो सदा इच्छा करते ही उनकी सेवा के लिए आ जाता था और जिसे उन्होंने रावण के प्राण के साथ-साथ उससे छीन लिया।।20।। इस प्रकार पिता की आज्ञा से वनवास की अवधि बिताकर राम ने अपने पिता का राज्य फिर से पाया। जैसा वे धर्म, अर्थ और काम के साथ समान व्यवहार करते थे, उसी प्रकार वे अपने भाइयों के साथ भी समान प्रेम का व्यवहार करते।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत्।
षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु।। 22।।
तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान्।
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री।। 23।।
स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या।। 24।।
तयोर्यथाप्रार्थितमिद्रियार्थनासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपिदण्डकेषु संचिन्त्यमानानिसुखान्यभूवन्।। 25।।
अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण।
आनन्दयित्री परिणेतुरासीदनक्षरव्यञ्जितदोहदेन।। 26।।
तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम्।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्।। 27।।
सा दष्टनीवराबलीनि हिंस्रैः संबद्धवैखानसकन्यकानि।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथीतीरतपोवनानि।। 28।।
तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः।
आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह।। 29।।

जैसे स्वामिकार्तिकेय अपने छः मुखों से छत्रों कृत्तिकाओं का स्तन पीकर समान रूप से प्रेम दिखलाते थे, वैसे ही रामचन्द्र जी भी सभी माताओं को बराबर प्यार करते थे।।22।। वे निर्लोभ थे, इसलिए उन्होंने प्रजा पर कोई कर नहीं लगाया। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में प्रजा धनी हो गई। वे कहीं भी विघ्न आने ही नहीं देते थे, इसलिये सब लोग प्रसन्नता से यज्ञ आदि क्रियायें करने लगे। वे सबको ठीक मार्ग पर चलाते थे, इसलिये सब उन्हें पिता के समान मानते थे और विपत्ति पड़ने पर वे सबकी सहायता करते थे, इसलिये वे प्रजा के पुत्र भी थे।।23।। वे ठीक समय पर प्रजा का काम देख-भालकर सीता जी के साथ रमण भी करते थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो राज्यलक्ष्मी ही राम के साथ रमण करने की इच्छा से सीता का सुन्दर रूप धर लिया हो।।24।। वे दोनों उस भवन में इच्छानुसार विलास करते थे, जिसमें वनवास के समय के चित्र टँगे हुए थे। उन चित्रों को देखकर वनवास के दुःखों का स्मरण करके भी उन्हें सुख ही मिलता था।।25।। धीरे-धीरे सीता जी के नेत्रों की शोभा बढ़ने लगी और उनका मुख पके सरपत के समान पीला पड़ने लगा। इन गर्भ के लक्षणों को देखकर राम बड़े प्रसन्न हुए।।26।। जब उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि सीता जी गर्भिणी हैं तब वे दुबली तथा काली घुण्डी के स्तनों वाली लजीली सीता जी को एकान्त में गोद में बैठाकर पूछने लगे—बताओ, तुम्हें क्या-क्या चाहिए।।27।। सीता जी बोलीं—मैं गंगा जी के तट के उन तपवनों को देखना चाहती हूँ, जहाँ के हिंसक जन्तु माँस न खाकर नीवार ही खाते हैं, जहाँ मेरी सखियाँ तपस्वियों की कन्याएँ रहती हैं और जहाँ कुश की झोपिड़याँ चारों ओर खड़ी हैं।।28।। रामचन्द्रजी ने कहा 'अच्छी बात है। हम तुम्हें तपोवन में अवश्य भेजेंगे।' वहाँ से उठकर वे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः।
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे।। 30।।
स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः।। 31।।
निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः।। 32।।
कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण।
अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे।। 33।।
किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः।। 34।।
निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति-वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत्।
अपिस्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः।। 35।।
स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान्।
कौलीनमात्माश्रयमांचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम्।। 36।।

सेवकों के साथ सुन्दर अयोध्या की छटा निहारने के लिए आकाश से बातें करने वाले अपने ऊँचे राजभवन की छत पर जा चढ़े।।29।। वहाँ से उन्होंने देखा कि राजमार्ग की दुकानें धन-धान्य से भरी हुई हैं, सरयू में नावें चल रही हैं और अयोध्या के उद्यानों में विलासी पुरवासी प्रसन्न होकर विलास कर रहे हैं।।30।। नगरी की यह शोभा देखकर सुन्दर बोलने वाले, सदाचारी और शेषनाग के समान बड़ी-बड़ी बाँहों और जाँघों वाले शत्रुविजयी राम ने अपने भद्रनाम के दूत से पूछा—'कहो भद्र! हमारे विषय में प्रजा क्या कहती है'।।31।। पहले तो भद्र चुप रहा, पर जब राम बार-बार उससे पूछने लगे, तब वह बोला—'हे नरश्रेष्ठ! जनता आपकी सब बातों की प्रशंसा करती है, किन्तु आपने राक्षस के घर में रहने वाली देवी सीता को फिर से ग्रहण कर लिया है, उसे लोग अच्छा नहीं समझते।।32।। अपनी पत्नी पर लगाए हुए इस भीषण कलंक को सुनकर सीतापति राम का हृदय वैसे ही फट गया, जैसे घन की चोट से तपाया हुआ लोहा फट जाता है।।33।। वे मन में सोचने लगे कि अब दो ही उपाय हैं या तो मैं इस बात को अनसुनी ही कर दूँ और टाल जाऊँ या फिर निर्दोष पत्नी को सदा के लिये छोड़ दूँ। उस समय उनका चित्त हिंडोला बना हुआ था, वे निश्चय ही नहीं कर पा रहे थे कि इन दोनों में क्या करना चाहिए क्या नहीं।।34।। पर उस कलंक को मिटाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं था। इसलिये उन्होंने निश्चय कर लिया कि सीता को त्याग करके ही यह कलंक मिटाना चाहिए; क्योंकि यशस्वियों को अपना यश अपने शरीर से भी अधिक प्यार होता है फिर स्त्री आदि भोग की वस्तुओं की तो बात ही क्या।।35।। उदास मुँह से राम ने भाइयों को बुलाया तो वे भी उनकी दशा देखकर सन्न रह गए। अपने भाइयों से राम बोले—।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम्।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः पयोदवातादिव दर्पणस्य।। 37।।
पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकंस्थाणुमिव द्विपेन्द्रः।। 38।।
तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव।। 39।।
अवैमि चैनामनघेति किंतु लोकापवादो बलवान्मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनानारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।। 40।।
रक्षोबधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः सवैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणिकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः।। 41।।
तदेष सर्गः करुणार्द्रचितैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्वृतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः।। 42।।
इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम्।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा।। 43।।

'यद्यपि मैं सदाचारी होने के कारण पवित्र हूँ फिर भी जैसे भाप पड़ने से स्वच्छ दर्पण भी धूँधला हो जाता है, वैसे ही देखो, सूर्यवंशी राजर्षियों के कुल में मेरे कारण कैसा कलंक लग रहा है।।37।। जैसे पानी की लहरों के ऊपर तेल की बूँद फैल जाती है वैसे ही इस समय घर-घर में मेरी निन्दा फैल रही है। इसलिये जैसे हाथी अपने अलान से खीझ कर उसे उखाड़ने की चेष्टा करता है, वैसे ही मैं भी अपने इस कलंक को अब नहीं सह सकता।।38।। इस समय यद्यपि सीता को पुत्र होने वाला है, तो भी अपने कलंक को मिटाने के लिए मैं सब मोह तोड़कर उसे वैसे ही छोड़ दूँगा जैसे पिता की आज्ञा से मैंने राज्य छोड़ दिया था।।39।। मैं जानता हूँ कि वह निर्दोष है, पर बदनामी सत्य से अधिक बलवती होती है। देखो! निर्मल चन्द्र-बिम्ब के ऊपर पड़ी हुई पृथ्वी की छाया को लोग चन्द्रमा का कलंक कहते हैं और झूठा होने पर भी सारा संसार इसे ही ठीक मानता है।।40।। तुम यह कहोगे कि यदि ऐसा ही था तो राक्षसों को क्यों मारा? उसका उत्तर यह है कि सीता को छुड़ाने के लिये मैंने जो राक्षसों को मारा वह मेरा प्रयत्न सीता को निकाल देने से बेकार नहीं कहा जायेगा; क्योंकि वह तो मैंने अपनी स्त्री के हरण का उन राक्षसों से बदला लिया है। क्योंकि जब कोई साँप पैर के नीचे दब जाता है, तब वह रक्त के लोभ से थोड़े ही डँसता है, वह तो बदला लेने के लिये ही डँसता है।।41।। इसलिये यदि तुम लोग इस कलंक के बाण को मेरे हृदय से निकालकर मुझे जीवित रखना चाहते हो, तो केवल सीता की दशा पर दया करके उसका पक्ष लेकर तुम मेरे इस निश्चय का विरोध मत करो।।42।। जब भाइयों ने देखा कि राजा इतनी निठुराई करना चाहते हैं, तब भाइयों में से न तो कोई उनका समर्थन ही कर सका, न विरोध ही।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश।। 44।।
प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्।। 45।।
स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत्।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।। 46।।
अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरंगैः।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे।। 47।।
सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्।। 48।।
जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन।। 49।।
सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरबाह्यैः।। 50।।

तीनों लोकों में प्रसिद्ध यशस्वी, अपनी बात के पक्के राम ने जब देखा कि लक्ष्मण उनकी आज्ञा मानने को तत्पर हैं, तब वे लक्ष्मण से कहने लगे–'लक्ष्मण! तुम बड़े अच्छे हो।' और यह कहकर उन्हें एकान्त में ले गए और बोले–।।44।। 'तुम्हारी गर्भिणी भाभी तपोवन देखना चाहती हैं इसलिये तुम उन्हें इसी बहाने से रथ पर ले जा कर वाल्मीकि जी के आश्रम में छोड़ आओ'।।45।। लक्ष्मण ने सुन ही रखा था कि पिता की आज्ञा पाकर परशुराम जी ने अपनी माता को वैसे ही निर्दयता के साथ मार डाला, जैसे कोई अपने शत्रु को मारे। इसलिये उन्होंने पिता के समान राम की आज्ञा सिर चढ़ा ली, क्योंकि बड़ों की आज्ञा में मीन-मेख निकालना ठीक नहीं।।46।। सीता जी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई कि लक्ष्मण हमें तपोवन दिखाने ले जा रहे हैं। लक्ष्मण जी उन्हें ऐसे रथ पर चढ़ाकर ले चले, जिसे स्वयं सुमन्त्र हाँक रहे थे और जिसके घोड़े ऐसे सधे हुए थे कि रथ के चलते समय गर्भिणी सीता को तनिक भी हचक नहीं लगने पाती थी।।47।। मनोहर प्रदेशों में से रथ पर जाती हुई सीता जी यह सोचकर बड़ी प्रसन्न हुईं कि मेरे प्राणप्रिय सदा मेरे मन की ही बात करते हैं। वे क्या जानती थीं कि इस समय वे मेरे लिये मनोरथ पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के बदले उस असिपत्र के वृक्ष के समान कष्टदायक हो गए हैं जिसके पत्ते तलवार के समान पैने होते हैं।।48।। लक्ष्मण ने सीता जी से मार्ग में कुछ भी नहीं बताया कि तुम पर क्या विपत्ति आने वाली है पर सीता जी के दाहिने नेत्र ने फड़क कर आगे आने वाली विपत्ति की सूचना दे ही दी।।49।। यह अपशकुन होते ही उनका मुख उदास हो गया और वे मन ही मन मनाने लगीं कि भाइयों के साथ राजा सुख से रहें, उन पर कोई आँच न आये।।50।। मार्ग में गंगा जी पड़ीं। उनमें जो लहरें उठ रही थीं, वे बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता सीता को वन में छोड़ने के लिए ले जाते हुए लक्ष्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन्।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात्।। 51।।
रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य।
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः।। 52।।
अथ व्यवस्थापितावाक्कथंचित्सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः।
औत्पातिको मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार।। 53।।
ततोऽभिषंगानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम।। 54।।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत्।। 55।।
सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।। 56।।
न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुः खभाजं पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द।। 57।।
आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः।
निघ्नस्य मे भर्तृ निदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः।। 58।।

से मानो हाथ हिलाकर कह रही थीं कि ऐसा न करो, ऐसा न करो।।51।। गंगा जी के तट पर पहुँचकर सारथी ने बागडोर खींच ली। सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले लक्ष्मण ने सीता जी को रेती पर उतार लिया और केवट ने जो नाव लाकर दी, उस पर चढ़कर सीता जी के साथ गंगा जी से भी पार हो गए और अपनी उस प्रतिज्ञा से भी पार हो गए जो उन्होंने सीता को गंगा पार छोड़ने के लिए राम से की थी।।52।। पार पहुँचकर लक्ष्मण ने आँसू रोक कर, रुँधे हुए गले से सीता जी को राजा की आज्ञा इस प्रकार सुनाई जैसे कोई भयंकर बादल ओले बरसा रहा हो।।53।। जैसे लू लगने से लता के फूल झड़ जाते हैं और वह सूखकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है, वैसे ही इस अपमानजनक बात को सुनकर सीता के आभूषण भी गिर पड़े और वे भी अपनी माँ पृथ्वी की गोद में गिर पड़ीं।।54।। उस समय पृथ्वी ने सीता जी को मानो दुविधा के कारण अपनी गोद में नहीं लिया कि इक्ष्वाकु-वंशी सदाचारी पति इस प्रकार सीता जी को अचानक क्यों छोड़ देंगे।।55।। मूर्छा आ जाने से उन्हें उस समय तो दुःख नहीं हुआ, पर जब वे मूर्छा से जगीं तब उनके हृदय में बड़ी व्यथा हुई। लक्ष्मण ने प्रयत्न करके उनकी मूर्छा दूर की, यह बात उन्हें मूर्छा से भी अधिक कष्ट देने वाली जान पड़ी।।56।। वे इतनी साध्वी थीं कि निरपराध पत्नी को निकालने वाले अपने पति को उन्होंने कुछ भी बुरा-भला नहीं कहा; वरन् बार-बार वे अपने भाग्य को ही कोसने लगीं।।57।। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया और वाल्मीकि का आश्रम दिखाकर कहा—देवी! मैं पराधीन हूँ। इसलिये स्वामी की आज्ञा से मैंने आपके साथ जो कठोर व्यवहार किया है उसे आप क्षमा कीजिए।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम्।।59।।
श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति।।60।।
वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।।61।।
कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मपि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः।।62।।
उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती।।63।।
निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात्।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने।।64।।
किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः।।65।।
साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।।66।।

सीता जी उठीं और लक्ष्मण से बोली! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम बहुत दिन तक जियो; क्योंकि जैसे इन्द्र के छोटे भाई विष्णु सदा अपने बड़े भाई की आज्ञा मानते हैं, वैसे ही तुम भी अपने बड़े भाई की आज्ञा मानने वाले हो।।59।। तुम जाकर सभी सासों से मेरा प्रणाम कहकर निवेदन करना कि मेरे गर्भ में आपके पुत्र का तेज है। इसलिये आप लोग हृदय से उसकी कुशल मनाते रहिएगा।।60।। और राजा से जाकर मेरी ओर से कहना कि आपने अपने सामने ही मुझे अग्नि में शुद्ध पाया था, इस समय अपयश के डर से जो आपने मुझे छोड़ दिया है, वह क्या उस प्रसिद्ध कुल को शोभा देता है, जिसमें आपने जन्म लिया है।।61।। पर नहीं आप तो सबकी भलाई करने वाले हैं, आप अपने मन से हमारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। यह सब मेरे पूर्वजन्म के पापों का ही फल है।।62।। जान पड़ता है कि कुछ समय पहले आप जिस राजलक्ष्मी का तिरस्कार करके मेरे साथ वन में चले गए थे, वह राज्यलक्ष्मी मुझ से रुष्ट हो गई और वह आपके घर में मेरा प्रतिष्ठा-पूर्वक रहना देख नहीं सकी।।63।। पिछली बार आपकी कृपा से मैंने वनवास के समय बहुत-सी ऐसी तपस्विनियों को अपने यहाँ आश्रय दिया था, जिनके पतियों को राक्षसों ने सता रखा था। अब आप ही बताइये कि आपके रहते हुए मैं किस मुँह से उन्हीं तपस्विनियों की आश्रिता होकर रहूँगी।।64।। यदि मेरे गर्भ में आया हुआ आपका वह तेज बाधा न देता, जिसकी रक्षा करना आवश्यक है, तो मैं आपसे सदा के लिये बिछुड़े हुए अपने प्राण भी छोड़ देती।।65।। पर पुत्र हो जाने पर मैं सूर्य में दृष्टि बाँध कर ऐसी तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी आप मेरे ही पति हों, आपसे मुझे अलग न होना पड़े।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया।।67।।
तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः।।68।।
नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।।69।।
तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।।70।।
तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच।।71।।
जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदहि पितुर्निकेतम्।।72।।
उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे से।।73।।
तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि समानुकम्प्या।।74।।

मनु ने कहा है—राजाओं का धर्म वर्णों और आश्रमों की रक्षा करना है, इसलिये घर से निकाल देने पर भी आप यह समझकर मेरी देखभाल करते रहिएगा कि सीता भी आपकी प्रजा और तपस्विनी है।।67।। यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'मैं सब कह दूँगा'। यह कहकर ज्यों ही वे वहाँ से चलकर आँखों से ओझल हुए कि विपत्ति के भार से व्याकुल होकर सीता जी, डरी हुई कुररी के समान विलाप करके रोने लगीं।।68।। उनका रोना सुनकर मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूल के आँसू गिराने लगे और हरिणियों ने मुँह में भरी हुई घास का कौर गिरा दिया। सीता जी के दुःख से दुखी होकर सारा जंगल रोने लगा।।69।। जिन महाकृपालु वाल्मीकि ऋषि का शोक व्याध के हाथ से मारे हुए क्रौञ्च को देखकर श्लोक बनकर निकल पड़ा था, वे उस समय कुश उखाड़ने निकले थे।।70।। रोने का शब्द सुनकर वे सीता जी की ओर आए। उन्हें देखकर सीता जी ने आँसू पोंछकर चुपचाप उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने गर्भ के चिह्न देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती होवो। आशीर्वाद देकर वे बोले—।।71।। 'बेटी! मैंने योग बल से जान लिया है कि तुम्हारे पति ने झूठे अपयश से डरकर तुम्हें घर से निकाल दिया है। बेटी! यहाँ भी तुम अपने पिता का ही घर समझो और शोक छोड़ दो।।72।। यद्यपि राम तीनों लोकों का दुःख दूर करने वाले हैं, अपनी प्रतिज्ञा के पक्के हैं और अपने मुँह से अपनी बड़ाई भी नहीं करते, फिर भी तुम्हारे साथ जो उन्होंने यह भद्दा व्यवहार किया है, इसे देखकर मुझे उन पर बड़ा क्रोध आ रहा है।।73।। तुम्हारे यशस्वी श्वसुर जी मेरे मित्र थे और तुम्हारे पिता जनक जी भी ज्ञानोपदेश देकर बहुत से विद्वानों को संसार के बंधन से छुड़ाते रहते हैं, तुम स्वयं पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हो फिर तुम में ऐसा दोष ही कौन-सा है जो मैं तुम्हारे ऊपर कृपा न करूँ।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते।। 75।।
अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः।। 76।।
पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम्।। 77।।
पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनन्धयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्।। 78।।
अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय।। 79।।
तामर्पयामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु।। 80।।
ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः।। 81।।

देखो, तपस्वियों के साथ रहते-रहते यहाँ के सब जीव बड़े सीधे हो गए हैं। ये किसी से कुछ कहते-सुनते नहीं। इसी आश्रम में तुम निर्भय होकर रहो। तुम्हारी पवित्र सन्तान जातकर्म आदि संस्कार मैं यहीं करूँगा।।75।। पाप मिटानेवाली जिस तमसा के किनारे तपस्वी लोग सदा सन्ध्या-पूजा करते हैं उसमें स्नान करके तुम उसकी रेती पर देवताओं को बलि दिया करो, इससे तुम्हारा मन प्रसन्न रहेगा।।76।। यहाँ की मुनि-कन्याएँ तुम्हें सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फूल-फल और पूजा के योग्य अन्न लाकर रख दिया करेंगी और मीठी-मीठी बातें करके तुम्हारा मन भी बहलाया करेंगी।।77।। जो जल के घड़े तुमसे उठ सकें, उन्हें लेकर तुम आश्रम के पौधों को प्रेम से सींचा करो। इससे लाभ यह होगा कि बच्चा होने के पहले ही तुम यह सीख जाओगी कि बच्चों से कैसे प्रेम करना चाहिए।।78।। सीता जी ने उनकी कृपा को बहुत सराहा और दयालु वाल्मीकि के साथ उनके आश्रम में चली गई। शाम हो जाने के कारण बहुत से मृग वहाँ वेदी को घेर कर बैठे हुए थे और सिंह आदि जन्तु भी चुपचाप आँख मूँदे पड़े थे।।79।। जैसे अमावस्या जड़ी-बूटियों और लता-वृक्षों को चन्द्रमा की वह सारहीन अन्तिम कला सौंप देती है जिसका अमृत पितर खींच लेते हैं, वैसे ही ऋषि ने भी शोक से व्याकुल सीता को आश्रम की उन तपस्विनियों के हाथ सौंप दिया, जो सीता जी के वहाँ आ जाने से बड़ी प्रसन्न हो गई थीं।।80।। पूजा हो चुकने पर उन तपस्विनियों ने सीता के रहने के लिये एक पत्तों की कुटिया दे दी, जिसमें हिंगोट के तेल का दीया जल रहा था और जिसमें नीचे मृगचर्म बिछा हुआ था।।81।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासंततये बभार।। 82।।
अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय।। 83।।
बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः।। 84।।
निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः।
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास।। 85।।
तामेकभार्यां परिवदभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः।। 86।।

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे।। 87।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
सीतापरित्योगो नाम चतुर्दशः सर्गः।।

वहाँ सीता जी प्रतिदिन स्नान करके बड़े नियम से रहती थीं, ठीक विधि से अतिथियों की पूजा करती थीं, वृक्षों की छाल के कपड़े पहनती थीं और केवल पति का वंश चलाने की इच्छा से ही कन्दमूल खाकर शरीर धारण करती थीं।।82।। सीता जी ने रो-रोकर जो बातें कही थीं, वे सब अयोध्या पहुँचकर लक्ष्मण जी ने राम से यह सोचकर कह दीं कि देखें राम अब भी पछताते हैं या नहीं।।83।। उन बातों को सुनकर ओस बरसाने वाले पूस के चन्द्रमा के समान राम की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे; क्योंकि उन्होंने सीता जी को अपनी इच्छा से नहीं; वरन् कलंक के डर से ही छोड़ा था।।84।। वर्णाश्रम-धर्म के रक्षक बुद्धिमान् राम संसार के सुखों का मोह छोड़कर और शोक को रोक कर भाइयों के साथ अपने भरे-पूरे राज्य का शासन करने लगे।।85।। राजा ने कलंक के डर से अपनी रानी को छोड़ दिया; इसलिये मानो बिना सौत की होकर राज्यलक्ष्मी ही उनके हृदय में सुख से निवास करने लगी।।86।। राम ने सीता को त्याग कर किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया; वरन् अश्वमेघ यज्ञ करते समय उन्होंने सीता जी की सोने की मूर्ति ही अपने बाएँ बैठाया था। जब सीता जी ने अपनी पति की ये बातें सुनीं तब उनके मन में जो छोड़े जाने की कसक थी वह पूर्णतः मिट गई।।87।।

महाकवि श्री कालिदास के रचे हुए रघुवंश महाकाव्य में सीता-परित्याग
नाम का चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चदशः सर्गः

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम्।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्।।1।।
लवणेन विलुप्तेज्यास्तामिस्रेण तमभ्ययुः
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः।।2।।
अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन्न प्रजहुः स्वतेजसा।
त्राणभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम्।।3।।
प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्।
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः।।4।।
ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः।
दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति।।5।।
आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात्।।6।।
यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परंतपः।
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः।।7।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

सीता जी को छोड़ देने पर राजा रामचन्द्र जी ने केवल समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी का ही भोग किया किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया।।1।। इसी बीच एक दिन यमुना-तट पर रहने वाले कुछ तपस्वी, शरणागतवत्सल राम के पास शरण माँगने आए, क्योंकि लवणासुर राक्षस के उपद्रवों के कारण उनकी यज्ञ आदि क्रियाएँ बन्द हो गई थीं।।2।। वे तपस्वी यदि चाहते तो अपने तेज से ही लवणासुर को भस्म कर डालते; किन्तु उन्होंने ऐसा करना ठीक नहीं समझा; क्योंकि जिन लोगों में शाप देकर भस्म करने की शक्ति होती है, वे तपस्या से बटोरे हुए तेज को ऐसे काम में तभी लगाते हैं, जब कोई दूसरा उनका रक्षक न हो।।3।। राम ने उनके विघ्न दूर करने की प्रतिज्ञा की; क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये ही वे संसार में अवतार लेते हैं।।4।। तब मुनियों ने राम को बताया कि जब तक लवणासुर के हाथ में त्रिशूल रहेगा; तब तक उसका हारना कठिन है इसलिये उस पर ऐसे समय आक्रमण करना चाहिए जब उसके हाथ में त्रिशूल न हो।।5।। राम ने उन मुनियों की रक्षा का भार शत्रुघ्न को सौंपा, मानो शत्रुघ्न के हाथों शत्रु का संहार कराकर उनका शत्रुघ्न नाम सच्चा करा देना चाहते हों।।6।। जैसे व्याकरण में कोई अपवाद वाला सूत्र व्यापक नियम वाले सूत्र को भी उलट देता है, वैसे ही रघु के वंश का बच्चा-बच्चा इतना बलवान् होता है कि वह शत्रु को पछाड़ सकता था।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी।
ययौ वनस्थलीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः।।8।।
रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्।।9।।
आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छँस्तपतां वरः।
विरराज रथप्रष्ठैर्बालखिल्यैरिवांशुमान्।।10।।
तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः।
रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने।।11।।
तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम्।
तपःप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः।।12।।
तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती।
सुतावसूत संपन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः।।13।।
संतानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान्।
प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ।।14।।
स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः।
वनात्करमिवादाय सत्त्वराशिमुपस्थितः।।15।।

जब शत्रुघ्न निडर होकर रथ पर चढ़े तब राम ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे सुगन्धित वनों की छटा निहारते हुए चल पड़े।।8।। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न के साथ जो सेना गई, वह वैसे ही व्यर्थ थी जैसे अध्ययन शब्द में 'इङ्' धातु के साथ लगा हुआ 'अधि' उपसर्ग। [क्योंकि 'इङ्' का ही अर्थ अध्ययन होता है, उसमें अधि से कोई विशेषता नहीं बढ़ती।] इसी प्रकार लवणासुर को शत्रुघ्न अकेले जीत सकते थे, चाहे सेना जाती या न जाती।।9।। जैसे रथ पर चढ़े हुए सूर्य को बालखिल्य नाम के ऋषि लोग मार्ग दिखाते चलते है, वैसे ही रथ पर चढ़े हुए शत्रुघ्न को भी मुनि लोग आगे-आगे मार्ग दिखाते चले।।10।। मार्ग में जाते हुए उन्होंने पहली रात तो वाल्मीकि जी के उस आश्रम में बिताई, जहाँ के मृग उनके रथ के शब्द को सुनकर बड़े चाव से उधर देखने लगे थे।।11।। शत्रुघ्न जी के घोड़े भी थक गए थे; इसलिये रुकना आवश्यक हो गया। तब वाल्मीकि जी ने अपनी तपस्या के प्रभाव से आतिथ्य की सब सामग्री जुटाकर शत्रुघ्न का बड़ा सत्कार किया।।12।। उसी रात को इनकी गर्भिणी भाभी सीता ने दो तेजस्वी पुत्रों को उसी प्रकार जन्म दिया, जैसे पृथ्वी अपने राजा के लिये धन और सैन्य उत्पन्न करती है।।13।। भाई के पुत्र होने की बात सुनकर शत्रुघ्न का जी खिल गया और अगले दिन तड़के ही वे हाथ जोड़कर मुनि से आज्ञा लेकर रथ पर चढ़कर आगे बढ़े।।14।। जिस समय वे मधूपघ्न नगर में पहुँचे, उसी समय रावण की बहन कुम्भीनसी का बेटा लवणासुर बहुत से पशुओं को मारकर वन से इस प्रकार लौटा चला आ रहा था, मानो वन ने उसे यह सब भेंट में दिया हो।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालावभ्रु शिरोरुहः।
क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताग्निरिव जंगमः।। 16।।

अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुजः।
रुरोध संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम्।। 17।।

नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम्।
दिष्ट्या त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः।। 18।।

इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया।
प्रांशुमुत्पाटयामास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम्।। 19।।

सौमित्रेर्निशितैर्बाणैरन्तरा शकलीकृतः।
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः।। 20।।

विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम्।
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम्।। 21।।

ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः।
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम्।। 22।।

उसका रंग धुएँ जैसा काला था, उसकी देह से चर्बी की गन्ध निकल रही थी, आग की लपटों के समान उसके बिखरे हुए बाल थे और माँस खाने वाले राक्षस उसके चारों ओर चल रहे थे। इस प्रकार वह उस चिता की अग्नि के समान लग रहा था, जो धुएँ से धुँधली हो, जिसमें से चर्बी की गन्ध निकलती हो, जिसमें से लपटें निकल रही हों और जिसके आसपास कुत्ते और गिद्ध आदि माँस भक्षी पशु-पक्षी घूम रहें हों।।16।। शत्रुघ्न ने देखा कि यह अवसर ठीक है; क्योंकि इसके हाथ में त्रिशूल नहीं है। बस झट उन्होंने लवणासुर को घेर लिया; क्योंकि जो शत्रु के शक्तिहीन होने पर प्रहार करता है, वह अवश्य विजयी होता है।।17।। शत्रुघ्न को देखकर लवणासुर गरज उठा—आज मेरे भोजन की सामग्री कम थी, यह देखकर ब्रह्मा ने डरकर मेरा भोजन पूरा करने के लिये तुम्हें यहाँ भेज दिया।।18।। यह कहकर उसने शत्रुघ्न को मारने के लिए एक बड़ा भारी पेड़ ऐसे धीरे से उखाड़ लिया, जैसे मोथा उखाड़ लिया जाता है।।19।। लवणासुर ने ज्योंही वह वृक्ष शत्रुघ्न पर फेंका त्योंही उन्होंने उसे बीच में ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इस प्रकार वह वृक्ष तो उनके शरीर तक नहीं पहुँच सका केवल उसके फूलों का पराग भर पहुँच पाया।।20।। उस वृक्ष के टूक-टूक हो जाने पर उस राक्षस ने एक ऐसी भयंकर शिला उठाकर शत्रुघ्न पर फेंकी मानो वह यमराज का घूँसा ही हो।।21।। पर शत्रुघ्न ने ऐन्द्र अस्त्र चलाकर उसे चूर-चूर कर दिया।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः।
एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः।।23।।
कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन्।
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम्।।24।।
वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः।
तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः।।25।।
स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः।
भ्रातुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रजिद्वधशोभिनः।।26।।
तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः।।27।।
उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः।
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मधुरां मधुराकृतिः।।28।।
या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता।।29।।
तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम्।
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये।।30।।
सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत्।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि।।31।।

तब वह राक्षस अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाये हुए शत्रुघ्न की ओर झपटा। उस समय वह ऐसा लगा मानो बवंडर से उठाया हुआ कोई ऐसा पहाड़ चला आ रहा हो जिसकी चोटी पर ताड़ का पेड़ खड़ा हो।।23।। वैष्णव बाण लगते ही वह राक्षस पृथ्वी पर जा गिरा। उसके गिरने से ऐसी धमक हुई कि धरती काँप उठी, पर हाँ, आश्रमवासियों का काँपना दूर हो गया।।24।। मरे हुए शत्रु के ऊपर गिद्ध आदि पक्षी टूट पड़े और शत्रुघ्न के ऊपर स्वर्ग से फूलों की वर्षा होने लगी।।25।। शुत्रघ्न जी जब लवणासुर को मार चुके, तब उन्हें यह सन्तोष हुआ कि अब मैं मेघनाद को मारने वाले तेजस्वी लक्ष्मण का सचमुच सगा भाई हूँ।।26।। जब तपस्वियों का काम पूरा हो गया, तब वे शत्रुघ्न की बड़ाई करने लगे। अपनी प्रशंसा सुनकर शत्रुघ्न जी शील के मारे लजा गए।।27।। तब पराक्रमी, संयमी और सुन्दर शत्रुघ्न ने यमुना के किनारे मथुरा नाम की नगरी बसाई।।28।। अच्छा राजा पा जाने से उस नगरी के लोग ऐसे धनी और सुखी हो गए, मानों स्वर्ग में जनसंख्या बढ़ जाने के कारण वहाँ के कुछ लोग यहाँ लाकर बसा दिए गए हों।।29।। शत्रुघ्न ने मथुरा के एक ऊँचे भवन पर चढ़कर उस नीले जल वाली यमुना को देखा जिसमें बहुत से चकवे चहचहा रहे थे। उस समय यमुना उन्हें ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ीं मानो वह सुनहरी फुन्दों वाली पृथ्वी की चोटी हो।।30।। इधर मन्त्रद्रष्टा वाल्मीकि जी ने दशरथ और जनक दोनों के मित्र होने के नाते सीता जी के पुत्रों के जातकर्म आदि सब संस्कार बड़ी विधि से किए।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः।। 32।।
साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्।। 33।।
रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः।
तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः सुतौ।। 34।।
इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः।
तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन्द्विसूनवः।। 35।।
शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते।
मधुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः।। 36।।
भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम्।। 37।।
वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्।
लवणस्य वधात्पौरैरीक्षितोऽत्यन्तगौरवम्।। 38।।
स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम्।
रामं सीतापरित्यागादसामान्यपतिं भुवः।। 39।।

ज्येष्ठ पुत्र लव के उत्पन्न होते समय सीता जी की प्रसव-पीड़ा गाय की पूंछ के बाल से दूर हुई और छोटे के समय कुश से। इसलिये वाल्मीकि जी ने दोनों बच्चों का नाम इन्हीं दोनों वस्तुओं के नाम पर लव और कुश रख दिया।।32।। जब वे बच्चे बड़े हुए तो ऋषि ने उन दोनों को वेद-वेदांग पढ़ाया और फिर उन्हें अपनी रचना आदिकाव्य रामायण का श्लोकगान सिखाया।।33।। उन दोनों बालकों ने अपनी माता के आगे राम का यश गा-गाकर उनका बहुत मन बहलाया।।34।। दाक्षिणात्य, गार्हस्पत्य और आहवनीय इन तीन अग्नियों के समान तेजस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन तीनों भाइयों ने भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ संभोग करके दो-दो पुत्र उत्पन्न किए।।35।। शत्रुघ्न अपने बड़े भाइयों से मिलने को आतुर थे, इसलिये उन्होंने शत्रुघाती और सुबाहु नामक अपने दो विद्वान् पुत्रों को मथुरा और विदिशाका राज्य सौंप दिया।।36।। लौटते समय शत्रुघ्न जी वाल्मीकि के उस तपोवन में नहीं गए जहाँ के मृग शान्त होकर लव और कुश के गीत सुना करते थे, क्योंकि शत्रुघ्न ने यह सोचा कि मेरे जाने पर वाल्मीकि जी अपनी सिद्धियों के बल से मेरे सत्कार की सामग्री जुटाने लगेंगे, जिससे व्यर्थ ही उनकी तपस्या की शक्ति कम होगी।।37।। यहाँ से चल कर जितेन्द्रिय शत्रुघ्न जी उस अयोध्या में पहुँचे, जहाँ की सड़कें उनके स्वागत में बड़ी सुन्दरता से सजाई गई थीं। वे लवणासुर को मारकर लौटे थे; इसलिये पुरवासी उन्हें बड़ आदर से देख रहे थे।।38।। राज-सभा में पहुँचकर उन्होंने देखा कि राम बैठे हुए हैं, बहुत से सभासद उनकी सेवा कर रहे हैं और सीता जी को छोड़ देने पर अब वे एकमात्र पृथ्वी के ही स्वामी रह गए हैं।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः।
कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम्।। 40।।

स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न संततिम्।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात्।। 41।।

अथ जानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम्।
अवतार्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः।। 42।।

शोचनीयासि वसुधे या त्वं दशरथाच्च्युता।
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता।। 43।।

श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः।
न ह्यकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत्।। 44।।

स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम्।
यानं सस्मार कौवेरं वैवस्वतजिगीषया।। 45।।

आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः स रघूद्वहः।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती।। 46।।

राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती।। 47।।

जैसे इन्द्र ने प्रसन्न होकर कालनेमि को मारने वाले विष्णु का स्वागत किया था, वैसे ही जब लवणासुर को मारने वाले शत्रुघ्न जी उन्हें प्रणाम करने को झुके, तब राम ने भी उनका अभिनन्दन किया।।40।। राम के पूछने पर उन्होंने और सब बातें तो कह सुनाईं, पर पुत्र होने की बात नहीं कही; क्योंकि वाल्मीकि जी ने उन्हें कह दिया था कि समय आने पर हम स्वयं दोनों पुत्र राम को सौंप देंगे तुम मत कहना।।41।। थोड़े दिनों के बाद एक दिन उसी जनपद का रहने वाला एक ब्राह्मण अपने मरे हुए नवयुवक पुत्र को राजा की ड्योढ़ी पर गोद से उतारकर यह कह-कहकर फूट-फूटकर रोने लगा।।42।। हे पृथ्वी! तुम दशरथ के हाथ से छूटकर राम के हाथों में आकर बड़े कष्ट में पड़ गई हो। तुम्हारी दशा बड़ी शोचनीय हो गई है।।43।। प्रजापालक राम ने जब उसके शोक की बात सुनी, तब उन्हें बड़ी लज्जा आई; क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के राज्य में किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी।।44।। राम ने उस दुखी ब्राह्मण को यह कहकर ढाढस बँधाया कि तुम थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी तुम्हारा शोक दूर किए देता हूँ, यह कहकर यमराज को जीतने की इच्छा से उन्होंने पुष्पक विमान को स्मरण किया।।45।। जब वे अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर पुष्पक-विमान पर बैठकर चलने लगे, तब यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।46।। हे राजन्! आपकी प्रजा में कुछ [वर्ण-धर्म सम्बन्धी] दोष आ गया है, उसे खोज कर दूर करो, तभी तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण होगा'।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम्।
दिशः पपात पत्त्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना।।48।।

अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम्।
ददर्श कंचिदैक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम्।।49।।

पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः।
आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम्।।50।।

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम्।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे।।51।।

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिञ्जल्कमिव पङ्कजम्।
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत्।।52।।

कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम्।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलंघिना।।53।।

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना।।54।।

कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम्।
ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम्।।55।।

इस विश्वास भरे वचन को सुनकर वेग से चलने के कारण काँपती हुई ध्वजा वाले पुष्पकविमान पर चढ़कर राम यह देखने के लिये सब दिशाओं में चक्कर काटने लगे कि वर्ण-धर्म में कहाँ दोष आया है।।48।। घूमते-घूमते एक स्थान पर राम क्या देखते हैं कि एक पेड़ की शाखा पर उलटा लटका हुआ एक मनुष्य नीचे जलती हुई आग का धुआँ पी-पीकर तप कर रहा है और धुआँ लगने से उसकी आँखें लाल हो गईं हैं।।49।। राम ने उससे पूछा—'आपका नाम क्या है और आप किस वंश के हैं'। वह तपस्वी बोला—''मैं देवपद पाने के लिये तप कर रहा हूँ। मेरा नाम शम्बूक है और मैं शूद्र हूँ'।।50।। शूद्रों को तप करने का अधिकार नहीं है। इसी अनाधिकार काम के करने से प्रजा में पाप फैल रहा था। इसलिये राम ने निश्चय कर लिया कि इसका वध करना ही होगा। उन्होंने हाथ में शस्त्र उठा लिया।।51।। और उसका सिर उसी प्रकार गले पर से काट दिया, जैसे कमल की डंडी पर से कमल उतार दिया गया हो। आग की चिनगारियों से झुलसी दाढ़ी वाला उसका सिर ऐसा लग रहा था जैसे पाले से जली हुई केशर वाला कमलगट्टा हो।।52।। राजा से दण्ड पाने के कारण शूद्र को वह सद्गति मिल गई, जो वह अपने उस कठोर तप से कभी न पाता जैसाकि वह अपने वर्ण-धर्म का उल्लघंन करके चाह रहा था।।53।। जैसे चन्द्रमा शरद् ऋतु से मिलता है, वैसे ही राम को मार्ग में अगस्त्य ऋषि भी मिले।।54।। ऋषि ने उन्हें वे सुन्दर आभूषण दिए जो उन्हें समुद्र ने उस समय दण्ड के रूप में दिए थे, जब उन्होंने समुद्र को पी डाला था।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दधन्मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना।
पश्चान्निववृते रामः प्राक्परासुर्द्विजात्मजः।। 56।।
तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः।
स्तुत्या निवर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि।। 57।।
तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः।
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः।। 58।।
दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः।
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि।। 59।।
उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ।
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः।। 60।।
श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः।
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जायाहिरण्मयी।। 61।।
विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः।। 62।।
अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ।। 63।।

राम ने वे आभूषण लेकर अपनी उन भुजाओं में बाँध लिये जो सीता जी के वन चले जाने से सीता जी के कण्ठ में पड़ने से वंचित रह गये थे। जब राम अयोध्या लौटे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके आने के पहले ही ब्राह्मण का पुत्र जी उठा था।।56।। पुत्र के जी उठने पर उस ब्राह्मण ने राम की बड़ी स्तुति की और पहले जो निन्दा की थी, उसे अपनी स्तुति से धो डाला; क्योंकि राम ने उसके पुत्र को यमराज के हाथों से छुड़ाया था।।57।। कुछ दिन के बाद राम ने अश्वमेघयज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ा। जैसे बादल धान के खेत पर जल बरसाते हैं वैसे ही सुग्रीव-विभीषण आदि ने आकर राम के आगे भेंट के धन की वर्षा कर दी।।58।। यज्ञ के लिये राम ने तीनों लोकों के ऋषियों को आमन्त्रित किया था। वे ऋषि पृथ्वी से ही नहीं, वरन् सप्तर्षि-मण्डल आदि दिव्य स्थानों से भी राम के पास आए।।59।। वे लोग आकर नगर के आस-पास के देहातों में टिके हुए थे। जब वे अयोध्या के चारों द्वारों से नगर में प्रविष्ट हुए, तब चार द्वारों वाली वह अयोध्या ऐसी जान पड़ने लगी मानो तत्काल सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति हो।।60।। सीता के त्याग से राम की एक यह भी प्रशंसा हुई कि राम ने किसी दूसरी स्त्री से अपना विवाह नहीं किया। इसलिये यज्ञ में सोने की सीता बनाकर राम ने अपनी पत्नी के स्थान पर उसे बैठा दिया।।61।। इस प्रकार वह प्रसिद्ध यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसमें आवश्यकता से अधिक सामग्री इकट्ठी हुई थी और विशेषता यह थी कि यज्ञ-क्रिया में विघ्न करने वाले राक्षस ही उसकी रखवाली कर रहे थे।।62।। तब वाल्मीकि जी की आज्ञा से सीता जी के पुत्र लव और कुश उनका बनाया हुआ रामायण गाते हुए इधर-उधर घूमने लगे।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम्।। 64।

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली।। 65।।

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।। 66।।

वयोवेषविसंवादी रामस्य च तयोस्तदा।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत्।। 67।।

उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा।। 68।।

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम्।। 69।।

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान्।
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मैन्यवेदयत्।। 70।।

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः संपरिग्रहम्।। 71।।

एक तो राम का चरित, उस पर वाल्मीकि जी उसके रचयिता और फिर किन्नरों के समान मधुर कण्ठ वाले लव और कुश उसके गायक, फिर बताइए उसमें शेष ही क्या था कि लोग उसे सुनकर लट्टू न हो जाते।।64।। यह बात राम के कानों तक भी पहुँची। उन्होंने बालकों कों बुला भेजा और अपने भाइयों के साथ उन दोनों बालकों के रूप और गीत की मधुरता को आश्चर्य के साथ देखा और सुना।।65।। सारी सभा गूँगी होकर उनका गीत सुनती जा रही थी और आँखों से आँसू बहाती जा रही थी। उस समय वह सभा प्रातःकाल की उस शान्त वनस्थली के समान दिखाई देने लगी, जिसमें वृक्षों से टप-टप ओस की बूँदे गिर रही हों।।66।। लोगों ने एकटक होकर राम और उन दोनों बालकों का एकदम मिलता--जुलता वह रूप देखा जिसमें अंतर इतना ही था कि वे दोनों अभी कुमार थे तथा वनवासियों के से वस्त्र पहने हुए थे और राम प्रौढ़ थे तथा राजसी वस्त्र पहने हुए थे।।67।। जनता को इनके गाने का कौशल देखकर उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना इस बात पर हुआ कि राजा ने उन्हें प्रेम से जो दान दिया, वह भी उन्होंने लौटा दिया।।68।। जब राम ने उनसे पूछा कि तुम्हें किसने संगीत सिखाया है और यह किस कवि की रचना है, तब उन्होंने वाल्मीकि जी का नाम बता दिया।।69।। अपने भाइयों को साथ लेकर रामचन्द्र जी वाल्मीकि जी के पास गए। उन्होंने वाल्मीकि जी के पास जाकर अपने को छोड़कर शेष सारा राज्य उनको भेंट कर दिया।।70।। दयालु ऋषि ने राम से कहा कि ये दोनों गायक कुमार सीता जी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।।71।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः।। 72।।
ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया।। 73।।
इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव।। 74।।
अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौकसः।
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये।। 75।।
स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः।। 76।।
काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा।। 77।।
जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहतचक्षुषः।
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्वे फलिता इव शालयः।। 78।।
तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लोकमित्यशात्।। 79।।
अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम्।। 80।।

और तुम्हारे राम ने कहा कि आपकी पतोहू सीता हमारे सामने ही अग्नि में शुद्ध हो चुकी हैं, पर रावण की धृष्टता का विचार करके यहाँ की प्रजा को विश्वास नहीं होता।।72।। इसलिये यदि सीता अपनी शुद्धता का प्रमाण देकर प्रजा को विश्वास दिलायें, तब मैं आपकी आज्ञा से पुत्रों के साथ उन्हें ग्रहण कर लूँगा।।73।। राम की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर वाल्मीकि जी ने शिष्यों को भेजकर सीता जी को इस प्रकार बुलाया, मानो वे नियमों के द्वारा अपनी सिद्धि बुला रहे हों।।74।। दूसरे दिन राम ने इस काम के लिये प्रजा को इकट्ठा करके वाल्मीकि जी को बुलाया।।75।। वाल्मीकि जी लव, कुश और सीता जी को साथ लेकर राम के आगे उपस्थित हुए। पुत्रों के साथ राम के पास जाती हुई सीता जी ऐसी लगती थीं मानो स्वर और संस्कारों के साथ गायत्री, सूर्य के पास जा रही हों।।76।। गेरुए वस्त्र पहने और अपनी आँखें नीची किए हुए सीता जी अपने शान्त शरीर से ही पवित्र दिखाई देती थीं।।77।। उन्हें देखते ही सब लोगों ने उसी प्रकार अपनी आँखें नीची कर ली, जैसे फ़ले हुए धान के कलम झुक जाते हैं क्योंकि उन्हें लज्जा लगी कि हम लोगों ने व्यर्थ ही इस साध्वी पर कलंक लगाया।।78।। आसन पर बैठे हुए वाल्मीकि जी ने सीता जी से कहा—बेटी! जनता के मन में तुम्हारे चरित्र के विषय में जो सन्देह है वह तुम अपने पति के आगे ही मिटा दो।।79।। वाल्मीकि जी के शिष्य ने पवित्र जल लाकर सीता जी को दिया और उसका आचमन करके सीता जी ने यह सत्य वचन कहा।।80।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वंभरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि।।81।।
एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद्भवः।
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ।।82।।
तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी।
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुंधरा।।83।।
सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात्।।84।।
धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः।
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः।।85।।
ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान्।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः।।86।।
युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिन्धुनामकम्।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः।।87।।
भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्।।88।।
स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यास्तदाख्ययोः।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः।।89।।

यदि मैंने मन, वचन, कर्म किसी प्रकार से भी अपना पतिव्रत भंग न किया हो तो हे धरती माता! तुम मुझे अपनी गोद में ले लो।।81।। पतिव्रता सीता के ऐसा कहते ही पृथ्वी घड़घड़ाकर फट गई और उसमें से बिजली के समान चमकीला एक तेजोमण्डल निकला।।82।। उसमें नाग के फण पर रखे हुए सिंहासन पर बैठी हुई, समुद्र की मेखला पहने साक्षात् धरती माता प्रकट हुईं।।83।। उन्होंने उन सीता जी को अपनी गोद में ले लिया, जो राम की ओर टकटकी बाँधे थीं। राम कहते ही रह गए–अरे! यह क्या करती हो, यह क्या करती हो; पर वे सबके देखते-देखते पाताल में समा गई।।84।। राम को पृथ्वी पर बड़ा क्रोध आया और पृथ्वी से सीता को लौटा लेने के लिये उन्होंने अपना धनुष उठाया। पर ब्रह्माजी तो सब कुछ जानते ही थे, उन्होंने आ कर राम को समझाया और उनका क्रोध शान्त किया।।85।। किसी प्रकार यज्ञ समाप्त हुआ और यज्ञ हो जाने पर राम ने ऋषियों को छुट्टी दी। अब वे अपने पुत्रों से उतना ही प्रेम करने लगे जितना सीता जी से करते थे।।86।। प्रजापालक राम ने भरत के मामा युधाजित् के कहने पर सिन्धु देश का राज्य प्रभावशाली भरत को दे दिया।।87।। भरत ने गन्धर्वों को जीत कर उनके हाथ में केवल वीणा तो रहने दी, किन्तु धनुष छुड़वा दिया।।88।। उन्होंने तक्ष और पुष्कल नाम के योग्य पुत्रों को, तक्ष और पुष्कल राजधानियों का राजा बना दिया और स्वयं राम के पास लौट आए।।89।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ।
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ।। 90।।
इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः।
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात्।। 91।।
उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम्।
रहः संवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति।। 92।।
तथेति प्रतिपन्नाय विवृतात्मा नृपाय सः।
आचख्यौ दिवमध्यास्व शासनात्परमेष्ठिनः।। 93।।
विद्वानपि तयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत्।
भीतो दुर्वाससः शापाद्रामसंदर्शनार्थिनः।। 94।।
स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित्।
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञं पूर्वजन्मनः।। 95।।
तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि।
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव।। 96।।
स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुशं कुशम्।
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम्।। 97।।

राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अंगद और चन्द्रकेतु नाम के अपने दोनों पुत्रों को कारापथ का राजा बना दिया। ।90।। इस प्रकार पुत्रों को राज्य देकर उन चारों ने अपनी स्वर्गीया माताओं के श्राद्ध आदि संस्कार किए। ।91।। यह सब हो जाने पर एक दिन राम के पास मुनि का वेश बनाकर काल आया और बोला—'मैं आपसे एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ। जो भी कोई हम लोगों की बात के बीच में आये उसे आप प्राण-दण्ड दे दीजिए। ।92।। राम ने कहा—'अच्छी बात है।' तब उसने अपना सच्चा रूप दिखाया और कहा कि ब्रह्मा की आज्ञा है कि अब आप चलकर वैकुण्ठ में रहें। ।93।। यह बात हो ही रही थी कि इसी बीच दुर्वास जी कहीं से आ धमके। उन्होंने द्वार पर बैठे हुए लक्ष्मण से कहा कि अभी जाकर राम से कहो कि मैं आया हूँ, नहीं तो तुम्हारे कुल को शाप से भस्म कर दूँगा। लक्ष्मण जी जानते ही थे कि जो इस समय राम के पास जायगा उसे प्राण-दण्ड होगा फिर भी बातचीत के बीच में ही पहुँचकर उन्होंने सूचना दे दी। ।94।। वहाँ से लौटकर योगमार्ग के जानने वाले लक्ष्मण ने सरयू के किनारे जाकर योग-बल से शरीर छोड़कर बड़े भाई की प्रतिज्ञा की रक्षा कर ली। ।95।। अपने चौथाई अंश लक्ष्मण के स्वर्ग चले जाने पर राम उसी प्रकार ढीले पड़ गए जैसे पृथ्वी पर त्रेतायुग में तीन पैर वाला धर्म ढीला पड़ जाता है। ।96।। स्थिरबुद्धि वाले राम ने शत्रु-रूपी हाथियों के लिये अंकुश के समान भयदायक कुश को कुशावती का राज्य दे दिया और अपने मधुर वचनों से सज्जनों की आँखों से आँसू की धार बहाने वाले लव को शरावती का राजा बनाया। ।97।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदक्प्रतस्थे स्थिरधीःसानुजोऽग्निपुरःसरः।
अन्वितः पतिवात्सल्याद् गृहवर्जमयोध्यया।। 98।।
जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः।
कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः।। 99।।
उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना।
चक्रे त्रिदिवनिःश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम्।। 100।।
यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम्।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे।। 101।।
स विभुर्विबुधांशेषु प्रतिषन्नात्ममूर्तिषु।
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत्।। 102।।
निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणाम् विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे चे।। 103।।

इति महाकवि श्री कालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रामस्वर्गारोहणो नाम पञ्चदशः सर्गः।।

फिर अग्निहोत्र की अग्नि आगे करके भाइयों के साथ वे उत्तर की ओर चले। जब अयोध्यावासियों ने यह सुना तो राम के प्रेम में वे सब भी केवल अपने-अपने घर पीछे छोड़कर उनके साथ हो लिए।।98।। राम के मन की बात जानने वाले वानर और राक्षस भी उनके पीछे-पीछे चले। जिस मार्ग से राम चले जा रहे थे, वह मार्ग राम के पीछे-पीछे जाने वाली जनता के आँसुओं से गीला हो चला।।99।। भक्तों पर कृपा करने वाले राम विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गए और सरयू को उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया [अर्थात् जो सरयू में स्नान करता था, वह तुरन्त स्वर्ग चला जाता था] ।।100।। वहाँ स्नान करने वालों की वैसी ही भीड़ हुई जैसी गौओं को पार कराते समय होती है, इसलिये उस पवित्र तीर्थ का नाम ही संसार में गोप्रतर प्रसिद्ध हो गया।।101।। देवताओं के अंशधारी रीछ, वानरों ने भी अपना देवरूप धारण कर लिया, इसलिये इतने लोग स्वर्ग में पहुँच गए कि सामर्थ्यशाली राम को देवपद प्राप्त करने वाले अयोध्यावासियों के रहने के लिये एक दूसरा स्वर्ग बनाना पड़ा।।102।। विष्णु भगवान् ने इस प्रकार रावणवध करके देवताओं का कार्य पूरा किया और उत्तरगिरि हिमालय पर हनुमान जी को तथा दक्षिणगिरि त्रिकूट पर विभीषण जी को अपने दो कीर्तिस्तम्भों के रूप में स्थापित करके तीनों लोकों को धारण करने वाले भगवान् अपने विराट् शरीर में लीन हो गए।।103।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'राम का स्वर्णारोहण' नामक पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षोडशः सर्गः ।।

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि।। 1 ।।
ते सेतुवार्त्तागजबन्धमुख्यैरभ्युच्छ्रितः कर्मभिरप्यवन्ध्यैः।
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः।। 2 ।।
चतुर्भुजांशसप्रभवः स तेपां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम्।
सुरद्विपानामिव सामयोनिर्भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः।। 3 ।।
अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः।
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत्।। 4 ।।
सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः।
जेतुः परेषां जयशब्द पूर्वं तस्याञ्जलिं बन्धुमतो बबन्ध।। 5 ।।
अथानपोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम्।
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूवार्धविसृष्टतल्पः।। 6 ।।
लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम्।। 7 ।।

सोलहवाँ सर्ग

कुश आदि सात रघुवंशी वीरों ने अपने सबसे बड़े भाई लव को अपना मुखिया बनाया; क्योंकि भ्रातृ प्रेम तो उनके कुल का धर्म ही था।।1।। वे सभी पुल बाँधने, कृषि की रक्षा करने और हाथियों को इकट्ठा करने में कुशल थे। फिर भी जैसे समुद्र अपने तट का उल्लंघन नहीं करता है, वैसे ही उनमें से किसी ने भी अपने राज्य की सीमा लाँघ कर दूसरे भाई के राज्य की सीमा में प्रवेश करने का यत्न नहीं किया।।2।। जैसे सामवेद के कुल में उत्पन्न मतवाले दिग्गजों का कुल आठ भागों में बँट गया था वैसे ही विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए राम का दानी कुल भी आठ भागों में फैला।।3।। एक दिन आधी रात को, जब शयन-गृह का दीप टिमटिमा रहा था और सब लोग सोए हुए थे, कुश को एक स्त्री दिखाई दी। उसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, पर उसका वेश देखने से जान पड़ता था कि उसका पति परदेश चला गया है।।4।। अपनी सम्पत्ति से सज्जनों का उपकार करने वाले, इन्द्र के समान तेजस्वी और शत्रुओं को जीतने वाले कुश के आगे वह स्त्री हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।।5।। जैसे दर्पण में मुँह का प्रतिबिम्ब बैठ जाता है, वैसे ही द्वार बन्द रहने पर भी वह स्त्री घर के भीतर आ गई थी। उसे देख कर कुश को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे शय्या पर आधे उठ कर उससे बोले।।6।। तुम हमारे इस बन्द भवन में घुस तो आई हो, पर तुम्हारे मुख से यह नहीं प्रकट होता कि तुम योगिनी हो, क्योंकि तुम पाले से मारी हुई कमलिनी के समान उदास दिखाई दे रही हो।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किंवा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति।।8।।
तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन।
तस्याः पुरः संप्रति वीतनाथां जानीहि राजन्नधिदेवतां माम्।।9।।
वस्वौकसारामभिभूय साहं सौराज्यवद्धोत्सवया विभूत्या।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम्।।10।।
विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम्।।11।।
निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः।।12।।
आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम्।।13।।
वृक्षेशया यष्टिनिवासभङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम्।।14।।
सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान् सरागान्।
सद्यो हतन्यङ्कुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे।।15।।

हे शुभे! तुम कौन हो? तुम्हारे पति का क्या नाम है और मेरे पास किस लिए आई हो? तुम यह समझकर मुँह खोलना कि रघुवंशियों का चित्त पराई स्त्री की ओर कभी नहीं जाता।।8।। उस स्त्री ने उत्तर दिया हे राजन्! जब भगवान् राम बैकुण्ठ जाने लगे, तब जिस निर्दोष अयोध्या पुरी के निवासियों को वे अपने साथ लेते गए, उसी अनाथ अयोध्या पुरी की मैं नगर देवी हूँ।।9।। पहले अच्छा राजा होने के कारण मैं इतनी ऐश्वर्यशालिनी हो गई थी कि मेरे आगे कुबेर की अलकापुरी भी फीकी लगती थी आजकल तुम्हारे ऐसे प्रतापी राजा के रहते हुए भी मेरी बहुत बुरी दशा हो गई है।।10।। स्वामी के न रहने से कोठे-अटारियों के टूट जाने से मेरी निवासभूमि अयोध्या ऐसी उदास लगती है, जैसे सूर्यास्त के समय की वह सन्ध्या, जिसमें वायु के वेग से इधर-उधर छितराए हुए बादल दिखाई देते हों।।11।। रात के समय पहले जिन सड़कों पर चमकते हुए बिछुओं वाली अभिसारिकाएँ चलती थीं, उन्हीं पर आजकल ऐसी सियारिनें घूमती हैं जिनके मुख से चिल्लाते समय चिनगारियाँ निकालती हैं।।12।। नगर की जिन बावड़ियों का जल पहले जलक्रीड़ा करने वाली सुन्दरियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर शब्द करता था, वह आज-कल जंगली भैंसों के सींगों की चोटों से कान फोड़े डालता है।।13।। अंडों के टूट जाने से यहाँ के मोर अब वृक्षों पर जा कर बैठते हैं और मृदंग न बजने के कारण उन्होंने नाचना भी बन्द कर दिया है; अब वे उन जंगली मोरों के समान लगते हैं, जिनकी पूँछें वन की आग से जल गई हों।।14।। और क्या कहें, पहले जिन सीढ़ियों पर सुन्दरियाँ अपने महावर लगे लाल-लाल पैर रखती चलती थीं, उन्हीं पर मृग मारने वाले बाघ अपने रक्त से सने लाल पैर रखते हुए चलते हैं।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः।
नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति।। 16।।
स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णाक्रमधूसराणम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्गान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्वियुक्ताः।। 17।।
कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः।। 18।।
आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः।
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः।। 19।।
रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः।। 20।।
बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति।
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयूजलानि।। 21।।
तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपैतुं कुलराजधानीम्।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां तथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम्।। 22।।

जिन चित्रों में ऐसा दिखाया गया था कि हाथी कमल के ताल में उतर रहें हैं और हथिनियाँ उन्हें सूँड़ से कमल के डण्ठल तोड़कर दे रही हैं, उन चित्रित हाथियों के मस्तकों को सिहों ने सच्चे हाथी का मस्तक समझकर नखों से फाड़ दिया है।।16।। जिन बहुत से खंभों में स्त्रियों की मूर्तियाँ बनी हुई थीं आजकल उन मूर्तियों का रंग उड़ गया है। उन खंभों को चन्दन का वृक्ष समझकर जो साँप उनसे लिपटे हैं, उनकी केचुलें छूटकर उन मूर्तियों से सट गई हैं और वे ऐसी लगती हैं मानो उन पत्थर की स्त्रियों ने स्तन ढकने के लिये कोई कपड़ा डाल लिया हो।।17।। जिन भवनों पर कभी मोती की माला के समान शुभ्र चाँदनी चमका करती थी, उन पर अब चाँदनी भी नहीं चमकती; क्योंकि बहुत दिनों से मरम्मत न होने के कारण कोठों के चूने का रंगा काला पड़ गया है और उन पर जहाँ-तहाँ घास जम आई है।।18।। पहले उद्यान की जिन लताओं को धीरे से झुकाकर सुन्दरी स्त्रियाँ फूल उतारा करती थीं, उन मेरी प्यारी लताओं को जंगली म्लेच्छों के समान उत्पाती बन्दर झकझोर रहे हैं।।19।। आज कल अटारियों के झरोखों से न तो रात को दीपकों की किरणें निकलती हैं, न दिन में सुन्दरियों का मुख दिखाई देता है और न कहीं से अगरबत्ती का धुआँ ही निकलता है। अब वे झरोखे मकड़ियों के जालों से ढक गए हैं।।20।। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अब न तो सरयू के घाटों पर देवताओं के लिये बलि दी जाती है और न स्त्रियों के स्नान करने से उसमें से अंगराग आदि की गन्ध ही निकल रही है। सरयू के तट पर बनी हुई बेंत की झोंपड़ियाँ भी सूनी पड़ी रहती हैं।।21।। इसलिये जैसे तुम्हारे पिता राम ने राक्षसों को मारने के लिये जो मनुष्य शरीर धारण किया था, उसे छोड़कर परमात्मा में पहुँच गए, वैसे ही तुम भी इस नई राजधानी कुशावती को छोड़कर अपनी कुल परंपरा की राजधानी अयोध्या में चल कर रहो।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम्।
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरबन्धेन तिरोबभूव।।23।।
तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस।
श्रुत्वा त एनं कुलराजधान्याः साक्षात्पतित्वे वृतमभ्यनन्दन्।।24।।
कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे।।25।।
सा केतुमालोपवना बृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः।
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे तस्याभवज्जंगमराजधानी।।26।।
तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम्।
बभौ बलौघः शशिनोदितेन वेलामुदन्वानिव नीयमानः।।27।।
तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीप सोढुम्।
वसंधरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यारुरोहेव रजश्छलेन।।28।।
उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार।।29।।
तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्खुराभिघाताच्च तुरंगमाणाम्।
रेणुः प्रपेदे पथि पङ्कभावं पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः।।30।।

कुश ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा—ऐसा ही करेंगे। यह सुनकर अयोध्या की नगरदेवी भी अन्तर्धान हो गई।।23।। राजा ने रात की वह आश्चर्य भरी घटना प्रातःकाल सभा में ब्राह्मणों से कही। यह सुनकर ब्राह्मणों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की कि आप धन्य हैं, जिन्हें कुल-राजधानी ने अपनी इच्छा से अपना पति चुना है।।24।। उन्होंने कुशावती को वेदपाठी ब्राह्मणों को सौंप दी और जैसे वायु के पीछे-पीछे बादल चलते हैं, वैसे ही पीछे चलने वाली सेना के साथ शुभ मुहूर्त में अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।।25।। यात्रा के समय चलती हुई कुश की सेना चलती फिरती राजधानी के समान लगती थी; क्योंकि उसका ध्वजाओं वाला भाग लता वाले उपवनों जैसा लग रहा था, बड़े-बड़े हाथी बनावटी पर्वतों जैसे जान पड़ते थे और रथ ऊँची-ऊँची अटारियों जैसे लग रहे थे।।26।। जैसे चन्द्रमा उदित होकर समुद्र को तट तक खींच लाता है, वैसे ही श्वेत छत्रधारी कुश अपनी सेना को रघुकुल की पुरानी राजधानी अयोध्या की ओर ले चले।।27।। चलते समय कुश की सेना का भार पृथ्वी नहीं सँभाल सकी, इसीलिये उड़ती हुई धूल ऐसी जान पड़ रही थी मानो पृथ्वी विष्णु के दूसरे पद [आकाश] में पहुँच गई हो।।28।। कुशावती से चलती हुई या आगे के पड़ाव पर पहुँची हुई या मार्ग में चलने वाली जितनी भी कुश की सेना की टुकड़ियाँ थीं, वे सब पूरी सेना ही प्रतीत होती थीं।।29।। कुश के हाथियों के मदजल से मार्ग की धूल कीचड़ बन गई और कीचड़ भी घोड़ों की टापों से धूल बन गई।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना।
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि।।31।।
स धातुभेदारुणयाननेमिः प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः।
व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि।।32।।
तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम्।
अयत्नवालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः।।33।।
स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद्भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम्।
सुराऽलयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्रोतसं नौ लुलितं ववन्दे।।34।।
इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः।
वेदिप्रतिष्ठान्वितसाध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्।।35।।
आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्टवा च शीतान्सरयूतरङ्गान्।
तं क्लान्तसैन्यं कुलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः।।36।।
अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा।
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयामास बली बलानि।।37।।
तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां संभृतसाधनत्वात्।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम्।।38।।

मार्ग भूल जाने के कारण वह सेना विन्ध्याचल के आस-पास मार्ग ढूँढ़ने लगी और कई भागों में बँट गई। उस सेना ने नर्मदा के समान जो गम्भीर गर्जन किया उससे पर्वत की गुफाएँ भी गूँज उठीं।।31।। गेरू आदि धातुओं से जिसके रथ के पहिए लाल हो गए थे और जिसकी चलती हुई सेना के शब्द से तुरही के शब्द भी दब गए थे, वह कुश विन्ध्याचलवासी किरातों के हाथ से पाई हुई भेंट की सामग्रियाँ देखते हुए आगे बढ़ चले।।32।। वहाँ पास ही उलटी पश्चिम की ओर बहने वाली गंगा जी पर हाथियों का पुल बनाकर वे पार उतरने लगे। उस समय आकाश में चंचल पंखों वाले हंस उड़ते थे, वे कुश पर डुलाते जाते हुए चँवर के समान लग रहे थे।।33।। कुश ने नावों के चलने से चंचल जल वाली गंगा जी को प्रणाम किया क्योंकि कपिल के कोप से जले हुए उनके पूर्वज सगर के पुत्र उसी जल की कृपा से स्वर्ग पहुँचे थे।।34।। इस प्रकार मार्ग में कुछ दिन बिताकर कुश भी सरयू के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्हें बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले रघुवंशी राजाओं के गाड़े हुए सैकड़ों यज्ञ के खम्भे दिखाई दिए।।35।। अयोध्या के उपवन में फूले हुए वृक्षों की डालियों को हिलाता हुआ तथा सरयू के शीतल जल के स्पर्श से ठण्डे वायु ने आगे बढ़कर सेना के साथ थके हुए कुश का स्वागत किया।।36।। शत्रु विनाशक प्रजा-हितैषी राजा ने फहराती हुई ध्वजावाली अपनी सेना को नगर के आस-पास के स्थानों में ठहरा दिया।।37।। जैसे इन्द्र की आज्ञा से बादल, जल बरसाकर गरमी से तपी हुई पृथ्वी को हरा-भरा कर देते हैं, वैसे ही कुश की आज्ञा से कारीगरों ने अपने यन्त्रों की सहायता से अयोध्या की काया पलट कर दी।।38।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः।
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिर्निर्वर्तयामास रघुप्रवीरः।। 39।।
तस्याः स राजोपपदं निशान्तं कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य।
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं संभावयामास यथाप्रधानम्।। 40।।
सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः।
पूरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी।। 41।।
वसन्स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम्।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय।। 42।।
अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम्।
निःश्वासहार्यांशुकमाजगाम घर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम्।। 43।।
अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते।
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज।। 44।।
प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्।। 45।।
दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसंबभूव।। 46।।

फिर व्रत और उपवास करने वाले वास्तु-विद्या के पण्डितों से रघुवीर कुश ने अनमोल मूर्तियों से भरे घरों वाली अयोध्या का विधि पूर्वक पूजन कराया और पशुओं का बलिदान भी कराया।।39।। जैसे कामी पुरुष स्त्री के हृदय में बैठ जाता है वैसे ही कुश भी अयोध्या के राज भवन में प्रविष्ट हो गए और उन्होंने अपने मन्त्रियों आदि के रहने के लिये दूसरे बहुत से भवन दे दिए।।40।। अयोध्या की हाटों में सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ बिकने को सजी हुई थीं, घुड़साल में घोड़े बँधे हुए थे, हथसारों के खम्भों से हाथी बँधे हुए थे। इस प्रकार वह नगरी ऐसी सुन्दर लगने लगी जैसे सारे शरीर पर गहना पहने हुए कोई स्त्री हो।।41।। अयोध्या फिर पहले जैसी सुन्दर लगने लगी। उसमें निवास करके जानकी जी के पुत्र कुश को ऐसा सुख मिला कि न तो उन्हें सुन्दर-सुन्दर अप्सराओं से युक्त स्वर्ग के स्वामी बनने की इच्छा रह गई और न असंख्य रत्नों वाली अलका पुरी को ही लेने की।।42।। इतने में ग्रीष्म ऋतु आई, जिसने मानो इन्हें अपनी उस प्रिया का स्मरण करा दिया जिसकी ओढ़नी में रत्न लगे हों, जिसके गोरे-गोरे स्तनों पर मोतियों का हार लटका हो और जो साँस से उड़ने वाले महीन कपड़े पहने हुए हो।।43।। गर्मी में जो हिम लगने लगा, वह ऐसा लगता था मानो दक्षिण दिशा से सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता में उत्तर दिशा ने आनन्द के ठंडे आँसुओं के समान पानी की ठंडी धारा हिमालय से बहाई हो।।44।। अत्यन्त सन्ताप से भरे दिन और अत्यन्त छोटी रातें, ये दोनों उन पछताते हुए पति-पत्नी के समान दिखाई देने लगे जो आपस में झगड़ा करके एक दूसरे से रूठ बैठे हों।।45।। गर्मी के कारण घर की बावड़ियाँ भी सेवार जमी हुई सीढ़ियों को छोड़कर पीछे हटने लगीं [अर्थात् उनका पानी सूखने लगा] उनमें कमल की डंडियाँ दिखाई देने लगीं और पानी घटकर स्त्रियों की कमर तक रह गया।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनेषु सायंतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदःसशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार।। 47।।
स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात।। 48।।
यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान् रसेन धौतान्मलयोद्भवस्य।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः।। 49।।
स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम्।। 50।।
आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य।
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य।। 51।।
मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च।
संबध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः।। 52।।
जनस्य तस्मिन्समये विगाढे बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ।
तापापनोदक्षमपादसेवौ स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च।। 53।।
अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव।। 54।।

वनों में चमेली खिल गई और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी। सन्ध्या को गुनगुनाते हुए भौंरे उसके एक-एक फूल पर बैठकर मानो फूलों की गिनती करने लगे।।47।। स्त्रियों के गालों पर प्रियतम के हाथों से बने नखक्षतों पर पसीने की बूँदे फैल जाती थीं और कान पर रखे हुए शिरीस के फूलों का केसर उससे सट जाता था। इसलिये जब वे फूल कान पर से गिरते भी थे तो सहसा पृथ्वी पर नहीं गिर पाते थे।।48।। धनी लोग गर्मी से ठंडी रहने वाली उन विशेष प्रकार की शिलाओं पर सोकर दुपहरी बिताते थे, जो चन्दन से धुली होती थीं और जिनके चारों ओर जल-धाराएँ छूटती रहती थीं।।49।। बसन्त बीत जाने के कारण जो कामदेव मन्द पड़ गया था, वह स्त्रियों के उन केशों में जा कर बस गया, जो स्नान करने पर खोल दिए जाते थे और जिसमें धूप से सुगन्धित करके शाम को फूलने वाली चमेली के सुगन्धित फूल खोंस लिए जाते थे।।50।। पराग से भरी कुछ पीली-पीली अर्जुन की मञ्जरी ऐसी लगती थी, मानो कामदेव का शरीर भस्म करने के पश्चात् शिव जी के हाथ से तोड़ी हुई कामदेव के धनुष की डोरी हो।।51।। मनोहर गन्ध वाली आम की बौर, पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरुषों की सब कमी पूरी कर दी।।52।। उस कठिन ग्रीष्म समय में उदित होकर दो ही तो प्रजा के बहुत प्यारे हुए। एक तो सेवा से प्रसन्न होकर निर्धनता आदि सन्तापों को दूर करने वाले राजा कुश और दूसरी शीतल किरणों से गर्मी ताप दूर करने वाले चन्द्रमा।।53।। एक दिन कुश की इच्छा हुई कि लहरों के लहराने से मतवाले बने हुए हंसों वाले, तट की लताओं के फूलों को बहाने वाले और गर्मी में सुख देने वाले सरयू के जल में अपनी रानियों के साथ विहार करें।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिस्तामपकृष्टनक्राम्।
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः।। 55 ।।
सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदङ्गनाभिः।। 56 ।।
परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां नृपो मज्जनरागदर्शी।
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीमुपात्तवालव्यजनां वभासे।। 57 ।।
पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः।
संध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः।। 58 ।।
विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः।
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्।। 59 ।।
एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः।
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते।। 60 ।।
अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम्।
पारिप्लवाःस्रोतसि निम्नगायाःशैवाललोलाँश्छलयन्ति मीनान्।। 61 ।।
आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपिहारः।। 62 ।।

यह निश्चय करके विष्णु के समान प्रभावशाली कुश, सरयू के जल में विहार करने चले। सरयू के तट पर डेरे डाल दिये गए और मल्लाहों ने जाल डालकर ग्राह आदि सब जीव-जन्तु उसमें से निकाल डाले।।55।। जब कुश की रानियाँ सीढ़ियों से पानी में उतरने लगीं, उस समय उनके भुजबन्द एक दूसरे से रगड़ खाने लगे, पैर के बिछुए बजने लगे और इन शब्दों को सुन-सुनकर सरयू के हंस मचल उठे।।56।। रानियाँ एक-दूसरे पर जल के छींटे उड़ाने लगीं। उन रानियों के स्नान की शोभा देखकर नाव पर बैठे राजा पास में चँवर लेकर खड़ी हुई किरातिन से कहने लगे।।57।। 'देख तो! मेरे रनिवास की सैकड़ों रानियों के स्नान करने से और उनके शरीर से धुले हुए अंगार के मिल जाने से सरयू की धारा ऐसी रंग-बिरंगी लगने लगी है जैसे बादलों से भरी सन्ध्या।।58।। नावों के चलने से जल में जो लहरें उठती हैं, उन्होंने इन सुन्दरियों की आँखों का अञ्जन धो दिया और उसके बदले में मदपान के समय की लाली इनकी आँखों में भर दी।।59।। भारी नितम्बों और स्तनों के कारण ये रानियाँ भली-भाँति तैर नहीं पातीं, फिर भी खेल में सम्मिलित होने के कारण ये अपने मोटे-मोटे भुज बन्दों वाली बाँहों से जल में बड़ी कठिनाई से तैर रही हैं।।60।। इन जलक्रीड़ा करने वाली रानियों के कानों से सिर के कर्णफूल खिसककर नदी में गिरकर तैर रहे हैं। इनको देखकर मछलियों को सेवार का भ्रम हो रहा है और वे इन पर मुँह मारने को झपट रही है।।61।। देखो, जल क्रीड़ा में लगी हुई इन रानियों को यह भी नहीं सुध है कि हमारे हार टूट गए हैं और मोती बिखर गए हैं। मोतियों के समान बूँदों को ही ये मोती समझ बैठी हैं कि हार टूटा नहीं है।।62।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम्।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम्।।63।।

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्।।64।।

संदष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दु-प्रकाशान्तरितोडुतुल्याः।
अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः।।65।।

एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः।
वक्त्रेकराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमन्ति।।66।।

उद्बन्धकेशश्च्युतपत्त्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्त्रवेष्टः।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः।।67।।

स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु।
स्कन्धावलग्नोधृतपद्मनीकः करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः।।68।।

ततोनृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम्।।69।।

देखो, सुन्दरी स्त्रियों के शरीर के अंगों के समान जो वस्तुएँ संसार में प्रसिद्ध हैं, वे सब इन सुन्दरियों के आस-पास जुट आई हैं। ये पानी की भँवरें इनकी गहरी नाभि के समान है, लहरें इनकी भौंहों के समान हैं और चकवा-चकवी इनके स्तनों के समान हैं।।63।। ये गा-गाकर जो मृदंग बजाने के समान थपकी दे-देकर जल ठोक रही हैं, उसे सुनकर बैठे हुए मोर अपनी पूँछ उठाकर और बोलकर उनका अभिनन्दन कर रहे हैं।।64।। इन रानियों ने अपने नितम्बों पर श्वेत वस्त्र लपेट लिया है, जिसके नीचे मेखला के घुँघुरू ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे चाँदनी से ढके हुए तारे हैं। मेखला के डोरों में जल भर जाने से इन स्त्रियों के इधर से उधर दौड़ने पर भी ये बज नहीं रहे हैं।।65।। जब इनकी सखियाँ इनके मुँह पर पानी डालती हैं और ये अहंकार से अपनी सखियों पर पानी उछालती हैं, तब इनके सीधे लटके हुए बालों से कुंकुम मिली हुई लाल रंग की बूँदे टपकने लगती हैं।।66।। यद्यपि स्नान के कारण बाल खुल जाने से, मुँह पर और स्तनों पर बनी हुई चित्रकारी के धुल जाने से, तथा मोतियों के कर्णफूल कान से निकल जाने से स्त्रियों का वेश बेढंगा हो गया है, फिर भी देख, ये कितनी मनोहर लग रही हैं।।67।। यह कहकर कुश भी पानी में उतर पड़े और जैसे कमलिनियों को उखाड़ कर कन्धे पर लटका कर हाथी अपनी हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा करता है, वैसे ही वे भी उन स्त्रियों के साथ जलविहार करने लगे।।68।। उस कान्तिमान् राजा के साथ क्रीड़ा करती हुई वे रानियाँ पहले से भी अधिक सुन्दर लगने लगीं; क्योंकि मोती तो यों ही सुन्दर होता है और फिर यदि वह इन्द्र नीलमणि के साथ गूँथ दिया जाए तब तो कहना ही क्या।।69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन्।
तथागतः सोऽतितरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः।।70।।
तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरां ताम्।
आकाशगङ्गारतिरप्सरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः।।71।।
यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश।
तदस्य जैत्राभरणं विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज।।72।।
स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्यां गतमात्र एव।
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमुपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श।।73।।
जयश्रियः संवननं यतस्तदामुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात्।
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः।।74।।
ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानायिनस्तद्विचये नदीष्णान्।
वन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः।।75।।
कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते।
नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनमुपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत्।।76।।
ततः स कृत्वा धुनराततज्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः।
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी भुजंगनाशाय समाददेऽस्त्रम्।।77।।

वे स्त्रियाँ सोने की पिचकारियों से रंग छोड़-छोड़कर जब उन्हें भिगोने लगीं। उस समय वे ऐसे लगने लगे, जैसे पर्वतराज हिमालय पर से गेरू का झरना गिर रहा हो।।70।। स्त्रियों के साथ सरयू में, जलक्रीड़ा करते समय कुश ऐसे लगते थे, मानो देवराज इन्द्र अप्सराओं के साथ आकाशगंगा में जलक्रीड़ा कर रहे हों।।71।। राम को अगस्त्य ऋषि ने जैत्र [अर्थात् सदा जिताने वाला] जो आभूषण दिया था, उसे राम ने राज्य के साथ ही कुश को दे दिया था। जलक्रीड़ा करते समय वह आभूषण पानी में गिर पड़ा और किसी को इसका मान भी नहीं हुआ।।72।। रानियों के साथ इच्छानुसार जलक्रीड़ा करके जब कुश बाहर निकले और डेरे में गए, तब कपड़े बदलने के पहले ही उन्होंने देखा कि भुजा पर वह दिव्य आभूषण नहीं है।।73।। बुद्धिमान् राजा कुश, फूल और आभूषण दोनों को बराबर समझते थे। अतः उन्हें उस आभूषण के खोने का इसलिये दुःख नहीं था कि वह बहुमूल्य था, वरन् इसलिये दुःख हुआ कि वह आभूषण विजय-लक्ष्मी प्राप्त करने वाला था और पिता का चिह्न था।।74।। तब उन्होंने सब धीवरों को आभूषण ढूँढ़ने की आज्ञा दी। बहुत देर तक उन लोगों ने पानी झकोरा पर उनका सब परिश्रम व्यर्थ गया। वे कुश के पास आकर बोले—।।75।। 'हे देव! बहुत परिश्रम करने पर भी हम लोग जल में पड़ा हुआ आपका आभूषण नहीं पा सके। जान पड़ता है कि इस जल में रहने वाले कुमुद नाम के नाग ने लोभ से चुरा लिया है।।76।। यह सुनते ही कुश की आँखें क्रोध से लाल हो गईं और वहीं तट पर खड़े होकर उन्होंने धनुष को ठीक किया और उस पर नागों का नाश करने वाला गरुड़ास्त्र चढ़ाया।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरङ्गहस्तः।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास।। 78।।
तस्मात्समुद्रादिव मथ्यमानादुद्वृत्तनक्रात्सहसोन्ममज्ज।
लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृक्षः कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः।। 79।।
विभूषणप्रत्युपहारहस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशांपतिस्तम्।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः।। 80।।
त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विषामंकुशमस्त्रविद्वान्।
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना मूर्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे।। 81।।
अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोःसुताख्यामपरां तनुं त्वाम्।
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीस्य धृतेर्विघातम्।। 82।।
कराभिघातोत्थितन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन।
ह्रदात्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम्।। 83।।
तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन।
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन।। 84।।
इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम्।
आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुश्रूषया पार्थिव पादयोस्ते।। 85।।

उनके धनुष चढ़ाते ही वहाँ का जल, खौलता हुआ, अपने तरंग-रूपी हाथ जोड़े हुए, तट को तोड़ता हुआ ऐसे गरजने लगा जैसे गड्ढें में पड़ा हुआ कोई हाथी चिंग्घाड़ रहा हो।।78।। उस जल को समुद्र के समान मथा जाता देखकर घड़ियाल आदि जीव घबरा उठे। इतने में ही उस जल में से अचानक एक कन्या को आगे किए हुए नागराज कुमुद इस प्रकार निकले मानो लक्ष्मी को साथ लेकर कल्पवृक्ष निकल आया हो।।79।। कुश ने देखा कि कुमुद के हाथ में वही आभूषण है, इसलिये उन्होंने धनुष पर से गारुडास्त्र उतार लिया; क्योंकि सज्जन लोग उन पर क्रोध नहीं करते जो नम्र होकर उनके आगे आते हैं।।80।। त्रिलोकीनाथ राम के पुत्र तथा शत्रुओं को अंकुश के समान दुःख देने वाले राजा कुश के आगे मान से उठा हुआ अपना सिर नवाकर कुमुदने प्रणाम किया; क्योंकि वह कुश के बाण की शक्ति भली-भाँति जानता था। प्रणाम करके वह बोला– ।।81।। 'मैं यह जानता हूँ कि आप राक्षसों का नाश करने के लिये मनुष्य का शरीर धारण करने वाले विष्णु के ही दूसरे रूप अर्थात् पुत्र हैं, इसलिये आप पूजनीय हैं। फिर मैं भला आप से कैसे बैर कर सकता हूँ।।82।। यह मेरी कन्या गेंद खेल रही थी। इसकी थपकी से गेंद ऊपर उछल गई। उसे देखने के लिये उसने जो ऊपर आँखें उठाई तो देखा कि आकाश से गिरते हुए तारे के समान आपका आभूषण नीचे चला आ रहा है। इसने झट उसे पकड़ लिया।।83।। आप इसे लीजिए और अपनी उस मोटी और घुटनों तक लम्बी भुजा में फिर बाँध लीजिए, जिसमें धनुष की डोरी की फटकार से घट्ठे पड़ गए हैं और जो पृथ्वी की रक्षा करती है।।84।। हे राजन्! यह मेरी छोटी बहन कुमुद्वती जीवन भर आपकी सेवा करके अपना अपराध मिटाना चाहती है, इसलिये आप इसे अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण कर लीजिए।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं
श्लाघ्यो, भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम्।
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः,
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन।। 86।।
तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते,
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य।
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्तान्,
गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः।।87।।
इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं,
लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पंचमं तक्षकस्य।
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेया,
च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास।। 88।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
कुमुद्वतीपरिणयो नाम षोडशः सर्गः।।

यह कहकर कुमुदने वह आभूषण कुश को दे दिया। कुश बोले—'आज से आप मेरे आदरणीय सम्बन्धी हुए'। यह सुनकर कुमुदने अपने कुटुम्बियों को बुलाया और बड़ी धूमधाम से अपनी कन्या कुश को ब्याह दी।।86।। जब राजा कुश ने अग्नि के आगे उस कन्या का ऊनी कंगन बँधा हुआ हाथ पकड़ा, उस समय तुरही आदि बाजों की ध्वनि से दिशाएँ गूँज उठी और विचित्र प्रकार के मेघों ने आकर आकाश से सुगन्धित फूल बरसा दिए।।87।। इस प्रकार नागराज कुमुद ने त्रिलोकीनाथ विष्णु अर्थात् राम के सच्चे पुत्र कुश को अपना सम्बन्धी बनाकर गरुड़ से डरना छोड़ दिया; क्योंकि अब वह उसके सम्बन्धी के पिता का वाहन मात्र था। कुश ने भी नागराज तक्षक के पाँचवें पुत्र कुमुद को सम्बन्धी बना लिया जिससे सर्प शान्त हो गए और कुश पृथ्वी पर भली भाँति राज्य करने लगे।।88।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'कुमुद्वती का विवाह'
नाम का सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तदशः सर्गः

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना।।1।।
स पितुः पितृमान्वंशं मातुश्चानुपमद्युतिः।
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ।।2।।
तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदां वरः।
पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता।।3।।
जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः।
अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिना वशी।।4।।
स कुलोचितमिन्द्रस्य सहायकमुपेयिवान्।
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि।।5।।
तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती।
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशांकमिव कौमुदी।।6।।
तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्धभाक्।
द्वितीयापि सखी शच्याःपारिजातांशभागिनी।।7।।
तदात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः संग्रामयायिनः।।8।।

सतहरवाँ सर्ग

जिस प्रकार रात के चौथे प्रहर [अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त] में बुद्धि को नयापन मिल जाता है वैसे ही कुश को कुमुद्वती से अतिथि नाम का पुत्र प्राप्त हुआ।।1।। जैसे तेजस्वी सूर्य अपने प्रकाश से उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं को पवित्र कर देता है, वैसे ही सुशिक्षित अतिथि ने माता और पिता के दोनों कुलों को पवित्र कर दिया।।2।। पिता कुश ने पहले उसे आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चारों विद्याएँ सिखाईं, फिर राजाओं की कन्याओं से उसका विवाह करा दिया।।3।। अतिथि भी कुश के समान ही कुलीन, शूर और जितेन्द्रिय थे; इसीलिये कुश अपने पुंत्र को अपना ही दूसरा रूप समझते थे।।4।। अपने कुल की चलन के अनुसार कुश भी एक बार युद्ध में इन्द्र की सहायता करने गए। वहाँ शक्तिशाली दुर्जय नाम के राक्षस को मारकर वे स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए।।5।। जैसे कुमुदों को खिलाने वाले चन्द्रमा के अस्त होने के साथ-साथ चाँदनी भी छिप जाती है, वैसे ही नागराज कुमुद की बहन कुमुद्वती भी कुश के साथ ही सती हो गई।।6।। कुश को तो इन्द्र के सिंहासन का आधा भाग मिला और कुमुद्वती जा कर इन्द्राणी के साथ पारिजात में आधा भाग ले बैठीं।।7।। लड़ाई में जाते समय कुश ने जो आज्ञा दी थी, उसके अनुसार मंत्रियों ने उनके पुत्र अतिथि को राजा बनाया।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम्।।9।।

तत्रैनं हेमकुम्भेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम्।।10।।

नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्यैराहतपुष्करैः।
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसंततिः।।11।।

दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन्।।12।।

पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः।
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः।।13।।

तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत।
सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विषः।।14।।

स्तूयमानः क्षणे तस्मिन्नलक्ष्यत स बन्दिभिः।
प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः।।15।।

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः।
ववृधे वैद्युतस्याग्नेवृष्टिसेकादिव द्युतिः।।16।।

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावतैषां समाप्येरन्यज्ञः पर्याप्तदक्षिणाः।।17।।

मंत्रियों ने उसके अभिषेक के लिये कारीगरों से चार खंभों का नया मंडप बनवाया।।9।। प्रजा ने भद्रपीठ पर बैठे हुए राजा अतिथि को सोने के घड़ों में भरे हुए तीर्थों के जल से नहलाया।।10।। थाप पड़ने पर मृदंग आदि बाजों से जो मीठा और गम्भीर शब्द निकल रहा था, वह यह सूचना दे रहा था कि राजा अतिथि का सदा कल्याण होगा।।11।। दूब, जौ के अंकुर बड़ की छाल और महुए के फूल दोनों में रखकर कुल के बूढ़ों ने जो आरती की, उसे राजा अतिथि ने बड़े आदर से स्वीकार किया।।12।। तब पुरोहित जी को आगे करके ब्राह्मण आए और उन्होंने विजयी राजा को अथर्ववेद के उन मंत्रों को पढ़कर नहलाना प्रारम्भ किया जिनसे विजय प्राप्त होती है।।13।। उनके सिर पर गिरती हुई अभिषेक के जल की धारा ऐसी सुन्दर लगती थी, मानो शिवजी के सिर पर गंगा जी की धारा गिर रही हो।।14।। उस समय भाट और चारण जब उनका विरद बखानने लगे तो ऐसा लगता था, मानो बहुत से चातक मिलकर बादल के गुण गा रहे हों।।15।। मन्त्रों से पवित्र हुए जल से स्नान करते समय उनके शरीर का तेज वैसे ही बढ़ गया, जैसे वर्षा के जल से बिजली की चमक बढ़ जाती है।।16।। अभिषेक के पश्चात् उन्होंने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को इतना धन दिया कि उस धन से वे स्वयं गहरी दक्षिणा दे-देकर अपना एक-एक यज्ञ कर सकते थे।।17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन्।
सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैर्दूरं पश्चात्कृता फलैः।। 18।।

बन्धच्छेदं स बद्धानां बधार्हाणामवध्यताम्।
धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्गवाम्।। 19।।

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन्।। 20।।

ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचिः।
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः।। 21।।

तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः।
आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः।। 22।।

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलेमन्तर्गतस्रजम्।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना।। 23।।

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना।
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम्।। 24।।

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान्।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः।। 25।।

ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर उन्हें जो आशीर्वाद दिया, उस आशीर्वाद को फलीभूत होने के लिये बहुत दिन देखने पड़े; क्योंकि आशीर्वाद के समय तो राजा अतिथि अपने पर्व जन्म के सत्कर्मों का ही फल भोग रहे थे, [आशीर्वाद का फल उस फल के समाप्त होने पर प्रारंभ होता] ।।18।। राज्याभिषेक की प्रसन्नता में अतिथि ने आज्ञा दी कि बन्दियों को छोड़ दिया जाय, मृत्यु-दण्ड पाए हुए मारे न जायँ, बोझ ढोने वाले पशुओं के कन्धे पर से जुए उतार लिय जायें और गौओं का दूध बछड़ों को पीने के लिये छोड़ दिया जाय।।19।। उनकी आज्ञा से पिंजड़े के तोते आदि पक्षी भी छोड़ दिए गए जो अपने मन से इधर-उधर उड़कर घूमने लगे।।20।। तब वह अपना राजसी शृंगार कराने के लिये हाथी-दाँत के बने उस सिंहासन पर बैठा जो राजभवन में एक ओर रखा हुआ था और जिस पर बिछावन बिछा हुआ था।।21।। शृंगारियों ने स्वच्छ हाथों से, धूप से सुगंधित केश वाले राजा अतिथि को सब प्रकार से सजा दिया।।22।। फूल और मोतियों की मालाओं से गुँथे हुए राजा के सिर पर उन्होंने वह पद्मरागमणि बाँधा जिसकी सुन्दर चमक चारों ओर फैल गई।।23।। तब उन्होंने कस्तूरी से सुवासित हुए चन्दन का अंगराग लगाकर गोरोचन से राजा का मुँह पर लेप लगाया।।24।। आभूषण और माला पहने हुए, हंस छपा हुआ दुपट्टा ओढे हुए, राजा अतिथि उस समय ऐसे सुन्दर दिखाई देते थे, मानो राजलक्ष्मी रूपी बहू के दूल्हे हों।।25।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये।
विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव।। 26।।
स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः।
ययावुदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभाम्।। 27।।
वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम्।
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम्।। 28।।
शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत्।
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव कैशवम्।। 29।।
बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः।
रेखाभावादुपारूढः सामग्रयंमिव चन्द्रमाः।। 30।।
प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम्।
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः।। 31।।
स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम्।
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा।। 32।।
तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा।
पूर्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम्।। 33।।

सोने के चौखटे वाले दर्पण में जब वे अपनी सजावट देखने लगे, उस समय उनका प्रतिबिम्ब ऐसा लग रहा था, मानो सूर्योदय के समय सुमेरु पर्वत पर कल्पवृक्ष का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो।।26।। तब वे अपनी उस सभा की ओर चले, जो किसी भी प्रकार देवताओं की सभा से कम नहीं थी। उनके पीछे-पीछे बहुत से सेवक हाथ से चँवर डुलाते और जय-जयकार करते चल रहे थे।।27।। वहाँ चँदोवा लगे हुए अपने पूर्वजों के सिंहासन पर वे तत्काल जा बैठे। उनके पैर के नीचे रखा हुआ पीढ़ा प्रणाम करने वाले राजाओं के सिर की मणियों की रगड़ से घिस गया।।28।। जैसे भृगु के चरण की चोट से बने हुए श्रीवत्स के चिह्न वाला विष्णु का वक्षःस्थल कौस्तुभमणि से चमक उठता है वैसे ही राजा अतिथि के बैठने से वह सभा-भवन भी जगमगा उठा।।29।। राजा अतिथि को युवराज बनने का अवसर ही नहीं आया; क्योंकि वे कुमार अवस्था के पश्चात् तुरन्त ही इस प्रकार महाराज हो गए मानो, एक कला वाले चन्द्रमा में तुरन्त सोलहों कलाएँ आ गई हों।।30।। उनका मुख सदा प्रसन्न रहता था और वे सबसे हँसकर बोलते थे; इसलिये उनके सेवक उन्हें साक्षात् विश्वास के समान मानते थे।।31।। इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा अतिथि जब ऐरावत के समान बलवान् हाथी पर चढ़कर अयोध्या में घूमने निकले तब कल्पवृक्ष के समान ध्वजओं वाली अयोध्या नगरी स्वर्ग के समान लगने लगी।।32।। यद्यपि राज-छात्र केवल अतिथि के सिर पर लगा हुआ था; पर उस श्वेतरंग के छत्र ने सारे संसार के उस ताप को दूर कर दिया जो कुश के वियोग से उत्पन्न हो गया था।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः।
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः।।34।।

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः।
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम्।।35।।

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः।
अनुदध्युरनुध्येयं सांनिध्यैः प्रतिमागतैः।।36।।

यावन्नाश्यायते वेदिरभिषेकजलाप्लुता।
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः।।37।।

वशिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः।
किं तत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः।।38।।

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम्।
ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः।।39।।

ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः।
युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः।।40।।

प्रजास्तद्गुरुणा नद्यो नभसेव विवर्धिताः।
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्ये ता इवाययुः।।41।।

आग की लपटें धुआँ निकलने के पीछे उठती हैं और किरणें सूर्य के उदय होने के पीछे दिखाई देती हैं; पर अतिथि ने इन तेजस्वियों के नियमों को भी उलट दिया; क्योंकि उनके गुण उनके राजा बनने के साथ-साथ प्रकट हो गए।।34।। जैसे शरद् ऋतु की निर्मल रातों के तारे ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं, वैसे ही नगर की स्त्रियों की प्रेम-भरी आँखें भी अतिथि के चारों ओर घूमने लगीं।।35।। अयोध्या के बड़े-बड़े मन्दिरों में जिन देवताओं की पूजा की गई, उन्होंने अपनी मूर्तियों में बैठ-बैठकर कृपा के योग्य राजा अतिथि पर बड़ी कृपा की।।36।। अभी अभिषेक के जल से भीगी हुई वेदी सूखने भी न पाई थी कि उनका दुस्सह प्रताप समुद्र के तट तक पहुँच गया।।37।। गुरु वशिष्ठ के मन्त्र और धनुषधारी राजा के बाण दोनों ने, कोई ऐसा कार्य नहीं था, जिसे मिलकर पूरा न कर डाला हो।।38।। धर्मात्माओं के मित्र राजा अतिथि, आलस्य छोड़कर वादी-प्रतिवादियों के पेचीदे झगड़े स्वयं निपटाते थे।।39।। जैसे वृक्षों को फूला हुआ देखकर यह जान लिया जाता है कि इससे इतने फल मिलेंगे वैसे ही राजा अतिथि के प्रसन्न मुख को देखकर ही उनके सेवक जान जाते थे कि हमें इतना धन मिलेगा।।40।। कुश के समय में जो प्रजा सावन की नदी के समान भरी-पूरी रहती थी, फिर वह अतिथि के राज्य में भादों की नदी के समान और भी अधिक उतराने लगी।।41।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत्।
सोभूद्भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन्।। 42।।

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः।। 43।।

इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम्।
अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीद्दृढमूल इव द्रुमः।। 44।।

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान्षट्पूर्वमजयद्रिपून्।। 45।।

प्रसादाभिमुखे तस्मिँश्चपलापि स्वभावतः।
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी।। 46।।

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः।। 47।।

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत्किचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः।। 48।।

रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्।
तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः।। 49।।

राजा अतिथि ने मुँह से जो कह दिया उसे पूरा कर दिखाया, जिसे जो दे दिया उससे फिर नहीं लिया। पर हाँ, शत्रुओं को उखाड़ कर उन्हें जमाते समय उन्होंने यह नियम तोड़ दिया था।।42।। यौवन, सौन्दर्य और ऐश्वर्य, इनमें से एक भी वस्तु जिनके पास होती है वह मद वाला हो जाता है, पर राजा अतिथि के पास ये सभी थे फिर भी उन्हें अभिमान छू तक न गया था।।43।। इस प्रकार प्रजा उनसे दिन पर दिन अधिक प्रेम करने लगी और नये राजा होने पर भी वे गहरी जड़ वाले वृक्ष के समान अचल हो गए।।44।। यह सोचकर कि बाहरी शत्रु तो सदा होते नहीं और होते भी हैं तो दूर रहते हैं, इसलिये उन्होंने शरीर के भीतर सदा रहने वाले छहों [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य] शत्रुओं को पहले ही जीत लिया।।45।। स्वभाव चंचल लक्ष्मी भी प्रसन्न मुख वाले अतिथि के पास आकर उसी प्रकार अचल होकर बैठ गई, जैसे कसौटी पर बनी हुई सोने की लकीर पक्की होकर बैठ जाती है।।46।। केवल कूटनीति से काम लेना कायरता है और मारकाट से जीतना हिंसक पशुओं का स्वभाव है, इसलिये उन्होंने कूटनीति और मारकाट दोनों को मिलाकर शत्रुओं को जीता।।47।। जैसे खुले आकाश में सूर्य की किरणों के फैल जाने से कुछ भी छिपा नहीं रह जाता, वैसे ही अतिथि ने चारों ओर दूतों का ऐसा जाल बिछा दिया कि प्रजा की कोई बात उनसे छिपी नहीं रह पाती थी।48।। शास्त्रों ने राजाओं के लिए दिन और रात के कर्त्तव्य निर्धारित किए हैं, उन सबको राजा अतिथि विश्वास के साथनियम पूर्वक पालते थे।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः।
स जातु सेव्यमानोपि गुप्तद्वारो न सूच्यते।।50।।

परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि।।51।।

दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासँस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः।।52।।

भव्यमुख्याः सभारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे।।53।।

अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः।।54।।

कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः।
कस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नौवोदपादयत्।।55।।

शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः।।56।।

वे प्रतिदिन मन्त्रियों के साथ राज्य की बातें करते थे, पर वे बातें इतनी गुप्त रखी जाती थीं कि प्रतिदिन व्यवहारों में आने पर भी किसी को उनका ज्ञान नहीं हो पाता।।50।। उन्होंने अपने कर्मचारियों तथा शत्रुओं का भेद जानने के लिये ऐसी चतुराई से उनके पीछे दूत लगा रखे थे कि वे दूत भी आपस में एक दूसरे को नहीं पहचान पाते थे। उन दूतों से सब समाचार मिलते रहने के कारण वे सोते हुए भी मानो जागते रहते थे।।51।। यद्यपि वे युद्ध में ही शत्रुओं को घेरते थे, फिर भी उन्होंने राजधानी के चारों ओर बहुत बड़े-बड़े दुर्ग बनवा दिये थे; क्योंकि हाथियों को मारने वाला सिंह गुफा में हाथियों के भय से नहीं सोता है; वरन् उसका स्वभाव ही वैसा होता है।।52।। वे जो काम करते थे; सब कल्याणकारी होते थे। वे कोई काम करने के पहले उस पर भली भाँति विचार भी करते थे। इसलिए उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी। जैसे धान का दाना भीतर ही भीतर पक जाता है, वैसे ही उनका काम भी गुप्तरूप से ही आरम्भ होकर पूरा हो जाता था।।53।। ऐश्वर्यशाली होकर भी उन्होंने खोटे मार्ग में पैर नहीं रखा; क्योंकि ज्वार के समय भी जब समुद्र बढ़ता है, तब नदियों के मार्ग से ही बढ़ता है दूसरे मार्गों से नहीं।।54।। उनमें इतनी शक्ति थी कि प्रजा में यदि किसी कारण असन्तोष हो, तो उसे क्षण भर में दूर कर दें; पर उन्होंने प्रजा में कोई ऐसा असन्तोष उत्पन्न ही नहीं होने दिया, जिसे दूर करने की आवश्यकता पड़े।।55।। वे शक्तिमान् थे, इसलिये शक्तिशाली राजाओं पर हीं चढ़ाई करते थे, दुर्बलों पर नहीं क्योंकि वायु की सहायता मिलने पर भी वन में लगी हुई आग कभी पानी को नहीं जलाती।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु।। 57।।
हीनान्यनुपकर्तृणि प्रवृद्धानि विकुर्वते।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः।। 58।।
परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम्।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा।। 59।।
कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते।। 60।।
परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु।
आवृणोदात्मनोरन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन्रिपून्।। 61।।
पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतास्त्रः सांपरायिकः।
तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहान्न व्यशिष्यत।। 62।।
सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः।
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम्।। 63।।
वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव।
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु।। 64।।

उन्होंने अर्थ और काम के लिये कभी धर्म को नहीं छोड़ा और धर्म से बँधकर अर्थ और काम को छोड़ा और न अर्थ के कारण काम को या काम के कारण अर्थ को छोड़ा वरन् धर्म, अर्थ और काम तीनों के साथ वे एक-सा व्यवहार करते थे।।57।। यदि नीच मित्र मिल जाते हैं, तो कुछ-न-कुछ खोट अवश्य करते हैं यदि धनी मिल जाते हैं तो कुछ न कुछ बाधा डालते हैं, इसलिए उन्होंने ऐसे लोगों को मित्र बनाया जो न नीच ही थे, न धनी ही थे।।58।। चढ़ाई करने के पहले वे अपने और अपने शत्रु के बल और त्रुटि को भली भाँति तोल लेते थे। जब शत्रु से अपना बल अधिक देखते थे तभी उस पर आक्रमण करते थे नहीं तो चुप बैठे रहते थे।।59।। उन्होंने इसलिये ये धन इकट्ठा किया कि एक तो इससे आदर होता और दूसरे, दीन लोग आकर आश्रय लेते हैं; क्योंकि चातक उन्हीं बादलों का स्वागत करते हैं, जिनमें पानी भरा होता है।।60।। शत्रुओं का उद्योग नष्ट करके वे अपने-उद्योग में लग गए। उन्होंने शत्रुओ के दोषों का लाभ उठाकर उन्हें नष्ट कर दिया और अपने दोष दूर कर लिए।।61।। कुश के प्रयत्न ही बढ़ी हुई शस्त्रास्त्र चलाना जानने वाली और युद्ध करने में समर्थ जो उनकी सेना थी उसे दण्डधर अतिथि अपने शरीर के समान सँभाल कर रखते थे।।62।। जैसे सर्प के सिर से मणि नहीं निकाली जा सकती वैसे ही शत्रु इनके प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीन शक्तियों को अपनी ओर नहीं खींच सके। पर जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही उन्होंने शत्रुओं की उन तीनों शक्तियों को अपनी ओर खींच लिया।।63।। अतिथि का इतना प्रताप था कि व्यापारी लोग ऐसे बे-रोक-टोक व्यापार करते थे कि नदियाँउनके लिए बावड़ी जैसी घरेलू वन भी उद्यान जैसे सुख कर और पहाड़ अपने भवन जैसे सुगम हो गये।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यपश्च संपदः।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक्।। 65।।

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान्।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः।। 66।।

स गुणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु।। 67।।

इति क्रमात्प्रयुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम्।
आतीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे।। 68।।

कूटयुद्धविधिज्ञोऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी।। 69।।

प्रायः प्रतापभग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः।
रणो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नान्यदन्तिनः।। 70।।

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी।। 71।।

उन्होंने विघ्नों से तपस्वियों के तप की रक्षा की, चोरों से प्रजा की सम्पत्ति को बचाया और चारों आश्रमों तथा चारों वर्णों से उनके धन के अनुसार छठा भाग पाया।।65।। जिस प्रकार वे रक्षा कर रहे थे, उसी प्रकार पृथ्वी भी उन्हें ऐश्वर्य देती जा रही थी। खानों ने रत्न दिए, खेतों ने अन्न दिया और वनों ने उन्हें हाथी दिए।।66।। कार्तिकेय के समान पराक्रमी राजा अतिथि यह भली भाँति जानते थे कि [सन्धि, विग्रह, यान, आसन संश्रय और द्वैधीभाव इन] छह राजगुणों को कैसे व्यवहार में लाना चाहिए तथा छह प्रकार की सेनाओं के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।।67।। इस प्रकार साम, दाम, दण्ड, भेद इन चार उपायों के साथ राजनीति चलाते हुए उन्होंने मन्त्रियों आदि की सहायता से उन उपायों का निर्विघ्न फल पा लिया।।68।। वे कपटयुद्ध भी जानते थे; पर युद्धक्षेत्र में वे धर्म की लड़ाई ही लड़ते थे, इसलिये वीरों की सखी विजयश्री उनके पास अभिसारिका के समान चुपके से पहुँच जाती थी।।69।। युद्ध-क्षेत्र में अतिथि को देखते ही शत्रुओं छक्के छूट जाते थे और वे प्राण लेकर भाग खड़े होते थे, इसलिये जैसे बिना मदवाले हाथी, मद वाले हाथी से नहीं लड़ पाते, वैसे ही प्रतापी राजा अतिथि से लड़ने का कोई साहस ही नहीं करता था।।70।। पूरा बढ़ चुकने पर चन्द्रमा घटने लगता है और समुद्र की भी यही दशा होती है, पर अतिथि के साथ बात उलटी थी। वे चन्द्रमा के समान बढ़े तो सही पर उनके समान घटे नहीं।।71।। जैसे विना पानी के मेघ समुद्र के पास जाते हैं और वह उन्हें इतना जल दे देता है कि वे संसार भर को जल बाँटने लगते हैं, वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तस्तस्याभिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः।
उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः।। 72।।
स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन्।
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः।। 73।।
दुरितं दर्शनेन घ्नँस्तत्त्वार्थेन नुदँस्तमः।
प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः।। 74।।
इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेऽशवः।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम्।। 75।।
पराभिसंधानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम्।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत्।। 76।।
एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना।
वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः।। 77।।
पञ्चमं लोकपालानामूचुः साधर्म्ययोगतः।
भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम्।। 78।।
दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम्।
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरंदरीमिव।। 79।।

ही जो बहुत से निर्धन विद्वान् अतिथि के पास आते थे, उन्हें वे इतना धन देते थे कि वे विद्वान् स्वयं भी दूसरों को दान देने लगते थे।।72।। उनके सभी काम प्रशंसा के योग्य होते थे; पर जब कोई उनकी प्रशंसा करता था, तब वे सकुचा जाते थे; पर प्रशंसा की इच्छा न करने पर भी उनका यश बढ़ता ही गया।।73।। जैसे निकलते हुए सूर्य के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं वैसे ही उनके दर्शन से पाप भाग जाते थे। वे ज्ञानी भी थे; इसलिए वे दूसरों को तत्त्व-ज्ञान सिखाकर अज्ञान का अँधेरा भी मिटाते थे। इसीलिये उन्होंने प्रजा को सब प्रकार से अपनी मुट्ठी में कर लिया।।74।। चन्द्रमा की किरणें कमलों में तथा सूर्य की किरणें कुमुदों में नहीं बैठ पातीं, पर अतिथि के गुणों ने शत्रुओं के हृदय में भी घर कर लिया और शत्रु भी उनके गुणों का लोहा मानते थे।।75।। अश्वमेध के लिए जब वे दिग्विजय करने निकले, तब उनका काम यद्यपि शत्रुओं को जिस-किसी प्रकार हराना ही था पर उस समय भी उन्होंने धर्म से ही काम लिया, कूटनीति अथवा छल से नहीं।।76।। इस प्रकार शास्त्रों के अनुसार चलने से अतिथि का प्रभाव बढ़ गया और जैसे इन्द्र देवताओं के देवता हैं वैसे ही वे भी राजाओं के राजा हो गए।।77।। इन्द्र आदि चारों लोकपालों के समान पराक्रम होने के कारण लोग उन्हें पाँचवाँ लोकपाल कहने लगे थे। [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँचों तत्वों के समान महान् होने के कारण लोग उन्हें छठा तत्त्व कहते थे और हिमालय आदि सात कुल पर्वतों के समान विशाल होने के कारण वे आठवें-कुल पर्वत कहलाते थे।।78।। जैसे देवता लोग इन्द्र की आज्ञा मानते है, वैसे ही राजा लोग भी अपने छत्र उतार कर उनकी आज्ञा अपने सिर-माथे चढ़ाते थे।।79।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्विजः स तथाऽऽनर्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ।
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च।।80।।
इन्द्राद्वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभू
द्यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचराणाम्।
पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोपवृद्धिं कुबेर
स्तस्मिन्दण्डोपनतचरितं भेजिरे लोकपालाः।।81।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अतिथिवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः।।

अश्वमेध के समय जिन ब्राह्मणों ने यज्ञ कराया था, उनका अतिथि ने इतना सत्कार किया कि लोग इन्हें भी दूसरा कुबेर कहने लगे।।80।। इन्द्र ने उनके साम्राज्य पर वर्षा की, यमराज ने रोगों का बढ़ना रोका, वरुण ने नाव चलाने वालों के लिये जल के मार्ग खोल दिए और कुबेर ने इनका राज-कोश भर दिया। इस प्रकार इन्द्र आदि लोकपाल मानो इनके प्रताप से ही डर कर इनकी सेवा कर रहे थे।।81।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में अतिथि-वर्णन
नाम का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अष्टादशः सर्गः ।।

स नैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्धशत्रुः।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव।।1।।
तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना।
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन संपत्तिफलोन्मुखेन।।2।।
शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः।
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह।।3।।
पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः।
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज।।4।।
तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः।
यो नड्वलानीव गजः परेषां बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः।।5।।
नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे नभस्तलश्यामतनुं तनूजम्।
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम्।।6।।
तस्मै विसृज्योत्तरकोशलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभवे प्रभुत्वम्।
मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध।।7।।

अठारहवाँ सर्ग

शत्रुओं का नाश करने वाले राजा अतिथि की रानी निषध-राज की पुत्री थीं। उस रानी से अतिथि ने निषधपर्वत के समान बलवान् पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम भी निषध रखा।।1।। जैसे समय की वर्षा से फले हुए अनाज के खेतों को देखकर संसार के प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ही अत्यन्त प्रतापी युवराज निषध को देखकर राजा अतिथि भी प्रसन्न हुए।।2।। कुमुद्वती के पुत्र अतिथि ने बहुत दिनों तक सुख भोगा फिर निषध को राजपाट सौंप कर अपने पुण्यों के बल से पाए हुए स्वर्गलोक में सुख भोगने चले गए।।3।। कमल के समान नेत्र वाले, समुद्र के समान गम्भीर चित्त वाले और नगर के प्रधान फाटक की अर्गला के समान बड़ी-बड़ी बाहों वाले अद्वितीय वीर निषध ने भी सागर तक फैली हुई पृथ्वी का भोग किया।।4।। उनके बाद अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र नल राजा हुए। उस कमल के समान सुन्दर मुख वाले राजा ने शत्रुओं के बल को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी नरकटके गट्ठे को तोड़ डालता है।।5।। वे इतने यशस्वी थे कि आकाश में गन्धर्व लोग उनका यश गाते थे। उन्हें आकाश के समान साँवला नभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो लोगों को वैसा ही प्यारा लगा, जैसे सावन का महीना।।6।। धर्मात्मा नल ने उस पुत्र को उत्तरकोशल का राज्य सौंप दिया और स्वयं बुढ़ापे के कारण जंगलों में जाकर मृगों के साथ इसलिये रहने लगे कि फिर संसार में जन्म ना लेना पड़े।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः।
शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः।।8।।
स क्षेमधन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम्।
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार।।9।।
अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत्।
व्यश्रूयतानीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य।।10।।
पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन।
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्वभूव।।11।।
पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम्।।12।।
वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वेषामिवासीद्विषतामपीष्टः।
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्।।13।।
अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनवाहुद्रविणः शशास।
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद्युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः।।14।।
गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः।
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव।।15।।

नभ को पुण्डरीक नाम का पुत्र हुआ और जैसे हाथियों में पुण्डरीक नाम का हाथी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही उस समय के राजाओं में वे भी सर्वश्रेष्ठ थे। पिता के स्वर्ग चले जाने पर कमल धारण करने वाली लक्ष्मी ने उन्हें ही विष्णु मानकर वरण कर लिया।।8।। उन सफल धनुषधारी पुण्डरीक ने प्रजा का कल्याण करने में समर्थ और शान्तस्वभाव वाले अपने पुत्र क्षेमधन्वा को राज सौंप दिया और स्वयं शान्त होकर जंगल में तपस्या करने चले गए।।9।। उस क्षेमधन्वा को भी इन्द्र के समान पुत्र हुआ जो युद्ध में सेना के आगे-आगे चलता था और जिसका देव शब्द से आरम्भ होने वाला और अनीक शब्दों से अन्त होने वाला नाम स्वर्ग में भी प्रसिद्ध हो गया।।10।। जैसे इस पितृभक्त पुत्र को पाकर क्षेमधन्वा सुपुत्रवान् हुए, वैसे ही पुत्र को प्यार करने वाले पिता को पा कर देवानीक भी पिता वाले हुए।।11।। बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले गुणी क्षेमधन्वा अपने ही समान तेजस्वी पुत्र को चारों वर्णों की रक्षा का भार सौंपकर स्वर्ग चले गए।।12।। उनके जितेन्द्रिय पुत्र देवानीक इतना मधुर बोलते थे कि शत्रु भी उनका वैसा ही आदर करते थे जैसे मित्र; क्योंकि मधुर वचन में ऐसा प्रभाव होता है कि एक बार डराए हुए हिरण भी वश में हो जाते है।।13।। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनग था। उनकी बाँहें बड़ी शक्तिशाली थीं। उन्होंने कभी नीच लोगों का साथ नहीं किया, इसलिये व्यसनों से दूर रहकर युवावस्था में ही वे सारी पृथ्वी पर शासन करने लगे।।14।। वे बड़े चतुर थे और सबके मन की बातें जान लेते थे। पिता के बाद राजा होकर वे सफलता के साथ साम-दाम-दंड भेद का प्रयोग करके शीघ्र ही विष्णु के समान चारों दिशाओं के स्वामी हो गए।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम्।
उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीःसिषेवे किल पारियात्रम्।। 16।।
तस्याभवत्सूनुरुदारशीलः शिलः शिलापट्टविशालवक्षाः।
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामव्रजदीड्यमानः।। 17।।
तमात्मसंपन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव।
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम्।। 18।।
तं रागवन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम्।
विलासिनीनामरतिक्षमापि जरा वृथा मत्सरिणी जहार।। 19।।
उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः।
सुतोऽभवत्पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य।। 20।।
ततः परं वज्रधरप्रभावस्तदात्मजः संयति वज्रघोषः।
बभूव वज्राकरभूषणायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः।। 21।।
तस्मिन्गते द्यां सुकृतोपलब्धां सत्संभवं शङ्खणमर्णवान्ता।
उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः।। 22।।
तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः।
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः।। 23।।

उस शत्रु विजयी राजा के स्वर्ग चले जाने पर अयोध्या की राज्य लक्ष्मी उनके प्रतापी पुत्र **पारियात्र** की सेवा करने लगी, जिन्होंने अपने सिर की ऊँचाई से पारियात्र पर्वत को भी नीचा दिखा दिया था।।16।। उन्हें **शिल** नाम का बड़ा शीलवान् पुत्र हुआ जिसकी छाती पत्थर की पाटी जैसी चौड़ी थी। यद्यपि उन्होंने बाणों से शत्रुओं को जीत लिया, फिर भी स्वयं वे नम्र ही रहे।।17।। शुद्ध चरित्र वाले पारियात्र ने बुद्धिमान् शिल को युवराज बनाने पर ही सुख भोगना प्रारंभ किया, क्योंकि राजा रहते हुए उन्हें इतने अधिक काम थे कि उन्हें सुख भोगने के लिये अवसर ही कहाँ मिलता था।।18।। वे अभी भोगों से संतृप्त नहीं थे और सुन्दरी स्त्रियों से भोग कर ही रहे थे कि उन्हें उस वृद्धावस्था ने आ घेरा, जो स्वयं भोगने योग्य न होने पर भी सुन्दरियों से व्यर्थ ही ईर्ष्या करती है।।19।। शिल को उन्नाभ नाम का प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिनकी नाभि गहरी थी और जो विष्णु के समान पराक्रमी होने के कारण संसार के सभी राजाओं के मुखिया बन गए।।20।। उनके बाद उनके पुत्र **वज्रनाभ**, हीरे की खानों का भूषण पहनने वाली पृथ्वी के स्वामी हुए। वे इन्द्र के समान प्रभावशाली थे और युद्धक्षेत्र में वज्र के समान गरजते थे।।21।। उन्होंने अपने पुण्य से स्वर्ग प्राप्त किया और उनके बाद **शंखण** नाम का उनका शत्रुविनाशक पुत्र सारी पृथ्वी का शासक हुआ।।22।। उनके बाद उनके अश्विनी कुमार के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र राजा हुए जिन्होंने सब देशों को जीत कर अपनी सेना और घोड़ों को समुद्र के तट पर ठहराया। इसलिये वृद्धों ने उनका नाम **व्युषिताश्व** [अर्थात् बहुत दूर तक घोड़ों को ले जाने वाला] रखा।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे।
पातुं सहो विश्वसखः समग्रां विश्वंभरामात्मजमूर्तिरात्मा।। 24।।
अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरणयरेता इव सानिलोऽभूत्।। 25।।
पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः।
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव।। 26।।
कौशल्य इत्युत्तरकोशलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः।। 27।।
यशोभिराब्रह्मसमं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम्।। 28।।
तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम्।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः।। 29।।
पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्त्ररथेन्द्रकेतोः।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम्।। 30।।
वंशस्थितिं वंशकरेण तेन संभाव्य भावी स सखा मघोनः।
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप।। 31।।

उन्होंने काशी के विश्वेश्वर की आराधना करके विश्वसह नामक पुत्र पाया जो संसार में बड़े प्रिय हुए और जिन्होंने सारी पृथ्वी पर शासन किया।। 24।। उस नीतिज्ञ विश्वसह को हिरण्यनाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो साक्षात् विष्णु का अंश था। ऐसे पुत्र को पा कर विश्वसह शत्रुओं के लिये वैसे ही भयंकर हो गए, जैसे वायु की सहायता पा कर वृक्षों के लिये अग्नि भयंकर हो उठती है।। 25।। अब वे पिता के ऋण से उऋण हो गए और बहुत सुख भोगकर वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य देकर स्वयं वल्कल पहन कर वन में चले गए।। 26।। उत्तरकोशल के स्वामी और सूर्यकुल के भूषण उन हिरण्यनाभ को कौशल्य नाम का पुत्र हुआ, जो सब की आँखों को उसी प्रकार आनन्द देने वाला था मानो दूसरा चन्द्रमा ही हो।। 27।। कौशल्य का यश ब्रह्मा की सभा तक प्रसिद्ध हो गया। वृद्धावस्था में उन्होंने ब्रह्मिष्ठ नाम के अपने ब्रह्मज्ञानी पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं ब्रह्मप्राप्ति के लिये वन में तप करने चले गए।। 28।। भली सन्तान वाले ब्रह्मिष्ठ भी अपने कुल के शिरोमणि थे। उन्होंने बड़ी योग्यता से शासन किया। उनके सुन्दर शासन को देखकर प्रजा को आनन्द के आँसू आ जाते थे। उनके शासन में प्रजा बहुत दिनों तक सुख भोगती रही।। 29।। उनके सुपुत्र ने उन्हें पुत्रवानों का शिरोमणि बना दिया। पिता की सेवाशुश्रूषा करने से वे बड़े योग्य हो गए थे। वे गरुडध्वज विष्णु के समान सुन्दर थे और उन कमललोचन का नाम भी पुत्र ही था।। 30।। विषय-वासनाओं से दूर रह कर इन्द्र के भावी मित्र ब्रह्मिष्ठ ने अपनी कुल प्रतिष्ठा अपने पुत्र नाम वाले पुत्र को सौंप दी और स्वयं त्रिपुष्कर क्षेत्र में स्नान करके स्वर्ग चले गए।। 31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये।। 32।।
महीं महेच्छः परिकीर्य सूनौ मनीषिणो जैमिनयेऽर्पितात्मा।
तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः।। 33।।
ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसंधिरुर्वीम्।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसंधे संधिर्ध्रुवः संनमतामरीणाम्।। 34।।
सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः।
मृगायताक्षो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः।। 35।।
स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम्।
अनाथदीनाः प्रकृतिरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिच्चकार।। 36।।
नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत्।। 37।।
लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः संभावितो मौलिपरिग्रहात्सः।
दृष्टो हि वृणवन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः।। 38।।
तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तमाधोरणालम्बितमग्र्यवेशम्।
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण।। 39।।

राजा पुत्र की पत्नी से पूस की पूर्णिमा के दिन पद्मरागमणि से भी अधिक कान्तिमान् पुष्य नामक पुत्र हुआ। उसके जन्म होने से प्रजा उसी प्रकार धन-धान्य से भरपूर हो गई मानो दूसरा पुष्य नक्षत्र ही निकल आया।।32।। राजा पुत्र बड़े उदार हृदय वाले थे। वे संसार में फिर जन्म लेना नहीं चाहते थे इसीलिये उन्होंने पृथ्वी का भार अपने पुत्र पुष्य को सौंप दिया और स्वयं जैमिनि ऋषि के शिष्य होकर उनसे योग सीख कर आवागमन से मुक्त हो गए।।33।। पुष्य के बाद उनके ध्रुव के समान निश्चल पुत्र ध्रुवसन्धि राजा हुए जिनसे डर कर शत्रुओं ने सन्धि कर ली। उनका लिखा हुआ सन्धिपत्र पक्का होता था; क्योंकि वे अपनी बात के धनी थे।।34।। उनके नेत्र मृगों के नेत्रों के समान बड़े-बड़े थे और वे पुरुषो में सिंह के समान थे। एक दिन वे जंगल में आखेट करते हुए मारे गए। उस समय तक द्वितीया के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगने वाला सुदर्शन नाम का उनका पुत्र बालक ही था।।35।। उन स्वर्गगामी राजा के मन्त्रियों ने राजा के न होने से प्रजा की दीनदशा देखकर सर्वसम्मति से उनके इकलौते पुत्र सुदर्शन को विधिपूर्वक साकेत का स्वामी बना दिया।।36।। इस बालक से राजा रघु का कुल वैसे ही शोभा देने लगा जैसे द्वितीया के चन्द्रमा से आकाश, सिंह के बच्चे से वन और कमल की कली से सरोवर शोभा देता है।।37।। उस बालक सुदर्शन ने जब सिर पर मुकुट धारण किया, तभी प्रजा ने आँक लिया कि यह पिता के समान ही तेजस्वी होगा, क्योंकि हाथी के बच्चे के समान छोटा दिखाई देने वाला बादल भी पूर्वी-पवन का सहारा पा कर चारों दिशाओं में फैल जाता है।।38।। जब वे छह वर्ष के छोटे से राजा हाथी पर चढ़कर राजमार्ग से निकलते थे, तब हाथीवान उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय।
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामीकरपिञ्जरेण।। 40।।
तस्मादधः किंचिदिवावतीर्णावसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम्।
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ।। 41।।
मणौ महानील इति प्रभाददल्पप्रमाणेऽपि तथा न मिथ्या।
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्युयुजेऽर्भकेऽपि।। 42।।
पर्यन्तसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात्।
तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम्।। 43।।
निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः।
तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार।। 44।।
शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद्धुरं धरित्र्या बिभरांबभूव।। 45।।
न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कात्स्न्र्येन गृह्णाति लिपिं न यावत्।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्फलान्युपायुङ्क्त स दण्डनीतेः।। 46।।
उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा।
संजातलज्जेव तमातपत्रच्छायाच्छलेनोपजुगूह लक्ष्मीः।। 47।।

राजसी वस्त्रों के कोने को थामे रखता था कि कहीं वे गिर न पड़ें। उस समय भी उन्हें देखकर जनता अपने पिता के समान ही उनका आदर करती थी।।39।। वे छोटे थे, इसलिये जब वे अपने पिता के सिंहासन पर बैठते थे, तो वह पूरा भरता नहीं था। पर उनके शरीर से जो सुवर्ण के समान तेज निकलता था, उससे वह सिंहासन भरा-सा ही जान पड़ता था।।40।। उस सिंहासन से उनके पैर लटकते रहते थे क्योंकि छोटे होने के कारण पाद-पीठ तक पहुँच नहीं पाते थे पर राजा लोग अपने प्रसिद्ध मुकुटों से उन महावर लगे पैरों का वन्दन करते रहते थे।।41।। जैसे छोटा होने पर भी मणि का महानील नाम निरर्थक नहीं होता, वैसे ही बालक राजा सुदर्शन का महाराज नाम भी उनके अनुकूल ही था।।42।। उनके आस-पास चँवर डुलाए जाते थे और उनके गालों पर लटें लटकती रहती थीं। इस बालक अवस्था में भी उन्होंने जो आज्ञाएँ दीं, उन्हें समुद्र के तट वाले लोगों ने भी नहीं टाला, फिर पास रहने वालों की तो बात ही क्या।।43।। सोने का पट्टा बँधे हुए अपने ललाट पर वे स्वयं तिलक लगाते थे और सदा हँसमुख रहते थे, पर संग्राम में शत्रुओं को नष्ट करके उन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों के मुख का तिलक और उनकी मुस्कुराहट दोनों छीन लीं।।44।। वे सिर के फूल से भी अधिक सुकुमार थे; इसलिये यद्यपि उन्हें गहने पहनने में भी कष्ट होता था, फिर भी उनमें आत्मशक्ति इतनी थी कि उन्होंने पृथ्वी के अत्यन्त भारी भार को सँभाल लिया।।45।। अभी वे पट्टिका पर भली भाँति अक्षर भी लिखना नहीं सीख पाए थे कि विद्वानों के संसर्ग से वे दण्डनीति और राजनीति की सारी बातें जान गए।।46।। बालक राजा के हृदय को अभी छोटा समझ कर लक्ष्मी उनके युवा होने की आशा लगाए बैठी थीं; पर बीच-बीच में छत्र की छाया बनकर उनका आलिङ्गन कर ही लेती थीं, मानो छोटा पति होने के कारण उनसे खुलकर गले लगने में लजा रही हों।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनश्नुवानेन युगोपमानमबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन।
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः।। 48।।
न केवलं गच्छति तस्य काले ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम्।
वंश्या गुणाःखल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माःप्रथिमानमापुः।। 49।।
स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम्।
तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः।। 50।।
व्यूह्य स्थितः किंचिदिवोत्तरार्धमुन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः।
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः।। 51।।
अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम्।
अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे।। 52।।
प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैः।
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः।। 53।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
वंशानुक्रमो नामाष्टादशः सर्गः।।

यद्यपि उनकी भुजा जुए के समान मोटी और लम्बी नहीं हुई थी, धनुष की डोरी खींचने से कड़ी भी नहीं हो पाई थी और तलवार की मुठिया भी नहीं छू सकी थी, फिर भी उसने पृथ्वी की रक्षा भली-भाँति कर ली।।48।। कुछ ही दिनों में केवल उनके शरीर के अंग ही नहीं बढ़े वरन् उनके वे वंश-परम्परा वाले गुण भी बढ़े, जो पहले छोटे ही थे और जो प्रजा को बहुत प्यारे लगते थे।।49।। उन्होंने धर्म, अर्थ और काम फल देने वाले त्रयी (तीनों वेद), वार्ता (कृषि) और दण्ड नीति तीनों विद्याओं को इतनी शीघ्रता से सीख लिया, मानो पूर्वजन्म में ही वे उन्हें पढ़ चुके हों। साथ ही अपने पिता की प्रजा को भी उन्होंने अपने वश में कर लिया।।50।। जब वे धुनर्विद्या सीखते समय अपने शरीर का ऊपरी भाग कुछ आगे बढ़ा देते थे, बाल ऊपर बाँध लेते थे, बाई जाँघ कुछ झुका लेते थे और बाण चढ़ाकर धनुष की डोरी कान तक खींचते थे, उस समय वे बड़े सुन्दर लगते थे।।51।। तब सुदर्शन के शरीर में वह जवानी आ गई, जो स्त्रियों की आँखों की मदिरा होती है, शरीर की स्वाभाविक शोभा होती है और विलास का पहला अड्डा होता है।।52।। दूतियाँ भिन्न-भिन्न राजधानियों में जा कर सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियों का चित्र ले आईं और राजा को संतान होने की इच्छा से मन्त्रियों ने चित्र से बढ़कर सुन्दरी उन राजकुमारियों का विवाह महाराज सुदर्शन से करा दिया। विवाह हो जाने पर वे सब राजकुमारियाँ, राजा की पहली रानियों की, पृथ्वी की और राजलक्ष्मी की सौत के समान हो गईं।।53।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्यों वंशानुक्रम
नाम का अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकोनविंशः सर्गः

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी।।1।।
तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः संचिकाय फलनिःस्पृहस्तपः।।2।।
लब्धपालनविधौ न तत्सुतः खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी।
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता।।3।।
सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः।
संनिवेश्य सचिवेष्वतः परं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत्।।4।।
कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः।।5।।
इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम्।
अन्तरेव विहरन्दिवानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः।।6।।
गौरवाद्यादपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।।7।।

उन्नीसवाँ सर्ग

विद्वान् राजा सुदर्शन ने बुढ़ापे में अपने अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण को राजा बना दिया और स्वयं नैमिषारण्य में रहने लगे।।1।। वहाँ वे तीर्थजल के आगे घर की बावलियों को, भूमि पर बिछे हुए कुश के आगे राजसी पलँग को तथा कुटिया के आगे बड़े-बड़े महलों को भूल गए और फल की इच्छा छोड़कर तप करने लगे।।2।। पिता से पाई हुई पृथ्वी का पालन करने में अग्निवर्ण को कोई कठिनाई नहीं हुई; क्योंकि उनके पिता ने शत्रुओं को पहले ही हरा दिया था। इसलिये इन्हें तो केवल भोग करने के लिये ही राज्य मिला था, राज्य के शत्रुओं को मिटाने के लिये नहीं।।3।। इसका फल यह हुआ कि अग्निवर्ण कामुक हो गए। कुछ दिनों तक तो उन्होंने स्वयं राज-काज देखा, पर फिर मन्त्रियों पर राज्य का भार डाल कर जवानी का रस लेने लगे।।4।। वह कामी राजा कामिनियों के साथ उन भवनों में दिन-रात पड़ा रहने लगा जिसमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एक से एक बढ़कर ऐसे उत्सव होते रहते थे कि अगले दिन के उत्सव के धूम-धड़ाके के आगे पहले दिन का उत्सव फीका पड़ जाता था।।5।। उसे ऐसा चसका लग गया कि वह क्षणभर भी भोगविलास के बिना नहीं रह सकता था। इसलिये वह सदा रनिवास के भीतर रहकर ही विहार करने लगा। उसके दर्शन के लिये जनता अधीर रहती थी, पर वह कभी उनकी सुध नहीं लेता था।।6।। यदि कभी मन्त्रियों के कहने-सुनने से वह प्रजा को दर्शन भी देता, तो बस इतना ही कि झरोखे से एक पैर बाहर लटका देता था।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः कोमलात्मनखरागरूषितम्।
भेजिरे नवदिवाकरातपस्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम्।।8।।
यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः।।9।।
तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैर्धौतरागपरिपाटलाधरैः।
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः।।10।।
घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः।
अभ्यपद्यत स वासिताः पुष्पिता कमलिनीरिव द्विपः।।11।।
सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः।
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं सोऽपिबद्बकुलतुल्यदोहदः।।12।।
अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयङ्गमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना।।13।।
स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत्।।14।।
चारु नृत्यनिगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात्।
प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ।।15।।

राज कर्मचारी उनके नखों की लाली वाले उस चरण को नमस्कार करके आराधना करते थे जो प्रभात की लाल किरणों से भरे हुए कमल के समान था।।8।। वह महाकामी राजा उन बावलियों में सुन्दर स्त्रियों के साथ विहार करता था, जिनमें विलास- घर भी बने हुए थे। स्त्रियों के ऊँचे-ऊँचे स्तन जब बावली के कमलों से टकराते थे तब वे कमल हिलने लगते थे।।9।। जल में स्नान करने से जब उन स्त्रियों की आँखों का आँजन छूट जाता था और ओठों पर लगी हुई लाली धुल जाती थी, तब उनकी स्वाभाविक सुन्दरता को देखकर वह और भी अधिक मोहित हो उठता था।।10।। हाथी जैसे खिली हुई कमलिनियों की गन्ध भरे सरोवर में हथिनियों के साथ बैठता है, वैसे ही अग्निवर्ण भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ मद्य के गंध में बसी हुई पानशाला या मदिरा घर में पहुँचता था।।11।। वहाँ वे स्त्रियाँ अग्नि वर्ण का जूठा मदकारी आसव बड़े प्रेम से पीती थीं। जैसे मौलसिरी का पेड़ स्त्रियों के मुख का आसव पाने को तरसा करता है; उसी प्रकार उन स्त्रियों के मुख से आसव पीने की इच्छा करने वाला अग्निवर्ण भी उनके मुँह का आसव पिया करता था।।12।। गोद में बैठाने योग्य दो ही तो वस्तुएँ हैं—एक तो मनोहर शब्द वाली वीणा और दूसरी मधुर-भाषिणी कामिनी। इन दोनों ने उसकी गोद को सदा भरपूर रखा।।13।। जब नर्तकियों के नाचते समय वह स्वयं मृदंग बजाने लगता था, तब उसके गले की माला हिल उठती थी। उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता था कि नर्तकियाँ सुध-बुध खोकर नाचना भी भूल जाती थीं। इसका फल यह होता था कि उन्हें नाचना सिखाने वाले उनके जो गुरु वहाँ बैठे रहते थे, उनके आगे वे अपनी इस बात पर लजा जाती थीं।।14।। जब नृत्य समाप्त हो जाता था और नाचने के परिश्रम से उनके मुख पर पसीने की बूँदे छा जाती थीं तब राजा अग्निवर्ण प्रेम पूर्वक फूँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य सावरणदृष्टसंधयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः।। 16।।
अंगुली किसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम्।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः।। 17।।
तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः।। 18।।
लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहान्नर्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः।
वर्तते स्म स कथंचिदालिखन्नङ्गुलीक्षरणसन्नवर्तिकः।। 19।।
प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम्।
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम।। 20।।
प्रातरेत्यपपरिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः।
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्सोऽधुनोत्प्रणयमन्थरः पुनः।। 21।।

मार-मारकर उनके मुख को चूमने लगता था। उस समय वह समझता था कि मैं इन्द्र और कुबेर से भी बढ़कर सुखी और भाग्यवान् हूँ।।15।। वह सदा नई-नई भोग की सामग्रियाँ चाहता था। जिस वस्तु से उसका मन भर जाता था, उसे वह छोड़ देता था; इसलिये स्त्रियाँ संभोग के समय राजा से आधी ही रति करके उठ खड़ी होती, पूरी नहीं। क्योंकि उन्हें डर था कि यदि राजा पूर्णरूप से तृप्त हो जायगा, तो हमें छोड़ देगा।।16।। कभी-कभी जब वह राजा इन कामिनियों को धोखा या चकमा दे जाता था, तब वे बिगड़ कर अपनी लाल-लाल उँगलियाँ चमका-चमका कर धमकाती थीं, भौंहे तरेरती थीं और राजा को अपनी करधनी से बाँध देती थीं।।17।। जिस दिन रात को उसे किसी स्त्री से संभोग करने जाना होता, तो दूती से सब बातें बताकर वह पास ही छिपकर बैठ जाता। वह स्त्री जब आती और विप्रलब्ध नायिका के समान दूती से विरह की (इस प्रकार) बातें करने लगती [कि पता नहीं वे कब आयेंगे, अभी तक आए क्यों नहीं? इत्यादि] तब वह उन बातों को छिपे-छिपे बड़े प्रेम से सुनता था।।18।। जब कभी उसे रानियाँ रोक लेतीं, तब नर्तकियों के न मिलने से विरह-कातर हो जाता और हाथों में तूलिका लेकर किसी नर्तकी का चित्र बनाने लगता था। उस समय उसे वह नर्तकी स्मरण हो आती और सात्त्विकभाव के कारण उसकी उँगलियों में पसीना आ जाता और कूँची फिसल पड़ती थी। इस प्रकार वह बड़ी कठिनाई से चित्र बना पाता था।।19।। यदि राजा किसी रानी से प्रेम करता तो, वह गर्व से फूली न समाती। यह देखकर उसकी सौतें जल उठती थीं और कामातुर हो जाती थीं और किसी उत्सव का बहाना करके राजा को अपने यहाँ बुलाकर उसके साथ अपनी तपन बुझाती थीं।।20।। रात में बाहर किसी स्त्री से संभोग करके जब राजा प्रातःकाल घर लौटता था, तब रात के भोग वाले सुन्दर वेश में उसे देखकर उसकी प्रेमिकाएँ खंडिता नायिका के समान आँसू बहाने लगती थीं और राजा हाथ जोड़कर उन्हें मना लेता था। पर जब रात की थकावट के कारण वह उनसे भरपूर प्रेम नहीं करता था तो वे फिर व्याकुल हो उठती थीं।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम्।
प्रच्छादान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः।। 22।।
क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः।
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम्।। 23।।
नाम वल्लभजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते।
लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रविस्खलितमूचुरङ्गनाः।। 24।।
चूर्णबभ्रुलुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम्।
उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत्।। 25।।
स स्वयं चरणरागमादधे योषितां न च तथा समाहितः।
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः।। 26।।
चुम्बने विपरिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम्।। 27।।
दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः।
छायया स्मितमनोज्ञया वधूह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः।। 28।।

जब स्त्रियाँ देखती कि राजा स्वप्न में बड़बड़ाते हुए किसी दूसरी स्त्री की बड़ाई कर रहा है तब वे कामिनियाँ बिना बोले ही बिस्तर के कोने पर आँसू गिराती हुई, क्रोध से कँगन तोड़ कर उनसे पीठ फेरकर सो जाती थीं और इस प्रकार उनसे रूठ जाती थीं।।22।। कभी-कभी दूतियाँ राजा को मार्ग दिखाती हुईं उस स्थान पर ले जातीं जहाँ लताओं के बीच में सम्भोग के लिये फूलों की सेज शय्या रहती थी। उस समय उसे यह डर होता कि कहीं ये दासियाँ जाकर रानियों से न कह दें। इसलिये दासियों को फुसलाने के लिये वह उन दासियों से सम्भोग करके उन्हें प्रसन्न कर देता था।।23।। कभी-कभी वह भूल से स्त्रियों के आगे किसी बाहरी प्रेमिका का नाम ले लेता। उसे सुनकर वे स्त्रियाँ कहने लगतीं कि बड़ा अच्छा हुआ जो आपने अपनी प्रेमिका का नाम बता दिया। धन्य है उसका भाग्य! पर क्या करें, हमारा भी तो लोभी मन नहीं मानता। आपको कैसे छोड़ दें?।।24।। जब वह सोकर उठता तब उसका पलंग, फैले हुए केसर के चूर्ण से सुनहरा दिखाई देता था। उस पर फूलों की मसली हुई मालाएँ और टूटी हुई मेखलाएँ पड़ी रहती थीं और जहाँ-तहाँ महावर की छाप पड़ी रहती थीं, जिसे देखकर प्रकट होता था कि वह कितना विलासी है।।25।। कभी-कभी वह स्त्रियों के पैरों में स्वयं महावर लगाने बैठ जाता। पर उसी समय उसकी दृष्टि स्त्रियों के उन नितम्बों पर पड़ जाती थी जिन पर से कपड़ा सरका हुआ रहता था। उन्हें देखकर वह ऐसा मुग्ध हो जाता कि भली भाँति महावर भी नहीं लगा पाता था।।26।। सम्भोग के समय जब वह स्त्रियों के ओठ चूमने लगता, तब वे मुँह फेर लेती थीं और जब कमर का नीवीबन्ध खोलने लगता तब हाथ थाम लेतीं। इस प्रकार वह जो कुछ करना चाहता, स्त्रियाँ कुछ भी नहीं करने देती थीं, फिर भी उसका काम बढ़ता ही गया।।27।। जब कभी स्त्रियाँ दर्पण के आगे खड़ी होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः।
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशात्ययविसर्गचुम्बनम्।।29।।
प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेशमतिशक्रशोभिनम्।
पिप्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम्।।30।।
मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः।
विद्महे शठ पलायनच्छलान्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः।।31।।
तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः।
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम्।।32।।
संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः।
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चकृषुस्तमङ्गनाः।।33।।
योषितामुडुपतेरिवार्चिषां स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन्।
आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः।।34।।
वेणुना दशनपीडिताधारा वीणया नखपदाङ्कितोरवः।
शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्मनयना व्यलोभयन्।।35।।

दाँत से काटने आदि संभोग के चिह्नों को देखने लगती थीं, तब राजा उनके पीछे चुपके से आ कर खड़ा हो जाता और मुसकरा देता। जब दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब स्त्रियाँ देखकर मुँह नीचा कर लेती थीं।।28।। जब वह प्रातःकाल पलँग से उठ कर जाने लगता तब स्त्रियों की इच्छा होती कि बिछुड़ने के पहले राजा एक बार गले में बाँहें डालकर चूम तो ले।।29।। वह राजा इन्द्र के वस्त्रों से भी सुन्दर अपने राजसी वस्त्र को दर्पण में देखकर उतना प्रसन्न नहीं होता था, जितना संभोग के चिह्नों को देखकर।।30।। कभी-कभी अपनी रानियों के पास बैठे-बैठे उसके मन में किसी प्रियतमा के पास जाने की इच्छा होती, तो वह यह कहकर उठने लगता—अरे मुझे एक मित्र से मिलने जाना है। यह सुनकर रानियाँ समझ जातीं और कहने लगतीं कि हम भी भली-भाँति जानती हैं कि तुम किस मित्र के यहाँ जा रहे हो और फिर बाल पकड़ कर उसे रोक लेतीं।।31।। जब कभी उसके साथ बहुत देर तक संभोग करने के कारण स्त्रियाँ अलसा जाती थीं, तब वे अपने मोटे-मोटे स्तनों से राजा की छाती के चन्दन को पोंछती हुई उसके वक्षःस्थल पर इस प्रकार सो जाती थीं, मानो वे संभोग का वह कंठसूत्र नाम का आसन साज रही हों, जिसमें स्त्रियाँ पति के ऊपर सो कर अपने स्तनों से धीरे-धीरे अपने प्रियतम की छाती को थपकते हुए कस कर छाती से लिपट जाती हैं।।32।। रात को वह संभोग की इच्छा से छिपकर जब बाहर जाने को होता था, तो दूतियों से समाचार पा कर उसकी स्त्रियाँ उसके आगे पहुँच जाती थीं और यह कहते हुए खींच लाती थीं कि कहिए चकमा देकर रात को किधर चले।।33।। स्त्रियों के स्पर्श से उसे वैसा ही आनन्द मिलता था जैसा चन्द्रमा की किरणों से। अतः वह कुमुदों के समान रात भर जागता रहता और दिन भर सोता था।।34।। उसने गाने वाली स्त्रियों के ओठों पर अपने दाँत के और उनकी जाँघों पर नखों के ऐसे घाव कर दिए थे कि जब वे अपने अधरों पर बाँसुरी और जाँघ पर वीणा रखतीं तब उन्हें बड़ा कष्ट होता और वे ढेढ़ी भौंह से राजा की ओर देखने लगती थीं [कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन्।
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसन्निधौ।। 36।।

अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः।
प्रावृषि प्रमदबर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः।। 37।।

विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीर्नानुनेतुमबलाः स तत्वरे।
आचकाङ्क्ष घनशब्दविक्लवास्ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम्।। 38।।

कार्तिकीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनासखः।
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम्।। 39।।

सैकतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलाम्।
स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैर्व्यलोकयत्।। 40।।

मर्मरैरगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः।
जह्नु-राग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः।। 41।।

अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयो गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु।
तस्य सर्वसुरतान्तरक्षमाः साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः।। 42।।

सब आपकी ही करतूत है।] उनकी यह भावभंगी देखकर राजा और रीझ उठता था।।35।। इतना ही नहीं, जब वह एकान्त में स्त्रियों को आंगिक, सात्त्विक और वाचिक तीनों प्रकार का अभिनय सिखाकर अपने मित्रों के आगे उनका प्रदर्शन करता था, उस समय वह बड़े-बड़े नाट्यशास्त्रियों के भी कान काटता था।।36।। वर्षा ऋतु में वह कुटज और अर्जुन की माला गले में पहनकर तथा शरीर में कदम्ब के पराग का अंगराग लगाकर, मतवाले मोर से भरे हुए क्रीड़ा-पर्वतों पर विहार किया करता था।।37।। जब पलंग पर सोई हुई स्त्रियाँ रूठ कर पीठ फेर कर सो जातीं थी, तब राजा उन्हें मनाना नहीं चाहता था, वरन् यह चाहता था कि किसी प्रकार बादल गरज उठें, जिससे डर कर ये मेरी छाती से आ चिपटें।।38।। कार्तिक क़ी रातों में वह राजभवन के ऊपर चँदोवा तनवा देता था और सुन्दरियों के साथ उस चाँदनी का आनन्द लेता था, जो संभोग का श्रम दूर करती है और जो बादलों के न रहने से बराबर फैली रहती है।।39।। वह अपने राजभवन के झरोखे से सरयू को देखता था, जिसके तट पर उज्ज्वल हंसों की पातें बैठी रहती थीं। वह दृश्य ऐसा दिखाई देता मानो सरयू, उन सुन्दरियों का अनुकरण कर रही हो, जिनके नितम्बों पर मेखला पड़ी हो।।40।। पतली कमर वाली स्त्रियाँ जाड़े के ऐसे कपड़े पहनती थीं जो माड़ी के कारण करकराते थे और जिनके नीचे झलकती हुई सोने की मेखला को बाँधने और खोलने के लिये लालायित रहने वाला वह राजा मोहित हो जाता था।।41।। सब प्रकार की संभोगक्रीड़ा करने योग्य हेमन्त ऋतु की बड़ी-बड़ी रातों में वह राजभवन की भीतरी कोठियों में विहार किया क़रता था, जहाँ उसके साक्षी केवल वे दीप थे, जो वायु के न आने से एकटक होकर सबको देख रहे थे।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणेन पवनेन संभृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम्।
अन्वनैषुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः।। 43।।
ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया प्रेङ्खयन्पूरिजनापवद्धिया।
मुक्तरज्जु निविडं भयच्छलात्कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः।। 44।।
तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः।। 45।।
यत्स लग्नसहकारमासवं रक्तपाटलसमागमं पपौ।
तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नवः।।46।।
एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः।
आत्मलक्षणनिवेदितानृतूनत्यवापहदनङ्गवाहितः।। 47।।
तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः।
आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्।। 48।।
दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते।। 49।।
तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम्।। 50।।

मलयपर्वत से आए हुए दक्षिण के पवन से आमों में बौर छा गए, जिन्हें देखकर प्रेमिकाओं ने कामोन्मत्त होकर राजा से रूठना छोड़ दिया और उसके विरह में व्याकुल होकर स्वयं उसे ढूँढने लगीं।।43।। उन स्त्रियों को गोद में बैठाकर वह उन झूलों में झूलने लगा जिन्हें नौकर झुला रहे थे। राजा ने एक बार झूले को जो झटका दिया तो उन स्त्रियों ने भय का बहाना करके रस्सी छोड़ दी और राजा के गले में बाँह डाल कर उनसे लिपट गईं।।44।। ग्रीष्म ऋतु में स्तनों पर चन्दन लगाकर, मोतियों का आभूषण पहनकर और नितम्ब पर मणि की मेखला लटका कर वे स्त्रियाँ उस राजा के साथ संभोग करके उसे प्रसन्न करती थीं।।45।। उस समय वह आम की बौर और पाटल का लाल फूल पात्र में लगाकर आसव पीता था, जिससे बसंत बीतने से मंद पड़ा हुआ उसका काम फिर जाग उठता था।।46।। इस प्रकार वह कामी राजा राज-काज छोड़कर इन्द्रिय-सुखों का रस लेता हुआ ऋतुएँ बिताने लगा। वह काम-क्रीड़ा के लिये भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का वेश बनाया करता था, इसलिये उसके वेश को देखकर ज्ञात हो जाता था कि किस समय कौन-सी ऋतु है।।47।। इतना व्यसन में लीन होने पर भी दूसरे राजा उसके राज्य पर आक्रमण नहीं करते थे। फिर भी जैसे दक्ष के शाप से चन्द्रमा को क्षयरोग हो गया था, वैसे ही अधिक भोग-विलास करने से उसे भी क्षय रोग हो गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा।।48।। वैद्यों के बार-बार रोकने पर भी उसने काम को जगाने वाली ये वस्तुएँ नहीं छोड़ीं; क्योंकि जब इन्द्रियाँ एक बार विषय में फँस जाती हैं तब उन्हें रोकना कठिन हो जाता है।।49।। धीरें-धीरे उसका शरीर पीला पड़ गया, दुर्बलता के कारण उसने आभूषण पहनना भी छोड़ दिया, वह नौकरों के कन्धे पर सहारा देकर चलने लगा, उसकी बोली धीमी पड़ गई और यक्ष्मा रोग से सूख कर वह ठीक विरहियों के समान दिखाई देने लगा।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम्।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम्।। 51।।

वाढमेषु दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजाः।। 52।।

स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य संततिम्।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात्।। 53।।

तं गृहोपवन एव संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा।
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः संभृते गूढमादधुः।। 54।।

तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी।
साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम्।। 55।।

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका
दुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः।
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन।
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः।। 56।।

राजा के क्षयरोग से रोगी होने पर सूर्यकुल ऐसा रह गया, जैसे एक कला भर बचा हुआ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का चन्द्रमा हो या कीचड़ भर बचा हुआ गर्मी के दिनों का सरोवर हो या तनिक-सी बची हुई दीपक की लौ हो।।51।। जब प्रजा पूछती थी कि राजा को कोई भयानक रोग तो नहीं है, उस समय मन्त्री लोग प्रजा को यह कहकर समझाते थे कि राजा इस समय पुत्रोत्पत्ति के लिये व्रत आदि कर रहे हैं, इसलिये दुर्बल होते जा रहे हैं। इस प्रकार वे लोग राजा के रोग की बात जनता से छिपा रहे थे।।52।। अनेक रानियों के होते हुए भी वह राजा पुत्र का मुँह नहीं देख सका और वैद्य लोग राजा को अच्छा नहीं कर सके। जैसे वायु के आगे दीपक का कुछ भी वश नहीं चलता, वैसे ही राजा भी रोग से नहीं बचाया जा सका।।53।। अन्त्येष्टि की विधि जानने वाले पुरोहित से मिलकर मंत्रियों ने रोग शान्ति बहाने से राजा के शव को राजभवन के उपवन में ही चुपचाप जलती अग्नि में रख दिया कि कहीं बाहर ले जाने से यह रोग प्रजा में न फैल जाय।54।। मन्त्रियों ने शीघ्र ही प्रजा के नेताओं को इकट्ठा किया और उनकी सम्मति से राजा की उस पटरानी को सिंहासन पर बैठा दिया जिसमें गर्भ के शुभ चिह्न दिखाई दे रहे थे।।55।। राजा की ऐसी दुःखद मृत्यु से महारानी की आँखों के गरम-गरम आँसुओं से तपे हुए गर्भ पर जब कुल-परम्परा के अनुसार होने वाले अभिषेक के समय सोने के घड़े से शीतल जल पड़ा तब वह गर्भ शीतल हो गया।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं भावार्थं प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढक्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना।
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था।
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा।। 57।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अग्निवर्णशृङ्गारो नामैकोनविंशः सर्गः।।

।। इति रघुवंशम् ।।

जैसे सावन में बोए हुए मुट्ठी भर बीजों को पृथ्वी छिपाए रहती है वैसे ही महारानी भी अपनी उस प्रजा की भलाई के लिये गर्भ धारण किये हुए थीं, जो पुत्र उत्पन्न होने की बाट जोह रही थी। इस प्रकार जिसका कहना कोई टाल नहीं सकता था वह गर्भवती महारानी बूढ़े मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार राज-काज चलाने लगी।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अग्निवर्ण का
शृंगार' नाम का उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

।। रघुवंश महाकाव्य समाप्त हुआ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar